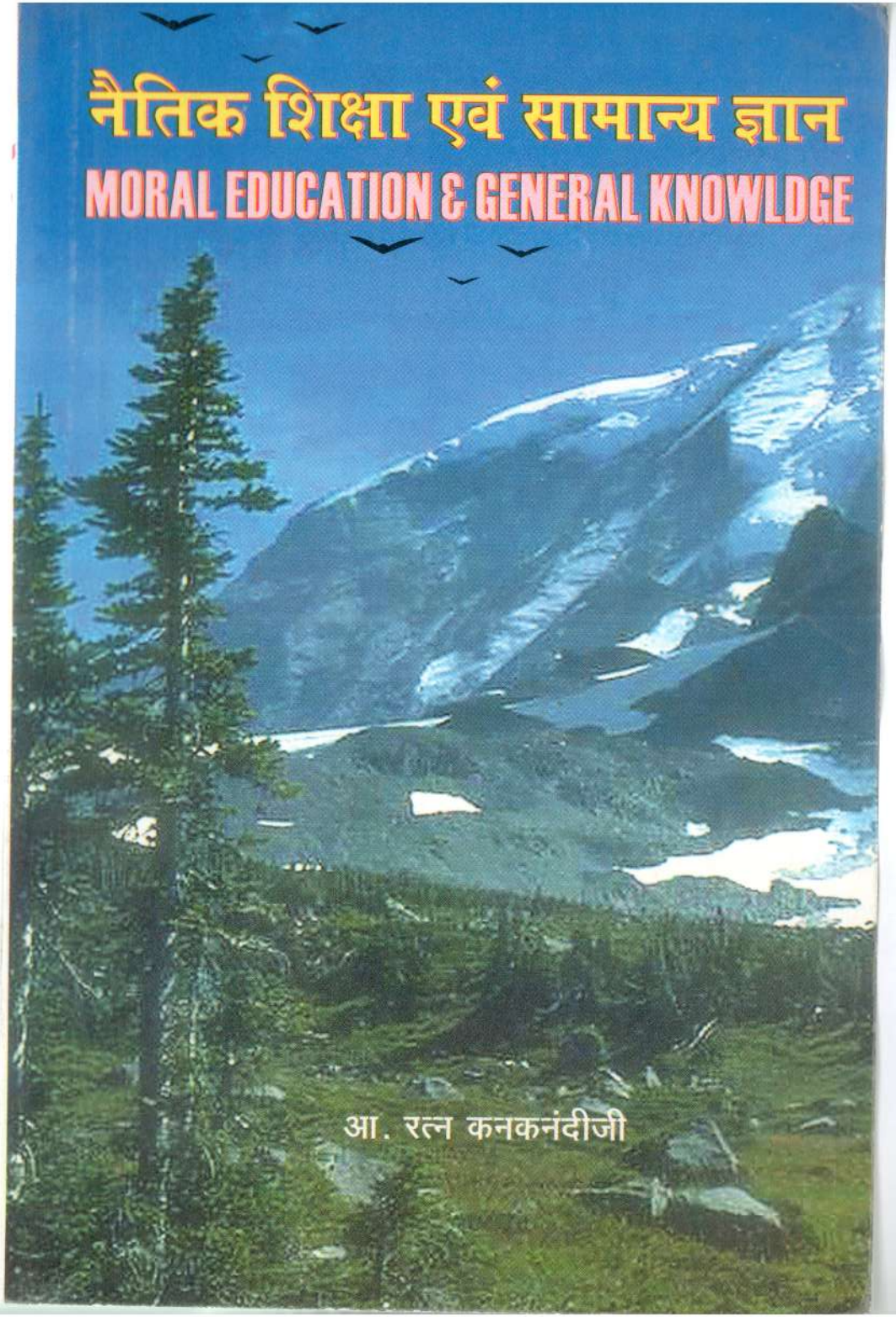
नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान
MORAL EDUCATION & GENERAL KNOWLDGE
आ. रत्न कनकनंदीजी

नैतिक शिक्षा एवं सामान्य - ज्ञान

"MORAL EDUCATION & GENERAL KNOWLEDGE"

आचार्यरत्न कनकनन्दीजी

नैतिक शिक्षा एवं सामान्य - ज्ञान

MORAL EDUCATION & GENERAL KNOWLEDGE

हर व्यक्ति भले वह बालक, विद्यार्थी, शिक्षक, कृषक, श्रमिक, मालिक, न्यायाधीश, नेता, वैज्ञानिक या धर्माचार्य हो सब के लिए हर समय में प्रयोग में आने वाले जीवन के स्वर्णिम नियम इस कृति में समावेश हैं। मैंने उन सब सिद्धान्तों को इसमें संक्षिप्त से वर्णन किया है जिसका अनुसन्धानात्मक, अनुभवात्मक पाठ मैंने जीवन के विद्यार्थी जीवन से लेकर साधु, उपाध्याय, आचार्य जीवन तक, धार्मिक, साहित्य से लेकर वैज्ञानिक साहित्य तक, ग्राम के कृषक से लेकर नगर के वैज्ञानिक तक में पढ़ा। इसमें मैंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, देश-विदेश के विभिन्न साहित्य से भी अधिक मेरे जीवन रूपी साहित्य में जो पढ़ा उसे लिपिबद्ध किया है। इसे भी दूसरे लोग अपने जीवन रूपी ग्रन्थ में लिपिबद्ध करें! इसी महती भावना के साथ-

– आ. कनकनंदी जी गुरूदेव

लेखक आचार्यरत्नश्रीकनकनंदी

प्रकाशक – धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान

धर्म-दर्शन-विज्ञान-शोध संस्थान, ग्रन्थांक – 110

पुस्तक – नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान
"MORAL EDUCATION & GENERAL KNOWLEDGE"

लेखक – आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरूदेव

आशीर्वाद – गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी गुरूदेव

सहयोगी – प्रज्ञा योगी मुनिश्री विद्यानंदी जी, ज्ञान-योगी मुनि श्री आज्ञासागरजी

परम् शिरोमणी संरक्षक – "दानश्री" दानवीर श्री रमेशचंद्र कोटडिया (गुरु-भक्त, उद्योगपति) प्रतापगढ़ नि. मुम्बई एवं अमेरिका प्रवासी

अध्यक्ष – "दानश्री" दानवीर श्री गुणपाल जी जैन(भूतपूर्व इंजीनियर, वर्तमान उद्योगपति) मुजफ्फरनगर

कार्याध्यक्ष – गुरूचरण एम. जैन (वकील मुम्बई हाईकोर्ट)

वरिष्ठोपाध्यक्ष – प्रज्ञापुंजश्री सुशीलचन्द्र जी जैन (एम.एस-सी. भूतपूर्व भौतिकशास्त्र प्रवक्ता) बड़ौत (मेरठ)

उपाध्यक्ष – (सम्पादक – प्रकाशन)
1. श्री प्रभात कुमार जैन (एम.एस-सी. रसायन-शास्त्र प्रवक्ता), मुजफ्फरनगर
2. सेवाश्री राजमल पाटोदी (कर्तव्यनिष्ठ सामाजिक कार्यकर्त्ता), कोटा (राज.) 3. श्री रघुवीर सिंह जैन (एम.एस-सी., एल-एल.बी. रिटायर्ड हेड ऑफ कैमेस्ट्री व प्रिंसीपल डी.ए.वी.पी. जी. कॉलेज)

मानक निर्देशक – सरस्वती पुत्र डॉ. राजमलजी जैन (अर्न्तराष्ट्रीय वैज्ञानिक) उदयपुर

संयुक्त मंत्री – श्री पंकज कुमार जैन (बी.एस-सी.) बड़ौत

संस्करण प्रथम – 2000

प्रतियाँ – 2000 मूल्य – 20.00

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान :-
1. धर्म-दर्शन-विज्ञान-शोध संस्थान निकट दि. जैन धर्मशाला- बड़ौत(मेरठ)
2. नव अल्पना प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, मोदीखाना जयपुर-3 (राज.)
3. श्रीमति रत्नमाला जैन C/o डॉ. राजमल जैन (वैज्ञानिक) 4-5, आदर्श कालोनी पुला, उदयपुर फोन-(0294) 440793
4. श्री गुणपाल जी जैन, बेहड़ा भवन 87/1 कुन्दनपुरा, मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) फोन : (0131) 133259

लेसर टाईप सेटर्स : श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर, २५, शिरोमणी बंगलोज, बरोड़ा एक्स. हाईवे के सामने, अहमदाबाद-२६.

संस्थान का संक्षिप्त परिचय

1. धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान का उदात्त उद्देश्य

अखिल विश्व के सर्वश्रेष्ठ महान त्रिकाल अबाधित परम सत्य को धार्मिक आस्था से दार्शनिक–तार्किक पद्धति द्वारा वैज्ञानिक परीक्षण, निरीक्षण प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में परिशीलन, परिज्ञान, परिपालन, साक्षात्कार, संदर्शन उपलब्धि करके स्वयं को समग्रता से परिपूर्ण परम सत्य स्वरूप परिनिर्माण करना है। अतः इसका सर्वोपरि उद्देश्य :–

"संचवं भगवं" सत्य ही परेश्वर है।
"सत्यं शिवम् सुन्दरम्।"
"सच्चिदानंदम् ।"
"उत्पाद व्यय ध्रोव्य युक्तं सत् ।"
Truth is God तथा God is Truth

व्यक्ति, परिवार, समाज,राष्ट्र, विश्व मैं उदारता पूर्ण सत्य वैज्ञानिक धर्म के माध्यम से प्रचारशीलता, प्रखरता, समरसता सुख–शांति का प्रचार–प्रसार करना है।

2. संस्थान के कार्यक्षेत्र

(१) आचार्य कनकनन्दी के साहित्य का विभिन्न भाषाओं में प्रकाशन करना तथा देश–विदेश मे प्रचार–प्रसार करना ।

(२) संगोष्ठी सम्बन्धी स्मारिका का प्रकाशन करना।

(३) स्थानीय शिविर से लेकर जिला–प्रदेश एवं राष्ट्र स्तरीय धर्म–दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का आयोज करना।

(४) राष्ट्रीय , अन्तरर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करना।

(५) विभिन्न क्षेत्रों के योग्य व्यक्तियों को उपाधि पुरस्कारादि देकर सम्मानित करना ।

(६) इंटरनेट तथा टी.वी. के माध्यम से आचार्य श्री के साहित्य, उद्देश्य तथा प्रवचनों का प्रचार–प्रसार करना।

(७) पशु–पक्षी, पर्यावरण, असहाय–व्यक्ति, रोगी, गरीब पीडित व्यक्ति आदिको सहायता पहुंचाना ।

(८) शोध–कार्यो के लिये, संस्थान के कार्यो के लिये साहित्य प्रकाशन, सुरक्षा के लिये वैज्ञानिक उपकरण तथा कम्प्यूटर–लाइब्रेरी, इंटरनेट, ओवर हेड प्रोजेक्ट आदि क्रय करना।

3. सर्वजन सहयोग :

सत्य–उपासक, उदारमना, एवं परोपकारी महानुभावो! यह संस्थान "सर्व जीव हिताय" "सर्वजन सुखाय" रुपी महानलक्ष्य को आदर्श मानकर कार्यरत है। अतः यह संस्थान विश्वका, विश्व के द्वारा, विश्व के लिये है। अतः अर्थ सहयोग, श्रम सहयोग, शिविर में सहभागी, संगोष्ठी में सहभागी, उपाधि एवं पुरस्कार प्राप्ति में देश विदेश के सर्व धर्मावलंबी सज्जन महानुभावों का भी सादर आमंत्रण, आह्वान सुस्वागत हैं।

बन्धुवर! आप एक विचारशील, स्वाध्याय प्रेमी और धर्मवत्सल बन्धु है। युवा पीढ़ी हेतु विशेष रुप से पू. आचार्य श्री कनकनन्दी जी द्वारा रचित तथा **"धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान"** और विभिन्न स्थानों से प्रकाशित ग्रन्थों के पठनोपरान्त आप निम्न प्रकार से हमें सहयोग दे सकते हैं। आपका सहयोग हमारे उद्देश्य और लक्ष्य का सम्बल है–

(१) पुस्तकों के विषय में अमूल्य, उपयोगी एवं निष्पक्ष सुझाव देकर ।

(२) अन्य स्वाध्याय प्रेमी बन्धुओं से पुस्तक के विषय में चर्चा करके।

(३) अपने इष्ट मित्रो एवं रिश्तेदारों को प्रकाशन की पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा देकर ।

(४) यथा शक्ति अप्रकाशित पुस्तकों के प्रकाशन में अपना योगदान देकर .

(५) प्रकाशित पुस्तकें पर्व आदि पर वितरणार्थ मंगवाकर ।

4. संस्था की नियमावली

(१) विवक्षित पुस्तक के प्रकाशमान के द्रव्यदाता को उस किताब की दशमांश प्रतियां दी जाएँगी।

(२) ग्रंथ प्रकाशक (द्रव्यदाता) ग्रन्थमाला का आजीवन सदस्य रहेगा तथा उन्हें ग्रंथमाला से प्रकाशित पुस्तक की एक–एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी ।

(३) साधु, साध्वी, विशिष्ठ विद्वज्जन और विशिष्ट धर्मायतनों को पुस्तकें निःशुल्क दी जायेंगी।

(४) ग्रंथमाला से सम्बन्धित कार्य–कर्त्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की एक–एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।

आपका आर्थिक सहयोग

१. आजीवन सदस्यता	5000/– रु.
२. संरक्षक	11000/–रु.
३. परम संरक्षक	25000/ रु.
४. शिरोमणि संरक्षक	51000/– रु.
५. परम शिरोमणि संरक्षक	100000/– रु.

आपका अन्य सहयोग

संगोष्ठी, शिविर आदि में साहित्य, पुरस्कार आर्थिक सहायता, श्रमदान आदि देकर।

आपका नाम साहित्य में

विशेष–संस्थान की प्रत्येक पुस्तक, स्मारिका मे संस्थान के कार्यकर्ता शिरोमणि और परम शिरोमणि संरक्षक के नाम छपेंगे। जो जिस साहित्य या कार्य में अर्थ, श्रम, बौद्धिक सहायता करेगा उसमे उसका नाम आयेगा और सम्मानित किया जायेगा।

आप से प्राप्त धन का सदुपयोग

ज्ञान दान, आजीवन–सदस्यता आदि से प्राप्त धन, गुप्तदान, साहित्य–विक्रय से प्राप्त धन, संस्थान को प्राप्त पुरस्कार का धन, साहित्य प्रकाशन आदि उपर्युक्त संस्थान के कार्य क्षेत्रों में संस्थान के वैज्ञानिक यंत्रादि क्रय में सदुपयोग किया जाता है।

आपके ही निवेदक

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थआन

बडौत, मुजफ्फरनगर (यू.पी.)

जयपुर, कोटा, उदयपुर (राज.), मुम्बई (महारष्ट्र)

महापुरुषों की संगति, जीवनी, संस्मृति, प्रार्थना हमें महापुरुष बनने की प्रेरणा देती हैं, जैसा कि जलते हुए दीपक के संपर्क से बुझे हुए दीपक जल जाते हैं।

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान के उद्देश्य एवं नियम

उद्देश्य :– धर्म दर्शन विज्ञान एवं संप्रदाय के समन्वयक वैज्ञानिकाचार्य तथा धर्म, दर्शन, इतिहास, शिक्षा, स्वास्थ्य, मंत्र, मनोविज्ञान तथा विज्ञानादि के समीक्षात्मक शोधपूर्ण शताधिक ग्रन्थों के रचयिता आचार्य रत्न श्री कनकनन्दी गुरुदेव के मार्गदर्शन व आशीर्वाद से यह संस्थान कार्यरत है। इसका मुख्य उद्देश्य है विश्व को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाने के लिए धर्मान्धता तथा संकीर्ण भौतिक विज्ञान से ऊपर उठकर वैज्ञानिक धर्म का प्रचार–प्रसार करना। यह संस्थान विश्व के द्वारा, विश्व के लिये, विश्व का है। अतः इसमें प्रत्येक विश्व–मंगल कामनार्थियों को, तन–मन–धन–समय से भाग लेकर सहयोग करने की भावना भाते हैं तथा आह्वान करते हैं।

नियम : संस्थान की ओर से साधु–संघों को पुस्तकें निःशुल्क भेंट की जाती है। पूरे सेट क्रय करने पर पुस्तकालय, वाँचनालय, शिक्षण संस्थाओं के लिये 15% छूट से शास्त्र दिये जाएगें तथा सामान्य स्वाध्याय प्रेमियों के लिये 10% छूट है, डाक खर्च अलग से है।

आजीवन सदस्यता 5001/–रु. अग्रिम भेजने की आवश्यकता है। द्रव्यदाता, आजीवन सदस्य व कार्यकर्त्ताओं को संस्थान की ओर से समस्त पुस्तकें निःशुल्क दी जाती हैं। आर्थिक दृष्टि से समर्थ सामान्य व्यक्ति से उचित मूल्य इसलिये प्राप्त किया जाता है कि जिससे साहित्य का अवमूल्यन न हो, योग्य व्यक्ति को ज्ञानदान (सहयोग) हो, साधु आदि को निःशुल्क साहित्य भेजने में आर्थिक आपूर्ति हो एवं उस सहयोग से अधिक साहित्य का प्रकाशन प्रचार–प्रसार हो। द्रव्यदाता को उस द्रव्य से प्रकाशित प्रतियों की एक दशमांश प्रतियाँ भी निःशुल्क प्राप्त होगीं। पुस्तकें छपवाने वाले यदि लागत रूपयों में से कुछ रूपये देने में असमर्थ होंगे तो संस्थान उसकी सहायता के साथ साथअन्यान्य सहायता करके उनके नाम परही उसकी पुस्तक छपा देगा। इसमें संस्थान का कोई निहित स्वार्थ नहीं है। परन्तु ज्ञान–प्रसार एक मात्र उद्देश्य है। जो ज्ञान–प्रेमी, ज्ञानदानी, महानुभावो, ज्ञानदान, गुप्तदान, सहायता करना चाहते हैं वे सहर्ष, स्वेच्छा से करें। क्योंकि संस्थान के लिये चन्दा, याचनादि नहीं की जाती है। अधिक सहायता करने वाले को संस्थान में पदभार भी दिया जाता है।

आजीवन सदस्य ध्यान दें :– साथ ही जिन आजीवन सदस्यों ने 1100/–

रू. सदस्यता के रूप में दिये हैं उन्हें पुनः 3000/– देना पड़ेगा, इसी प्रकार जिन्होंने 2100/– से लेकर 2500/– रूपया दिया है पुनः 2000/– रूपया निम्न पते पर भेजने की कृपा करें। हमें ऐसा इसलिए करना आवश्यक हुआ है क्योंकि आचार्य श्री के अनेक बड़े ग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं। तथा कई ग्रन्थों की माँग अधिक होने के फलस्वरूप उनकी पुनः अधिक संख्या में प्रकाशन होने के साथही डाक व्यय अधिक होने के कारण उपर्युक्त व्यय भार बढ़ गया है। अतः आजीवन शुल्क अतिरिक्त भेजने की आवश्यकता है इसके बिना बड़े ग्रन्थ एवं नवीन ग्रन्थ आपके पास भेजने के लिए असमर्थ हैं। साहित्य प्रकाशन करनेवाले ज्ञानदानी तथा आजीवन सदस्य आदि को समस्त साहित्य निःशुल्क प्राप्त होते हैं। परम शिरोमणि संरक्षक एवं शिरोमणि संरक्षक का नाम प्रत्येक पुस्तक एवं संस्थान के लेटर हेड में आयेगा।

पूज्य आचार्य श्री कनकनंदीजी संघस्थ
मुनिश्री विद्यानंदीजी (दायीं ओर)एवं मुनिश्री आज्ञासागरजी (बायीं ओर)

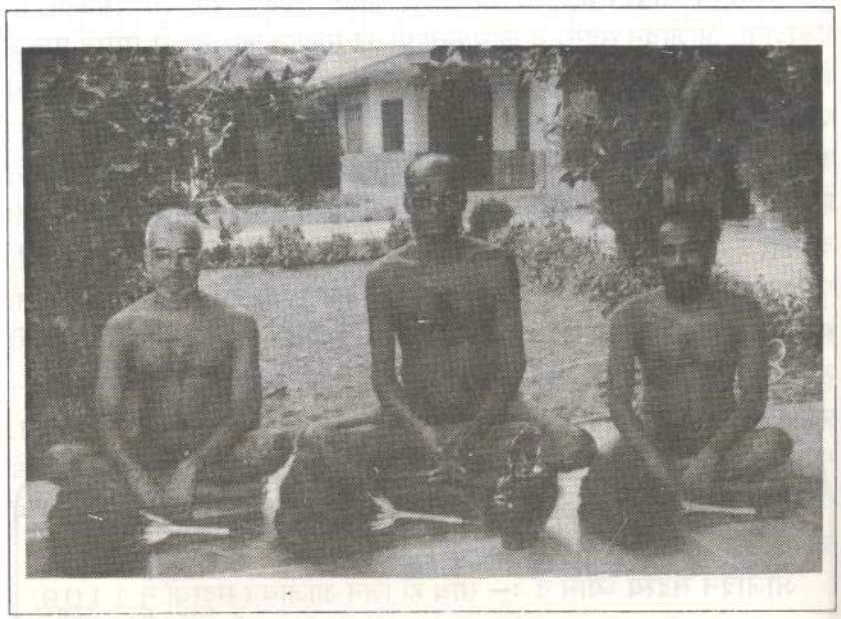

''आचार्यश्री कनकनन्दीजी द्वारा रचित ग्रन्थ''

क्रम	शीर्षक	मूल्य
(1)	धर्म विज्ञान बिन्दु	15.00 रू.
(2)	धर्म ज्ञान एवं विज्ञान	15.00 रू.
(3)	भाग्य एवं पुरूषार्थ (पंचम संस्करण)	15.00 रू.
(4)	Fate and Efforts	15.00 रू.
(5)	व्यसनका धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं)	20.00 रू.
(6)	Nakedness of Digamber Jain Saints and Kesh Lonch (तृतीय संस्करण)	5.00 रू
(7)	पुण्य पाप मीमांसा (द्वितीय)	15.00 रू.
(8)	जिनार्चना पुष्प (1) (तृतीय संस्करण)	51.00 रू
(9)	जिनार्चना पुष्प (2)	21.00 रू.
(10)	निमित्त उपादान मीमांसा (द्वितीय संस्करण)	9.00 रू.
(11)	धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान–पुष्प (1)(द्वितीय संस्करण)	20.00 रू.
(12)	धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान–पुष्प (2)	20.00 रू.
(13)	धर्म दर्शन विज्ञान (द्वितीय संस्करण)	51.00 रू.
(14)	क्रांति के अग्रदूत (द्वितीय संस्करण)	21.00 रू.
(15)	लेश्या मनोविज्ञान (द्वितीय संस्करण)	6.00 रू.
(16)	ऋषभपुत्र भरत से भारत (द्वितीय संस्करण)	21.00 रू.
(17)	ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वितीय संस्करण)	21.00 रू.
(18)	अनेकांत दर्शन	20.00 रू.
(19)	कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन (द्वि.सं.)	45.00 रू.
(20)	अहिंसामृतम्	7.00 रू.
(21)	युग निर्माता ऋषभदेव	15.00 रू.
(22)	विश्वशांति के अमोघ उपाय (द्वितीय संस्करण)	10.00 रू.
(23)	मनन एवं प्रवचन (द्वितीय संस्करण)	5.00 रू.
(24)	विनय मोक्ष द्वार	6.00 रू.
(25)	क्षमा वीरस्य भूषणम् (द्वितीय संस्करण)	15.00 रू.

(26)	संगठन के सूत्र (द्वितीय संस्करण)	25.00 रु.
(27)	अति मानवीय शक्ति (द्वितीय संस्करण)	31.00 रु.
(28)	मंत्र विज्ञान(द्वितीय संस्करण)	25.00 रु.
(29)	Philosophy of Scientific Religion	21.00 रु.
(30)	दिगम्बर साधु का नग्नत्व एवं केशकोंच (एकादश. सं) (हिन्दी,मराठी,गुजराती)	5.00 रु.
(31)	भगवान महावीर व उनका दिव्य संदेश	5.00 रु.
(32)	धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्प I (पंचम संस्करण)	10.00 रु.
(33)	संस्कार(हिन्दी)(एकादश सं.)	5.00 रु.
(34)	विश्व विज्ञान रहस्य	100.00रु.
(35)	संस्कार (गुजराती)	———
(36)	स्वप्न विज्ञान(द्वितीय सं.)	51.00 रु.
(37)	त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य (द्वि.सं.)	25.00 रु.
(38)	आत्मोत्थानोपायः तपः	9.00 रु.
(39)	तत्त्वानुचिंतन	5.00 रु.
(40)	विश्व इतिहास	25.00 रु.
(41)	शकुन विज्ञान	30.00 रु.
(42)	संस्कार सचित्र (तृतीय संस्करण)	11.00 रु.
(43)	कथा सुमन मालिका	15.00 रु.
(44)	72 कलाएँ	5.00 रु.
(45)	हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ?	7.00 रु.
(46)	कथा सौरभ	21.00 रु.
(47)	कथा पारिजात	15.00 रु.
(48)	धर्म प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकर (द्वितीय संस्करण)	11.00 रु.
(49)	जीने की कला	7.00 रु.
(50)	संस्कार–(वृहत्)	30.00 रु.
(51)	स्वतंत्रता के सूत्र	71.00 रु.
(52)	कथा पुष्पांजलि	15.00 रु.
(53)	धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन	5.00 रु.

(54)	सत्य धर्म	5.00 रु.
(55)	धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्प 2 (पंचम संस्करण)	15.00 रु.
(56)	आ.कनकनन्दी की दृष्टिमें शिक्षा	11.00 रु.
(57)	अयोध्या का पौराणिक ऐतिहासिक एवं राजनैतिक विश्लेषण	11.00 रु.
(58)	गुरू अर्चना	3.00 रु.
(59)	दंसण मूलो धम्मो तहा संसार मूल हेतु मिच्छतं	15.00 रु.
(60)	धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्प 3(तृतीय संस्करण)	21.00 रु.
(61)	संस्कार (अंग्रेजी)	5.00 रु.
(62)	श्रमण संघ संहिता	30.00 रु.
(63)	युग निर्माता ऋषभदेव(अंग्रेजी)	51.00 रु.
(64)	पार्श्वनाथ का तपोपसर्ग कैवल्य धाम बिजौलिया	15.00 रु.
(65)	भारतीय आर्य कौन–कहाँ से कब से कहाँ के ?	25.00 रु.
(66)	ये कैसे धर्मात्मा–निर्व्यसनी–राष्ट्रसेवी	11.00 रु.
(67)	विश्वधर्म सभा–समवशरण	21.00 रु.
(68)	''बंधु बंधन के मूल''	61.00 रु.
(69)	विश्व द्रव्य विज्ञान (द्रव्य संग्रह)	41.00 रु.
(70)	आदर्श आहार–विहार विचार	35.00 रु.
(71)	उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण	15.00 रु.
(72)	पूजा से मोक्षःपुण्य तथा पाप भी	21.00 रु.
(73)	आदर्श नागरिक की प्रायोगिक क्रियाएँ	7.00 रु.
(74)	सत्य साम्य सुखामृतम्– प्रवचनसार	301.00रु.
(75)	अग्नि परीक्षा	11.00 रु.
(76)	कथा चिंतामणि	11.00 रु.
(77)	उठो! जागो! प्राप्त करो!!!	15.00 रु.
(78)	सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (वृहत्)	201.00रु.
(79)	सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (छोटा)	21.00 रु.
(80)	संस्कार (मराठी)	10.00 रु.

(81)	भ्रष्टाचार उन्मूलन	7.00 रु.
(82)	आहारदान से अभ्युदय	9.00 रु.
(83)	बालबोध जैनधर्म	7.00 रु.
(84)	नग्न सत्य का दिग्दर्शन	15.00 रु.
(85)	ज्वलंत शंकाओं का शीतल समाधान (द्वितीय संस्करण)	41.00 रु.
(86)	आहार दान विधि (हिन्दी–मराठी) पच्चीसवा संस्करण	----
(87)	शाश्वत समस्याओं का समाधान	18.00 रु.
(88)	जैन धर्मावलम्बी संख्या और उपलब्धि	21.00 रु.
(89)	भाव एवं भाग्य तथा अंग विज्ञान	151.00रु.
(90)	कथा त्रिवेणी	8.00 रु.
(91)	स्मारिका (प्रथम संगोष्ठी)	81.00 रु.
(92)	पुरूषार्थ सिद्धयुपाय	101.00रु.
(93)	Laishya Psychology	11.00 रु.
(94)	जीवन्त धर्म : सेवा धर्म	11.00 रु.
(95)	स्मारिका (द्वितीय संगोष्ठी)	51.00 रु.
(96)	भविष्य–फलविज्ञान	101.00रु.
(97)	What Kinds of "DHARMATMA" (plousman)These Are	21.00 रु.
(98)	अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग	21.00 रु.
(99)	संस्कार (कन्नड़)	15.00 रु.
(100)	दिगम्बर जैन साधु नग्न क्यों(उर्दू)	11.00 रु.
(101)	युग निर्माता भ. ऋषभदेव (द्वितीय संस्करण)	41.00 रु.
(102)	युग निर्माता भ. ऋषभदेव (पद्यानुवाद)	5.00 रु.
(103)	इष्टोपदेश	51.00 रु.
(104)	अनुपरागमन पथः मोक्षपथ	5.00 रु.
(105)	नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान	20.00 रु.

विशेष :– आजीवन सदस्यता आदि ज्ञान–दान, गुप्त–दान, साहित्य विक्रय आदि से प्राप्त धन का सदुपयोग साहित्य प्रकाशन, ज्ञान के प्रचार–प्रसार, संस्थान के उपकरण, वैज्ञानिक–यंत्रादि के लिए किया जाता है।

अन्तरंग

कुछ राजा, महाराजा, आक्रमणकारी, लुटेरों–नेतादि के नाम, गाँव, माता–पिता, जन्म–मरण, तिथि का ज्ञान करना या देश–विदेश ने नामादि की जानकारी करना आदि को 'सामान्य–ज्ञान' मान लेना वैसा है जैसा कि कुछ धार्मिक रीति–रिवाज, पर्व, त्यौहार, पूजा–पाठ को धर्म मान लेना। ''नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान''का महत्व स्थान तथा आवश्यकता / भूमिका / परिधि वैसी है जैसी कि जीवन के लिए प्राण वायु (ऑक्सिजन) की। जीवन की हर परिस्थिति / अवस्था / व्यवस्था के लिये जिस की आवश्यकता होती है वह है ''नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान''। जिस प्रकार रेलगाड़ी चले या स्थिर रहे वह हर समय में रेल की पटरी पर ही रहती है, उसी प्रकार जीवन रूपी रेलगाडी हर समय ''नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान'' रूपी पटरी पर होती है। जैसाकि रेलगाडी हर दृष्टि से सही होते हुए भी यदि पटरी सही नहीं है तो रेलगाडी नहीं चल सकती है तथा दुर्घटना भी घट सकती है वैसे ही यदि मनुष्य का ''नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान'' सही नहीं है तो जीवन रूपी गाड़ी प्रगति नहीं कर सकती है तथा दुर्घटना भी घट सकती है।

मैंने जो बाल्यकाल से लाखों अबाल–वृद्ध –वनिता, शिक्षार्थी से शिक्षक, ग्रामीण से लेकर वैज्ञानिक, सामान्य जन से लेकर राजनेता तक को देखा, परखा, सुना, अनुभव किया तब उन सब में जो समानता पाई है वह है ''नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान'' की कमी। इस कमी को दूर करने की मेरी सतत् भावना तथा कोशिश रहती है। इसलिए मैं शिविर, कक्षा, प्रवचन संगोष्ठी तथा अन्यान्य योग्य समय में इसका प्रशिक्षण देता हूँ। कुछ मेरी पुस्तकों में भी संदर्भ प्राप्त इस विषय को लिखता हूँ। परन्तु अभी तक एक ही पुस्तक में सांगोपांग इसका वर्णन नहीं किया था। इस ''नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान'' कृति में मैंने संक्षिप्त परन्तु अनेक विषयों का वर्णन किया है। स्कूल – कॉलेज में अनेक विषय पढ़ाये जाते हैं जो कि जीवन के प्रायोगिक क्षेत्र में कोई सम्बन्ध ही नहीं रखते हैं। आधुनिक अधिकांश लौकिक शिक्षाएँ केवल नौकर बनने के लिए ही हैं। इसी प्रकार विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय की शिक्षाएँ उस–उस सम्प्रदाय सम्बन्धी रीति–रिवाज, पर्व–त्यौहार, खान–पान, पूजा–पाठ, तीर्थ यात्रा आदि संबंधी होती हैं। केवल ऐसी

धार्मिक शिक्षाएँ नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, वैश्विक प्रगति के लिये सहायक कम बनी हैं, लेकिन विघटनकारी ज्यादा सिद्ध हुई हैं। इसीलिये मैंने इस कृति में ऐसी कोई संकीर्ण शिक्षाओं को स्थान नहीं दिया जिससे भेदभाव उत्पन्न हो, वैमनस्य, द्वेष बढ़े, अंधविश्वास फैले, संगठन में, वैश्विकरण में बाधक सिद्ध हो।

मैंने यह पुस्तक जैन–जैनेत्तर विद्यार्थी, प्रौढ़ों को लक्ष्य में रखकर लिखी है। विभिन्न कक्षाओं में, शिविर में, प्रशिक्षण में अध्ययन के लिये इसकी रचना की गई है। मानव का शारीरिक, मानसिक, वाचनिक, नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, वैश्विक विकास हो तथा व्यक्ति से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय तथा वैश्विक, प्रेम, सौहार्द, संगठन, सहकार बढ़े इस लक्ष्य को रखकर इसमें विषय–वस्तु का चयन किया गया है। प्रातः कालीन व्यक्तिगत क्रियाओं से लेकर पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय एवं वैश्विक उत्तरदायित्व एवं अधिकारों का भी दिग्दर्शन किया गया है। शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य,वाचनिक स्वास्थ्य से लेकर आध्यात्मिक स्वास्थ्य तक का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। यह कृति तो सामान्य प्रशिक्षण / दिग्दर्शन के लिये रची गयी है परंतु निकट भविष्य में और भी शोध–बोध पूर्ण विशाल कृति की मेरी भावना है। मेरे विचारानुसार जब तक मानव ''नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान'' को जीवन में आत्म–सात नहीं करेगा तब तक उसका सर्वांगीण, सार्वभौम विकास नहीं हो सकता है। जिस प्रकार कि भोजन में हर प्रकार का योग्य तत्व होने पर वह भोजन पौष्टिक, संतुलित होता है उसी प्रकार जीवन में ''नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान'' होने पर ही जीवन संतुलित हो सकता है। जिस प्रकार यंत्र के हर कल–पुर्जे व्यवस्थित रूप से जुड़े रहने पर ही यंत्र काम करता है उसी प्रकार ''नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान'' से जब व्यक्ति समग्रता से व्यवस्थित जुडता है तब वह अच्छे कार्य करने के लिये समर्थ होता है। इसमें झाडोल केपवन जैन, चेतना जैन, हेमलत्ता जैन, तथा थाणा के सुलोचना जैन ममता जैन, प्रमीला जैन, ज्योति जैन, हितेश जैन, अनिता जैन,अनिता जैन का योग दान रहा। इस कृति का अध्ययन करके अखिल जीव–जगत सुखी,समृद्ध, प्रगतिशील बने ऐसी महती भावना के साथ–

– आचार्य रत्न श्री कनकनंदी गुरूदेव,
झाड़ोल (सराड़ा), 20–10–99

कृतिका इतिवृत्त / मेरी दृष्टि में भारत

मेरी दृष्टि में भारत

1) मेरी दृष्टि में भारत में बहुत ही अति प्राचीन काल से सम्बृद्ध / समृद्ध, उन्नत सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान, धर्म, आध्यात्मिक, गणित, आयुर्वेद, शिक्षा, कला, विद्या के साथ–2 ज्ञानी, विज्ञानी, साधु–सन्त, राजनीतिज्ञ, धर्मात्मा, धर्म प्रचारक रहे। इन उत्कृष्टताओं के साथ–2 कुछ निकृष्टतायें भी रहीं। यथा – सुरा– सुन्दरी, शिकार–समर, फूट–लूट, शोषक, शोषित, दास–प्रभु, भेद–भाव, उच्च–नीच, छूआ–छूत, अन्धविश्वास, अतिवाद, आडम्बर, विलाशिता आदि निकृष्ट प्रथाएँ। सुवर्ण पात्र रूपी भारत में जो ज्ञान–विज्ञानादि रूपी अमृत है वह कभी तो छिपा रहा तो कभी वह क्षरण हुआ और कभी विकृत होता रहा। इसलिए कभी भी सम्पूर्ण भारत के सम्पूर्ण भारतीय उस अमृत का रसास्वादन नहीं कर पाये तथापि जो अमतृ पान से वंचित रहे वे भी स्वयं को अमृत पान करने वाले अमर, अमृत, अमृत–पुत्र मानकर घमण्ड करते रहे और कर भी रहे हैं। इसलिए भारतीयों की दुर्दशा हुई और अभी भी हो रही है। क्योंकि अमृत पान बिना मरण धर्मी रहते हुए स्वयं को अमर मानकर मान करने वाले मरेंगे ही। जो यथार्थ से पान करते हैं वे दिखावा–मान नहीं करते हैं और वे अमर हो जाते हैं। अतः विश्व को ज्ञान–विज्ञान, आध्यात्मिक, भौतिक से भरण–पोषण करने वाले भारतीयों को पहले स्वयं अमृत पान कर अमर बनना चाहिए पुनः अखिल ब्रह्माण्ड को अमर बनाना चाहिए।

II) जैसा कि चक्रवर्ती की अयोग्य–दीन–हीन भ्रष्ट सन्तान स्वयं को चक्रवर्ती की संतान मानकर अहंकार करने पर भी उसे किसी प्रकार की सम्पत्ति–सत्ता, कीर्ति–प्रशंसा नहीं मिलती है वैसा ही भारतीय लोग स्वयं को महान् भारत की सन्तान मानकर वृथा अहंकार करने पर कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है जब तक कि स्वयं को महान् भारत की महान् संस्कृति से संयुक्त नहीं कर लें। केवल अहंकार से लाभ के बदले अलाभ अधिक है। यथा – वह भ्रम में होने के कारण वास्तविक महानता को प्राप्त करने के लिए पुरूषार्थ नहीं कर पाता है तथा उपलब्धि के बिना घमण्ड करने पर दूसरे उसे और भी घृणा की दृष्टि से देखते एवं और भी उसे लूटते हैं। जिस प्रकार कि पंचतंत्र की नीली–लोमड़ी की दुर्दशा हुई उसी

प्रकार उसकी भी होती है। इसलिए भारतीयों को अहंकार तथा शाब्दिक स्वाभिमान के बदले आत्म शोधक एवं आत्म गौरवशील बनना चाहिए।

III) अति प्राचीन काल में भारत ने दूसरों को जीरो (शून्य) दिया जिससे दूसरे तो हीरो (नायक) बन गये परन्तु भारत अनेक शताब्दी से अभी तक जीरो (उपलब्धि से शून्य) है। आयुर्वेद पढ़ाने वाला भारत अभी भी रुग्ण है, सोने की चिड़िया भारत चूग्गे कि लिए तरस रहा है। दूध–घी की नदी में खून बह रहा है। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' मंत्र देने वाला भारत हजारों वर्ष से स्वयं बिखरा हुआ है। ''विश्वगुरू'' भारत विदेशियों का शिष्य बना है। बारह चक्रवर्तियों का देश भारत अनेक शताब्दी तक गुलाम रहा और अभी पूर्ण मालिक नहीं बन पाया है। इसके पीछे कुछ स्वार्थी, क्षुद्र, राष्ट्रद्रोही भारतीयों का हाथ अधिक है, विदेशियों का कम। इसलिए विदेशी शत्रु के समान स्वदेशी शत्रु से भी भारत की रक्षा करना केवल आवश्यक नहीं किन्तु अनिवार्य है भले वह शत्रु धर्म के क्षेत्र के हो या धन के क्षेत्र के अथवा सत्ता के क्षेत्र के।

कृति का इतिवृत्त

उपर्युक्त भारत की महानता/ उत्कृष्टता के साथ–2 पतितता / निकृष्टता का अध्ययन एवं अनुभव करके मैंने इस कृति की रचना की है। इसका मूल उद्देश्य है मानव / भारतीय अपनी पवित्रता / श्रेष्ठता को जानें / मानें / प्राप्त करें तथा अपवित्रता को भी जानें / मानें / त्याग करें। इसलिए इसमें मैंने व्यक्ति निर्माण से लेकर विश्व–शांति, आध्यात्मिकता से लेकर राजनीति, समाजनीति से लेकर शिक्षा–नीति पर प्रकाश डाला है। प्रत्येक मानव मानव, से महामानव तथा महामानव से भगवान बने ऐसी शुभ भावना के साथ–

–आचार्य रत्नश्री कनकनंदी गुरुदेव,
झाडोल(सराड़ा)
29–10–99

राष्ट्र की प्रगति की नीति राजनीति है। राष्ट्र की उत्तम सभ्यता, संस्कृति, जैविक सम्पत्ति तथा भौतिक सम्पत्ति आदि का समुच्चय ही राष्ट्र है। अतः उसकी सुरक्षा, समृद्धि की नीति ही राजनीति है न कि सत्ता/सम्पत्ति की लोलुपता।

प्रार्थना

(तर्ज – चंदन है इस देश की.....)

पावन है इस देश का कण–कण, मोक्षपुरी का धाम है।
हर कन्या सीता सुन्दरी, बालक वीर महान है।
जहाँ संत जन तपो भूमि में, अध्यातम पर शोध करें।
भौतिकता से ऊपर उठकर, निज आतम की खोज करे।
जहाँ धर्ममय प्रातः बेला, अध्यातम की शाम है। हर कन्या..... ।
अकलंक–निकलंक परम प्रतापी महाधुरंधर वीर जहाँ ।
लक्ष्मी बाई वीर शिवाजी जैसे दिग्गज शेर यहाँ –2
हँसते–हँसते धर्म देश प्रति, करते निज बलिदान है। हर कन्या..... ।
'सत्यमेव जयते' नारे को, मरते दम तक गाते हैं,
सत्य धर्म की सेवा में नित अपना शीश झुकाते हैं।
हर प्राणी की रक्षा करना हर मानव का काम है। हर कन्या..... ।
सत्य प्रेम और शांति का, हम देते सबको नारा है,
सत्य अहिंसा इस भारत का बड़ा अनोखा नारा है–2
अनेकांत में एकता यह भारत की पहचान है। हर कन्या..... ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामय।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवतु ॥
'बच्चे हैं देश की जान, शिक्षा ही है उनकी शान'

आचार्य कनकनंदी

महानता का प्रतीक है ''सादा जीवन उच्च विचार''। 'सादा जीवन नीच विचार' या 'विलासी जीवन उच्च विचार' महानता में बाधक हैं।

★

वचन अन्तरंग भावों का वाचक हैं। दुर्वचन बोलकर अपना अन्तरंग दुराचार को प्रगट करके अपनी दुर्गति को निमंत्रण मत दो।

जैन ध्वज गीत

आदि ऋषभ के पुत्र भरत का, भारत देश महान् ।
ऋषभ देव से महावीर तक, करे सुमंगल गान ॥
पंचरंग पांचों परमेष्ठी, युग को दें आशीष।
विश्व शांति के लिए झुकाएँ, पावन–ध्वज को शीष ॥
'जिन'की ध्वनि, जैन की संस्कृति,
अघ जग को वरदान, भारत देश महान् ॥1॥
सत्य, अहिंसा धर्म जगत का, है आदर्श महान् ।
दया, क्षमा सम भाव बढ़ाने, गावो ध्वज गुणगान॥
धर्म की गाथा, शान्ति की दाता
जन मन का अभिराम, भारत देश महान् ॥2॥
अनेकांत की ज्योति जगाकर, तम मिथ्यात्व हटाता।
स्याद्वाद का पाठ पढ़ाकर, आगम मार्ग दिखाता॥
यही महिमा, यही गरिमा,
जन गण का कल्याण, भारत देश महान् ॥3॥

अमर्यादित कामेच्छा को मर्यादित करने के लिए तथा महा मानव को जन्म देने के लिए चारित्र मोहनीय कर्म की परवशता से विवाह बन्धन है, परन्तु विवाह धर्म नहीं है।

★

परस्पर में प्रेम वृद्धि के लिए प्रीति भोज है। इसमें अपव्यय, मान-अपमान, द्वेष आदि विष नहीं होना चाहिए।

★

अतिथि को देव बनकर दूसरों के यहाँ जाना चाहिए न कि दानव बनकर। अतिथि गृहस्थों के जीवन्त देव हैं। वे देने के लिए आते है। उनके साथ डाकू सा व्यवहार न करें।

श्लो–गान

1. आज क्या है ?	=	शिविर का शुभारंभ
2. शिविर किसका ?	=	धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण का
3. देश के गौरव	=	आदर्श बच्चे
4. अधिकार से महान्	=	कर्त्तव्य पालन
5. अन्धकार क्या है ?	=	अज्ञानता
6. दूर भगाओ दूर भगाओ	=	अज्ञानता को दूर भगाओ
7. बच्चों की उन्नति	=	देश की उन्नति
8. महापाप क्या है ?	=	अन्ध–विश्वास
9. बच्चों का निर्माण	=	राष्ट्र का निर्माण
10. बच्चों के निर्माता	=	सच्चे गुरु
11. अहिंसा धर्म	=	विश्व धर्म
12. उदार धर्म	=	अनेकान्त धर्म
13. सत्यमेव	=	जयते
14. वन्दे	=	वीरो
15. सत्य, अहिंसा प्यारा है	=	यही हमारा नारा है
16. जैन धर्म का दिव्य संदेश	=	'जिओ और जिने दो'
17. अहिंसा परमो धर्मः	=	यतो धर्म ततो जयः
18. अहिंसा धर्म	=	जैन धर्म

भोजन मंत्र

ॐ ह्रीं सत्यसाम्यसुखाय नमो नमः

(भोजन के पहले 3 बार बोलें)

वह नम्रता यथार्थ नम्रता नहीं है जो अन्याय, असत्य के सामने घुटने टिका दिया जावे। परन्तु वह नम्रता यथार्थ नम्रता है जो सत्य, न्याय और उसके धारक को हृदय से स्वीकार किया जाए।

प्रार्थना

हे वीर! विश्व को, आज शान्तिमय कर दो।
जग-भर में फिर से, पूर्ण अहिंसा भर दो॥ (1)
अत्याचारों की घोर घटा घिर आई।
मानव ने निज-मानवता आज भुलाई॥
कर रहे घोर अन्याय महा अन्यायी।
लड़ रहे हाय! आपस में भाई-भाई॥
सोई मानवता जगे मन्त्र वह भर दो।
जग भर में फिर ..... ॥ (2)
हम वीर तुम्हारे बालक वीर कहायें।
निज देश धर्म हित, अपना खून बहायें॥
अनुचित बन्धन को तोड़ मुक्त हो जावें।
जो अलग हो रहे उनको फिर अपनायें॥
कर सकें संगठन यही एक बस वर दो।
जग भर में फिर से ..... ॥ (3)
लव-कुश समान हम, वीर बनें बलधारी।
श्री वर्द्धमान सम, आज बनें ब्रह्मचारी॥
हो रामचन्द्र सम नीति-निपुण अधिकारी।
फिर महक उठे भारत की यह फुलवारी॥
इस दुःखित देश को राम-राज्य सम कर दो।
जग भर में फिर ..... ॥ (4)

सत्य-तथ्य से सहित थोड़ा सा भी ज्ञान यथार्थ ज्ञान है, तथा सत्य-तथ्य से रहित प्रचुर ज्ञान भी अयथार्थ ज्ञान है। यथा थोडा सा भी यथार्थ पानी तो पानी हैं परन्तु प्रचुर मृगमरीचिका (जलाभास) पानी नहिं है।

★

सत् उद्देश्य सहित कार्य से विकास होता है तो असत् उद्देश्य सहित कार्य से विनाश होता है।

विद्यार्थियों (शिविरार्थी) के नियम

1. प्रत्येक विद्यार्थी कक्षा (शिविर) में सम्पूर्ण अनुशासन को स्वेच्छा से पालन करेंगे। एक दूसरे को अनुशासित नहीं करेंगे।

2. निर्धारित अनुशासन एवं कार्यक्रम को स्वेच्छा से समय पर करेंगे।

3. पूर्व निर्धारित अनुशासन एवं कार्यक्रम में यदि परिवर्तन की आवश्यकता होगी तो सूचना पूर्वक परिवर्तन किया जाएगा। जब तक सूचना नहीं दी जाती है पूर्व निर्धारित अनुशासन एवं कार्यक्रम के अनुसार ही अपना कर्त्तव्य पालन करना अनिवार्य है। अनुशासन एवं कार्यक्रम की सूचना बार-बार नहीं दी जायेगी।

4. विद्यार्थी मद्य, मांस, धूम्रपान, तम्बाकू, गुटकादि नशीलीवस्तु, तेल पालिश, लिपस्टिक, पाउडर, बेल्ट, जूते, चप्पल, अश्लील, अभद्र वस्तुओं का सेवन नहीं करेंगे/प्रयोग नहीं करेंगे।

5. बड़ों के साथ सम्मान पूर्ण एवं छोटों के साथ प्यार पूर्ण नम्र, सरल, भद्र व्यवहार करेंगे।

6. शिक्षा, ज्ञान, धर्म, कक्षा, शिविर सम्बंधी, चर्चा को छोड़कर अन्य सम्पूर्ण चर्चाओं का त्याग करेंगे।

7. कक्षा, शिविर सम्बंधी आवश्यक उपकरण आवश्यक समय में स्वयं के पास अवश्य रखेंगे। यथा-कक्षा के साहित्य नोट-बुक, पेन आदि?

8. प्रत्येक कार्य में प्रत्येक विद्यार्थी स्वावलम्बी रहेंगे। यथा-सफाई, दरी बिछाना, घंटी बजाना, गुरूओं के लिये तखत, पाटा, चौकी आदि लगाना, स्वल्पाहारादि का परोसना, जूठन की सफाई करना आदि।

9. प्रयोग - धर्मा बनने के लिए विद्यार्थी (शिविरार्थी) द्वारा आहारदान के लिए स्वयं शुद्ध आहार बनाकर (चौका लगाकर) साधुओं को आहार देना।

10. प्रायोगिक पूजा करने के लिये निर्धारित पूजा-कार्यक्रम में स्वयं विद्यार्थी अपने-अपने घर से पूजा की समस्त सामग्री लेकर आयेंगे।

11. गुरूदेव के निर्देशानुसार कार्यक्रम के विभिन्न उत्तरदायित्व विभिन्न विद्यार्थी वहन करेंगे।

12. प्रत्येक कार्यक्रम के लिए अंक प्राप्त होंगे। ये अंक परीक्षा अंक में सम्मिलित होंगे। अनुशासन भंग करने पर अंक कम किये जायेंगे। जिसे परीक्षा अंक से घटा दिये जायेंगे।

13. विद्यार्थी (शिविरार्थी) को निर्धारित समय पर प्रवेश प्राप्त कर लेना अनिवार्य है। सांस्कृतिक कार्यक्रम में भी जो भाग लेने वाले हैं वे भी निर्धारित समय पर प्रवेश प्राप्त कर लेंगे।

14. जो अनुशासन भंग करेंगे उन्हें बहिष्कार कर दिया जायेगा तथा प्राप्त सुविधाओं से भी वंचित किया जायेगा।

15. योग्य विद्यार्थी को प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार के रूप में ज्ञान–उपकरण (साहित्य आदि) दिया जायेगा। परन्तु अयोग्य को नहीं दिया जायेगा। पुरस्कार स्वेच्छा से दिये जाने के कारण पुरस्कार के लिए प्रतिवादादि नहीं करेंगे।

16. शिविरादि के कार्यक्रम में यदि कोई विशिष्ट व्यक्ति को आना है तो उन्हें भी शिविर के अनुशासन को पालन करना पड़ेगा।

17. कक्षा, शिविरादि के लिये जो सज्जन आर्थिक (साहित्य, प्रमाण–पत्र, पुरस्कार, भोजन, अल्पाहारादि) शारीरिक (व्यवस्था, श्रमदान, स्वयं सेवक) सहयोग करेंगे उन्हें भी प्रमाण–पत्र, पुरस्कार (साहित्य) आदि दिया जायेगा।

18. अधिक सहायता करने वालों का नाम प्रमाण पत्र, निमंत्रण पत्रिका आदि में किया जायेगा। यदि विद्यार्थी भी उपर्युक्त सहायता करेगें उन्हें भी प्रमाण पत्र आदि दिये जायेंगे। कक्षा शिविरादि में जैन, जैनेत्तर, आबाल वृद्ध–वनिता भाग ले सकते हैं।

19. ''सर्व जीव सुखाय सर्वजीव हिताय'', दृष्टिकोण को लेकर उदार, नम्र, सत्याग्राही, वैज्ञानिक प्रणाली से प्रत्येक कार्यक्रम होंगे। संकीर्णता, हठग्राहिता, धर्मान्धता, कषायावेश का बहिष्कार किया जायेगा।

20. कक्षा, शिविर सम्बन्धी समस्याओं का समाधान गुरूदेव के मार्गदर्शन से होगा।

21. गुरूदेव की अज्ञानुसार आवश्यकता होने पर कार्यक्रम में परिवर्तन भी किया जा सकता है।

जो गुणो से भारी होता है वह गुरू है। इसलिए अन्य सब गुरू की तुलना में हलके हैं।

सार्वजनिक सम्पत्ति जनता जनार्दन की है। उसका दुरुपयोग महापराध है। उसके प्रयोग का अधिकार कर्तव्य पालन करके प्राप्त करो।

संकल्प

हमें सत् विश्वास, सच्चा विज्ञान एवं सच्चारित्र के बल पर अंधविश्वास, मिथ्याज्ञान एवं भ्रष्टाचार का विनाश करते हुए स्व–पर, राष्ट्र, विश्व का विकास करते हुए विश्व को पवित्रमय एवं शांतिपूर्ण बनाना है। विश्व हमारा परिवार है, परमात्मा हमारे पिता हैं, सरस्वती हमारी माता है एवं सम्पूर्ण प्राणी हमारे बन्धु हैं। अतः सबकी सेवा, सबकी रक्षा एवं सबकी समृद्धि हमारा लक्ष्य, हमारा कर्तव्य एवं हमारा धर्म है।

सत्यमेव जयते!

सुज्ञान का विकास हो–कुज्ञान का विनाश हो–2

भ्रष्टाचार का विनाश हो–विश्व का कल्याण हो–2

1- जिनवाणी - सरस्वती वंदना

–आर्यिका क्षमाश्री

विश्वमें सत्य का प्रकाश हो
माँ भारती की वंदना करो।
गुरु कृपा सदा ही साथ साथ हो।
गुरुदेव की सुवंदना करो॥
विश्वमैत्री भावना उदारता हृदय धरें।
सत्य के लिए जिएँ औ सत्य के लिये मरें।
सत्य साम्य शांति पाने हम कदम बढ़ायेंगे।
एक साथ आगे बढ़ के विश्व क्रांति लायेंगे।
हिंसा भ्रष्टाचार का विनाश हो॥ माँ भारती.....
मन में अनेकांतवाद शब्द में हो स्याद्वाद।
तोड़ना है हमको सारी रूढ़ियाँ व पंथवाद ।
वीर की महानता और राम सी हो धीरता।
बापू जैसी राजनीति राणा जैसी वीरता।
आईन्स्टीन जैसा शोध ज्ञान हो॥ माँ भारती.....
कनकनंदी की कनकता स्वर्ण सी चमक रही।
जिनसे प्रवर प्रखर ज्ञान रश्मियाँ निकल रही ।

धर्म दर्शन ज्ञान की सभा यहाँ है लग रही ।
हो गुरु की भावना सफल हो कामना यही।
विश्व में पुण्य का प्रभात हो॥ माँ भारती....

2- होगा सत्य उजेरा

(तर्ज– जहाँ डाल–डाल.....) – मुनिश्री गुप्तिनंदीजी

धर्म दर्श विज्ञान सभा में होगा सत्य उजेरा
आया अवसर आज सुनहरा –2
जहाँ सत्य कसौटी पर कसना है धर्म का इक इक पेरा
आया अवसर आज सुनहरा –2
हम धर्म दर्शन–विज्ञान मिलाकर नयी राह अपनायें।
अध्यात्म सहित नवचिंतन से शांति के सूत्र बनायें॥ शांति के...
नित उभय पक्ष के समायोग से मिटे पाप तम गहरा॥
आया अवसर.....
यहाँ हिन्दी चीनी, देश विदेशी औपनिवेशक आओ।
हे संत महंत महाबली श्रीमान् सत्य गवेषक आओ । सत्य.....
यहाँ अनेकांत सापेक्षवाद का लगे सभी पर पहरा ॥
आया असर.....
यहाँ लिंकन, गाँधी, रेडक्रास सा विश्व प्रेम अपनाना ॥
ओ रमन कनक आईन्स्टीन सा सत्य शोध है पाना। सत्य....
यहाँ प्राणी मात्र की प्रगति शांति का रहे विचार हमारा ॥
आया अवसर.....

3- लक्ष्य सत्य को पाना है

(तर्ज–चंदन है इस देश.....) –ग.आ. राजश्री

धर्म दर्शन विज्ञान गोष्ठी का लक्ष्य सत्य को पाना है।
जग जीवों में विश्व मैत्री कर्तव्यनिष्ठता लाना है।
1. सत्यसाम्य सुख पाने का उद्देश्य हमारा है प्यारा ।
हिंसा भ्रष्टाचार मिटा दे हो चिज्ज्योति उजियारा ।

विश्व शांति का ध्येय बनाकर सबको एक बानाना है॥
जग जीवों में.....
2. भावों में हो अनेकांत और स्याद्वाद नित वचनों में।
एक सूत्र में विश्व बंधे गुरु कहते अपने वचनों में ।
ऐसे ही अद्भुत विचार से सबको क्रांति लाना है।
जग जीवों.....
3. धीर वीरता श्री राम सी वीर प्रभु सी महानता।
शौर्य शिवा लक्ष्मी के जैसा राणा जैसी वीरता।
आज उन्हीं के आदर्शों की हमको अलख जगाना है।
जग जीवों.....
4. राजनीति कैसे करना यह बापू ने सिखलाया है।
सेवा भावी नाईटिंगल ने सेवाधर्म बताया है।
अनेकांत से आइंस्टीन ने खोजा ज्ञान खजाना है।
जग जीवों में.....
5. सत्य गवेषक बनकर हम सब करें गवेषणा ज्ञान का।
कनकनंदी का पथ दर्शन पा धर्म दर्शन विज्ञान का।
गुरु "राज" के भाव समझकर गोष्ठी सफल बनाना है।
जग जीवों में.....

सद्ज्ञान प्रचार

मुनिश्री गुप्तनंदीजी

विश्व में सद् ज्ञान प्रचार हो सत्यदेव वन्दना सुनो ।
अनेकांतवाद पर विचार हो सत्यदेव प्रार्थना सुनो ॥
सत्य हेतु विश्व का हर एक प्राणी मित्र हो।
विश्व के बन्धुत्व का सद्भावमय सुचित्र हो।
भाषा जाति राष्ट्र धर्म की लड़ाई छोड़कर।
सत्य के उत्थान का विचार वह पवित्र हो।
वाणी में सापेक्ष का उचार हो.... सत्यदेव प्रार्थना..
सूत्र वे स्वतंत्रता के आज हमको मिल गये ।

साम्यवाद सत्य शोध के प्रसून खिल गये।
धर्म ज्ञान के अमोघ नये मंत्र मिल गये।
एकता अखण्डता व संगठन में घुल गये।
धर्म से विज्ञान का उभार हो–सत्य देव....
देश की रक्षा में जो स्वयं को भेंट कर रहे।
जो उदार भाव से सभी का पेट भर रहे।
झूठे स्वार्थ दंभ का विषैला रूप छोड़कर
शील सदाचार की अमोल भेंट कर रहे
गोष्ठी में सभी का सहकार हो– सत्यदेव...
वर्धमान जैसी वीतरागता को पा सके।
राम, राणा, ईसा सी महानता को ला सके।
राजनीति के घिनौने दावपेंच छोड़कर ।
चन्द्रगुप्त मौर्य सा अखण्ड भाव आ सके।
वोट नोट का नहीं विकार हो–सत्यदेव की.....

"क्रांति के बीज उगाना है"

रचयिता– "उपाध्याय कनकनंदी"

तर्ज – (चंदन है इश देश का....)

मनोभूमि पर आज क्रांति के, बीज सभी को उगाना है।
सत्य साम्य के प्रांगण में, शांति के फूल खिलाना है॥
अन्याय न करना, न्याय पे चलना, सदा यही उद्देश्य रहे।
निज–परके गौरव को बढ़ाने, क्रांति सत् समता की करें॥
धन से धर्म की रक्षा करना, कभी न मान बढ़ाना है।

मनोभूमि.....

धनी को ही धर्मी न समझो, भावों का सम्मान करो।
बाह्य क्रिया का ढोंग दिखाकर, धर्म की हत्या नहीं करो॥
जिन की पूजा पाठ से हमको, निज को जिन बनाना है

मनोभूमि.....

साधन, साध्य और लक्ष्य न भूलो, रहे सदा सब में शुचिता।

रुढ़ि, पाखंड, मतवादों को तज, पाओ सत्–निर्मलता॥
सत्य–साम्य–मय, निज आतम को, आहत कभी न करना है।

मनोभूमि.....

मिथ्या, ढोंगी, ठगों से बचना, नहीं हमें है ठग जाना।
दीप–शिखा सम ज्योति बनकर, मिथ्यातम को है हरना ॥
सत्यग्राही बन, कठोर वज्र सम पारदर्शी बन जाना है।

मनोभूमि.....

पुष्प सा कोमल हृदय हमारा, जिसमें सुरभि की धारा।
रवि सम चमके तेज हमारा हो व्यक्तित्व अति प्यारा ॥
लाभ प्रशंसा और निंदा से, विचलित कभी न होना है।

मनोभूमि.....

आतम–हित के मार्ग पे चल के, करें त्याग–मय हम चर्या।
अनेकांतमय जिन वचनों की, होगी तब घर–घर चर्चा॥
सत्य धर्म की आज ध्वजा ले, "कनक" क्रांति को लाना है।

मनोभूमि.....

(प्रस्तुति – श्रमणी क्षमा श्री)

यथार्थ आध्यात्मनिष्ठ से जो हिंसा होती है वह वस्तुतः हिंसा नहीं हैं, परन्तु ढोंगी आध्यात्मिकवादी की अहिंसा भी हिंसा ही है।

★

सत्य में ही अनंत शक्तियाँ होती हैं अतः सत्य की ही विजय होती है।

★

मोही जीव स्ववश / स्वतन्त्र / आत्मनिष्ठ / सत्याग्रही होकर कुछ नहीं करता है परन्तु राग, द्वेष, मोह, काम विषय–वासना, तृष्णा, ईष्यादि की विवशता से उसे काम करना पड़ता हैं तथा आत्मनिष्ठ व्यक्ति व्यवहार के कार्यों को आवश्यकतानुसार करता है।

आ. कनकनन्दीजी

विषय - अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
1. सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म का स्वरूप	1
2. मेरे आध्यात्मिक अनुभव	4
3. मेरे जीवन्त कटु अनुभव	7
4. मेरी विवशता तथा चिन्ता क्यों? कब?	18
5. स्वावलम्बन तथा समयानुवद्धता	21
6. कर्त्तव्य तथा अधिकार	22
7. त्रिवेणी संगम	23
8. प्रातः कालीन क्रियायें	25
9. धार्मिक –विद्यालय : देवालय	27
10. परिवार जीवन्त प्रयोगशाला	29
11. कर्त्तव्य पालन के लिये भोजन	33
12. प्रशिक्षणालय – विद्यालय	37
13. शिक्षा का स्वरूप एवं उद्देश्य	40
14. विद्यार्थियों के योग्य आहार–विहार आसनादि	60
15. योग्य गुरू (शिक्षक)	79
16. कुशिक्षा – शिक्षार्थी एवं शिक्षक	85
17. परस्पर सहयोग का नाम है– समाज–संगठन	93
18. धनार्जन में भी धर्म चाहिए	95
19. गुरू की सेवा : जीवन्त भगवान् की सेवा	100
20. अतिथि–सत्कार	104
21. सेवाधर्मः जीवन्त धर्म	108
22. पवित्रता का सूचक है– स्वच्छता	115
23. पर्व की पवित्रता तथा पतितता	116
24. भारत महान् वने तो कैसे ?	124
25. विश्व (भूमण्डल) में शान्ति हो तो कैसे?	128
26. उच्च आदर्शमय जीवन	138
27. दहेज की रीति–रिवाज एक डाकू की रीति–रिवाज	143
28. ज्ञान विज्ञान का आविष्कारक : भारत	146
29. आचार्यरत्न श्री कनकनंदी गुरूदेव की आरती	152

1-सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म का स्वरूप

विश्व के प्रत्येक द्रव्य के जो स्व–स्व शुद्ध स्वभाव है वह ही सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म है। इस लेख में जीव सम्बधी विचार–विमर्श करेंगे। जीव में अनंत धर्म होते हैं उसमें से कतिपय धर्म के बारे में प्रकाश डाल रहे हैं–

1. **सत्य :–** जो यथार्थ हो, पवित्र हो, अनन्त शक्तियों का पिण्ड हो, समस्त गुण धर्म अच्छाइओं का आधार हो – स्रोत हो, उसे सत्य कहते हैं। जो विश्व में शुद्ध रूप में विद्यमान हो, उसे परम् सत्य जानना चाहिये। जीव की भावात्मक–पवित्रता आध्यात्मिक सत्य है। पवित्रता से रहित सत्य बोलना, धार्मिक–क्रिया–काण्ड करना भी असत्य है, अधर्म है। भाव की पवित्रता रहित सत्य बोलता कभी–कभी असत्य से भी अधिक भयंकर हो सकता है । जैसा कि शिकारी को शिकार का पता बताना। दुष्ट भाव से सहित चोर, डाकू, वेश्या, दुष्ट, बदमाशों के मीठे वचनों से भी अधिक सत्य, पवित्र भाव से युक्त गुरु, सज्जनों के कठोर कड़वे वचन है। कलहकारी, निन्दात्मक, कठोर, बकवास, अहंकार पूर्ण, फूट डालने वाला सत्य वचन भी असत्य है। उचित वचन का पालन नहीं करना, प्रामाणिकता का अभाव, निर्धारित समय में काम नहीं करना, कूट–कपट करना, धोखा–धड़ी करना, मायाचारी करना, चोरी–डकैती, मिलावट, काला–बाजारी, ठगी करना एवं स्व–योग्य कर्त्तव्यों का पालन नहीं करना, दूसरों की हँसी उड़ाना आदि भी असत्य हैं।

2. **समता / अहिंसा –** आत्मा की समरसता / शान्ति को नष्ट नहीं करना या हत्या / हिंसा नहीं करना आदि को समता / अहिंसा कहते हैं। प्रत्येक जीव का शुद्ध स्वरूप समता / अहिंसा / सुख–शांतिमय होने के कारण प्रत्येक जीव, सुख–शांति को चाहता है। भले कोई जीव ज्ञान या धर्म नहीं चाहता हो या कोई जीव धन या नाम नहीं चाहता हो तथापि प्रत्येक जीव सुख–शांति तो चाहता ही है। जैसा कि नास्तिक/मिथ्यादृष्टि धर्म नहीं चाहता है तथापि सुख–शान्ति तो चाहता है तथा निस्पृह साधु सन्त धन या नाम नहीं चाहते हैं तथापि सुख–शान्ति चाहते हैं। यहाँ तक कि वनस्पति, कीट पतंग आदि अविकसित क्षुद्र जीव भी सुख–शान्ति चाहते हैं। ऐसी सर्व जीवों के सर्व श्रेष्ठ, सर्व जेष्ठ, प्रिय वस्तु को बाधा/पहुँचाना, नष्ट करना, विकृत करना पाप है, अधर्म है, अपराध है। स्वयं की

समरसता/शांति की हत्या किये बिना दूसरों की सुख–शान्ति की हत्या नहीं हो सकती है अतएव स्व हिंसा/भावहिंसा ही यथार्थ से हिंसा है और दूसरों की जो हिंसा होती है उसे द्रव्य–हिंसा/गौण–हिंसा कहते है। असत्य क्रूरता, घमण्ड, मायाचारी, तृष्णा, घृणा, कठोरता, चोरी आदि से आत्मा की समरसता/शान्ति की हत्या होती है अतः यह सब हिंसा ही है। अतः शरीर के अवयवों को नष्ट करने रूप द्रव्यहिंसा से भी बड़ी हिंसा क्रूरता, घृणा, तृष्णादिरूपी भाव हिंसा है। कृषि कार्य से आनुशांगिक रूप से अनेक जीव मरने पर भी कृषक से भी ज्यादा हिंसक वह व्यापारी है जो कि मिलावट करता है, शोषण करता है, कृत्रिम रूप से अभाव उत्पन्न करके अधिक मूल्य से माल बेचता है, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तथा हिंसात्मक बीड़ी, तम्बाकू, पानमसाला, शराब, चर्म निर्मित वस्तु, चर्बी मिश्रित तथा अखाद्यादि मिश्रित वस्तु बेचता है, दूसरों की मजबूरियों का लाभ उठाकर ब्याजादि के माध्यम से शोषण करता है। दूसरों की प्रगति, प्रशंसा, अच्छाइयों से डाह करना, उसमें बाधा डालना, सार्वजनिक सम्पत्ति आदि का दुरुपयोग करके, अस्वच्छ करके दूसरों को बाधा पहुँचाना भी हिंसा है। राष्ट्र की रक्षार्थ, दूसरों की रक्षार्थे, आत्मा की रक्षार्थे या न्याय–धर्म की रक्षार्थे जो विपुल मनुष्यों की भी हत्या हो जाती है उससे भी गर्हित हिंसा वह है जो हत्या धन, भोजन, मंत्र, सिद्धि,देवी–देवता की प्रसन्नता के लिये या धर्म के नाम पर एक भी पशु–पक्षी या मनुष्य की–की जाती है। स्वयं हिंसा करना, हिंसा करने के लिए प्रेरित करना, हिंसा के लिए सहमत होना, हिंसा की योजना बनाना, हिंसा में योगदान देना आदि भी हिंसा है। कंथचित् हिंसा करने वालों से भी वह अधिक हिंसक है जो हिंसा की योजनादि बनाता है, क्रूर, कुटिल, असहिष्णु भाव रखता है, घृणा रूपी अग्नि से जलता रहता है। जैसा कि विष पीकर मरने वाला तो स्वयं उस विष से अधिक से अधिक एक बार ही मरेगा परन्त विष पिलाने वाला, उसे बेचने वाला विपुल जीवों को मार डालेगा। इसी प्रकार शराब , बीड़ी, तम्बाकू, माँसादि सेवन करने वालों से भी उसका व्यापार करने वाला, झूठ बोलने वालों से भी झूठ से व्ययसाय (झूठे वकील, जज, व्यापारी, भ्रष्टाचारी,नेतादि) करने वाले, चोर–डाकू, ठगी से भी इस कार्य से प्राप्त धन का व्यापार करने वाले उन्हें नियोजित करने वाले,उन्हें संरक्षण देनेवाले, वेश्यागमन करने वालों से भी वेश्याओं का व्यापार करने वाले अधिक हिंसक/पापी/अधर्मी हैं। इसलिए केवल शरीर से द्रव्य हिंसा आदि पाप

नहीं करने वालों को धार्मिक नहीं मान लेना चहिए। जैसा कि कुछ युद्ध में राजा, सेनापति आदि युद्ध नहीं करते है परन्तु मुख्य कारण / सूत्रधार वे ही होते है। इसलिए साक्षात् द्रव्य–युद्ध नहीं करने पर भी वे भाव युद्ध करते हैं। इसलिए वे हिंसा का पूर्ण–भागी होते हैं। इसी प्रकार वर्तमान काल में अनेक भ्रष्टाचार, घोटाला, हत्या, बलात्कार के प्रछन्न मुख्य कर्णधार/सूत्रधार नेता, मंत्री, नौकरशाही, पुलिस, उद्योगपति, व्यापारी आदि होने से वे ही इन पापों के पूर्ण उत्तरदायी हैं।

3. **सापेक्ष विचार / सहिष्णुता (उदारता)** – विश्व के प्रत्येक द्रव्य / घटक / घटनाओं अनेक गुण–धर्म पक्ष / कारण होने के कारण उन्हें उन–उन दृष्टियों से देखना चाहिए / समझना चाहिए / कथन करना चाहिए। इसे ही अनेकान्त सिद्धान्त,वैचारिक अहिंसा, उदारता, सहिष्णुता, सापेक्ष सिद्धान्त, स्याद्वाद आदि कहते हैं। इसके कारण बौद्धिक–विकास, भावात्मक–विशालता, आत्मा की–पवित्रता, कथन में लचीलापन/मृदुता आती है जिससे सत्यग्राहिता, नम्रता, सहिष्णुता आती है तथा संकीर्णता, कटुता, झगड़ा, कलह, द्वेष, कूट, युद्ध, विग्रह,हिंसा, आदि घटती हैं। यह गुण उस व्यक्ति में प्रगट होता है जो अंधविश्वास, संकीर्णता, घमण्ड, पूर्वाग्राही, हठाग्राही, मायाचारी आदि दुर्गुणों से रहित होता है।

भूत का विश्व–इतिहास और वर्तमान का प्रायोगिक ज्ञान यह सिद्ध करता है कि व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर जो कुछ वाद–विवाद, विसंवाद, कलह, झगड़ा, युद्ध होते हैं उसमें मुख्य कारण संकीर्णता/असहिष्णुता अनुदारता है। अतएव व्यक्ति से लेकर विश्वशान्ति तक के लिए सापेक्ष विचार, सहिष्णुता की आवश्यकता है। धार्मिक इतिहास, पुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्म में भी जो मत, मतान्तर, फूट, कलह, युद्ध होते हैं वे भी असहिष्णुता के कारण है। धर्म के प्रचारक यथा : तीर्थंकर, पैगम्बर, ईसा–मसीह, साधु–संत जो उपदेश करते हैं आगे जाकर उनके अनुयायी उनके ही सिद्धान्त को लेकर या उनको ही लेकर झगड़ा, कलह, फूट आदि करते हैं। आज जैनधर्म, हिंदू धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिमधर्म में अपने–अपने एक ही ग्रंथ एवं एक ही धर्म प्रचारक को लेकर फूट से लेकर युद्ध तक करते रहते हैं। इसी प्रकार राजनीति में, समाज में, परिवार में, ग्राम में, नगरमें, प्रांत में राष्ट्र में, अंर्तराष्ट्रों में इस असहिष्णुता के कारण विषमता फलती–फूलती है।

प्रकारान्तर से सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, सत्–विश्वास,

सद्विज्ञान, सदाचार: क्षमा, मृदुता, सरलता, निर्लोभता, पवित्रता, संयम, तप, त्याग, शालीनता, विनम्रता, परोपकारीता, दानशीलता, सहिष्णुता, उदारता आदि ही सर्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म है। इस धर्म के सहायक है– स्वावलम्बन, सहकार, समयानुबद्धता, प्रमाणिकता, साहस, स्वच्छता, स्वास्थ्य, योग्य–परिस्थिति, कर्त्तव्यनिष्ठा, कर्मशीलता, योग्य साधनादि।

विश्व में जो विभिन्न नामधारी धर्म–पंथ–सम्प्रदाय–मजहब है या धार्मिक रीति–रिवाज, पूजा–पाठ, तीर्थ–यात्रा, पर्व, महोत्सव, धार्मिक स्थल, मूर्ति, धार्मिक ग्रन्थ, वेषभूषा, भाषा, पुराण, इतिहास, किम्बदन्ती, परम्परा, मंत्र, दीक्षा, शिक्षा, देवी–देवतादि हैं वे सब धर्म के लिए अधिक से अधिक साधक/निमित्त हो सकते हैं। इसे ही धर्म मान लेना महान भूल होगी। जैसेकि 'आम' शब्द को ही यथार्थ से आम मानना, अहिंसा शब्द को ही यथार्थ से अहिंसा मान लेना, भारत के नक्से को ही यथार्थ से भारत मान लेना।

सत्य में लोकालोक (विश्व एवं प्रतिविश्व) स्थित समस्त 6 द्रव्य 7 तत्व एवं 9 पदार्थ गर्भित है तो समता में समस्त मुनि तथा श्रावक धर्म अन्तर्गत है तथा सापेक्ष सिद्धान्त में समस्त वैचारिक और कथन प्रणाली गर्भित है। अतएव सत्य, समता एवं सापेक्ष ही सार्वभौम, वैश्विक सर्वोदय धर्म है। अतः सत्य ही परमेश्वर, समता ही सदाचार और सापेक्ष ही समन्वय / शुभाशय है।

2- मेरे आध्यात्मिक अनुभव

1. **भावकी निर्मलता / सरलता / पवित्रता / समता ही अध्यात्म हैं।**

2. भले ही त्याग, तपस्या, ग्रन्थाध्ययन,मौन, एकान्तवास, उपवास, पूजापाठ, तीर्थयात्रा, तत्वचर्चा, योगासनादि आध्यात्मिकता के लिए बाह्य कारण / चिन्ह हो सकते हैं परन्तु वस्तुतः ये आध्यात्मिक नहीं है। जैसा कि गेंद आदि से खेलने से व्यायाम होता हैं और व्यायाम से शारीरिक स्वास्थ्य लाभ होता है परन्तु गेंद में स्वास्थ्य नहीं है।

3. प्रायः हर युग में अधिकांश व्यक्ति आध्यात्मिकता के परिवर्तन में धार्मिक रीति–रिवाज, रूढ़िवादी–परम्परा, बाह्य–क्रियाकाण्ड को ही आध्यात्मिक मान लेते हैं। जैसा कि हिरण मृगमरीचिका को ही जल मान लेता हैं तथापि उससे उसकी प्यास नहीं बुझती है। वैसा ही जिन्होंने केवल धार्मिक बाह्य क्रियाकाण्ड का आश्रय

लिया है वे दुःखी होते हैं।

4. आध्यात्मिक का मापदण्ड / लक्षण है – सत्यनिष्ठा, साम्यभाव, पक्षपात का अभाव, अवैरत्व, धैर्य, क्षमा, शान्ति, नम्रता, सरलता, निर्लोभता, कृतज्ञता, अनाचालकता, भोग से विरक्ति आदि–आदि।

5. आध्यात्मिक महापुरुष आवश्यकतानुसार कुछ क्रिया कलाप करते हैं, तो कुछ घटना घटित हो जाती हैं परन्तु वे सब आध्यात्मिक ही हो कोइ जरुरी नहीं है, बल्कि कुछ तो घटना अधर्म भी हो सकती हैं। परन्तु उनके अनुयायी उनकी आध्यात्मिकता से अधिक उन घटनाओं को अधिक महत्व देते हैं। जैसा कि गाँधीवादी, गाँधी के आदर्श को नहीं, परन्तु गाँधी टोपी को, वकील, जज न्याय को नहीं परन्तु काली कोट और टाई को, विद्यार्थी विद्या को नहीं परन्तु विद्यालय गणवेश को।

6. ढोंगी आध्यात्मिकवादी के मापदण्ड / लक्षण हैं –

भाव की पवित्रता के बदले केवल बाह्य रीति रिवाजों को अति महत्व देना, उदारता के बदले स्वमत वालों से राग, परमत वालों से घृणा, मुँह में मधुर हृदय में जहर। हर युग में और हर देश में ऐसे व्यक्तियों ने ही सत्यग्राही, उदारमना, महापुरुषों को कष्ट दिया, उनका विरोध किया। ईसा को क्रास पर चढ़ाया, सुकरात को विष पिलाया, मीरां को विष पिलाया, अकम्पनाचार्यादि सात सौ जैन मुनियों को यज्ञ के बहाने जलाने की कोशिश आदि, अनेक उदाहरण इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

7. ढोंगी आध्यात्मिकतावादी के अनेक बहाने होते हैं। वे अपने पवित्र कर्तव्यों को दूसरों के ऊपर आरोपित करते हैं। यथा – जब काल आयेगा तब हो जायेगा, जो नियति में हैं वह हो जायेगा, जो भाग्य में है वह हो जायेगा, उपादान से ही कार्य हो जायेगा, निमित्त से ही कार्य हो जायेगा। जो भगवान ने देखा वह हो जायेगा, भगवान् जब करेंगे तब होगा आदि आदि।

8. भोगभूमिज पूर्ण दीर्घ जीवन सुख सुविधा में बिताते थे और मरकर स्वर्ग जाते थे। भोग–भूमि में चोरी, बलात्कार, युद्ध, भेदभाव, उच्च–नीचादि भी नहीं होता था। कर्म भूमि में आध्यात्मिक का प्रचार–प्रसार हुआ, जिसमें अनेक साधु–सन्त अरिहन्त, तीर्थंकर बने, मोक्ष गये, परन्तु अनेक नरक एवं तिर्यंच गति में भी गये तथा जीवनकाल में भी युद्ध कलह, वैमनस्य, बैरत्व चोरी, डकैती, हिंसा

आदि से भी दुःखी रहे। इससे सिद्ध होता है कि आध्यात्मिकता के कारण तो जिन्होंने आध्यात्मिक को वास्तविक रूप से अपनाया उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया परन्तु जिन्होंने उसका दुरुपयोग किया, विरोध किया, ढोंगरूप से अपनाया उसकी दुर्गति भी हुई। इन सब कारणों से अभेद साम्यभाव से सुखमय जीवन जीने वाले जीवों में भी संघर्ष–विषमता, अनैतिकता आदि फैली। अनेक धर्म सम्प्रदायों का जन्म हुआ, अनेक धर्म युद्ध हुए, धर्म के नाम पर या भगवान, देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिए हिंसा हुई, अन्धविश्वास फैला, अनेक रीति–नीति, पर्व, उत्सव, प्रचलित हुए। इस प्रकार सही रूप से श्रद्धा विवेक, आचरण रूप से आध्यात्मिकता को अपनाने वालों का तो विकास हुआ परन्तु दुरुपयोग करने वालों की दुर्दशा हुई। जिस प्रकार आध्यात्मिकता से रहित भोग भूमि में सम्पूर्ण पशु–पक्षी, मनुष्य सुखी रहते थे, उसी प्रकार आध्यात्मिक युग में नहीं रह पाये। इससे सिद्ध होता है कि आध्यात्मिकता का सदुपयोग कम व्यक्ति कर पाते हैं व दुरुपयोग अधिक करते हैं।

9. जिसके अन्दर आध्यात्मिकता प्रकट हो जाती है, वह स्वयं हर दृष्टि से पवित्र बनता जाता है, उसके वचन और व्यवहार भी पवित्र हो जाते हैं, वह हर जीव की मंगल कामना करता है, भले वह हर जीव के मंगल करने में असमर्थ ही क्यों न हों।

10. जो पहले स्वयं को मन–वचन–व्यवहार से पवित्र किये बिना दूसरों को पवित्र बनाना चाहता है या परोपकार करना चाहता है तो वह ढोंगी, पाखण्डी, ठग, धूर्त है।

11. खेत की रक्षा के लिए बाड़ लगाई जाती है परन्तु कभी–कभी बाड़ में लगाये गये वृक्ष (बेशर्मी, निर्मूली, कांग्रेस घास, नीलगिरी, विलायती बबूल) ही खेत को भक्षण कर लेते हैं। इसी प्रकार अध्यात्म के लिए जो कुछ नियम, परम्परा, पर्व, धार्मिक स्थलादि स्वयमेव बने थे, या बनाये गये थे वे ही आध्यात्मिकता को अधिक क्षति पहुँचाते हैं।

12. बाड़ के वृक्ष जब बड़े–बड़े हो जाते हैं तब उन वृक्षों की जड़, छायादि के कारण खेत की हानि होती है। बाहर से तो खेती दिखाई नहीं देती है परन्तु बाड़ ही दिखाई देती है, उसी प्रकार जब अध्यात्म में बाह्य क्रिया–काण्ड अधिक बढ़ जाता है तो आध्यात्मिकता में भी ह्रास हो जाता है तथा आध्यात्मिकता के

परिवर्तन में क्रिया–काण्ड ही दिखाई देती हैं।

13. गृहादि के भले आकार–प्रकार भिन्न–भिन्न होते हैं परन्तु आकाश तो एक ही है और सर्वत्र एक सा है उसी प्रकार तीनों लोक में, तीनों काल में भले बाह्य क्रियाकाण्ड अलग–अलग क्यों न हो तथापि आध्यात्मिक एक ही है और एक सा है।

14. ढोंगी आध्यात्मवादी यथार्थ आध्यात्मवादी की अपूर्णता की भी निन्दा करता है परन्तु स्वयं भोगी, ईर्ष्यालु, कुटिल, कठोर रहता है। स्वयं के दुर्गुणों को भी आध्यात्मिकता के रूप से दूसरों के सामने परोसता है।

15. जैसे विवेकी घी रखने वाले घड़े को घी का आधार मानते हुए भी घी नहीं मानता है वैसे ही आध्यात्मिकवादी आध्यात्मिक के साधन –भूत शास्त्र, मन्दिर, मूर्ति, पूजा–पाठ, परम्परा, पर्वादि को साधन मानते हुए भी आध्यात्मिक नहीं मानता है, अन्ध श्रद्धालु शास्त्रादि को ही आध्यात्मिक मान लेता है।

16. अध्यात्मनिष्ठ व्यक्ति तनाव, विक्षुब्धता, कषाय, हठग्राहिता, संक्लेश, विषमता, वैरत्वादि को अध्यात्म के शत्रु मानकर सर्वदा, सर्वथा त्याग करता है परन्तु छद्मवेशी आध्यात्मिकवादी उपर्युक्त दुर्गुणों से अपनी रोटी सेकता रहता है।

17. यथार्थ अध्यात्मनिष्ठ व्यक्ति की बाह्य क्रियाकाण्ड, गतिविधि, स्वाभाविक होती हैं जैसा कि शुद्ध चीज के वर्ण, गन्ध, स्वाद आदि स्वाभाविक होते हैं परन्तु ढोंगी अध्यात्मवादी की बाह्य क्रियादि कृत्रिम होती है जैसा कि कृत्रिम चीज के वर्णादि कृत्रिम/मिलावट होते हैं।

18. भारत के नक्शे में ही भारत को खोजना जैसी मूर्खतापूर्ण है वैसी ही आध्यात्मिक ग्रन्थ, प्रतीक, तीर्थस्थल, पर्वादि में आध्यात्मिकता को खोजना अंधश्रद्धा है।

3- मेरे जीवन कटु अनुभव

1. वस्तुतः धर्म भाव की पवित्रता होने पर भी अधिकांश व्यक्ति अपनी धार्मिक परम्परा, रीति–रिवाज, रुढ़ियों को येन–केन प्रकार से निर्वाह करते हुए भाव को और भी मलिन / वक्र / कठोर / संकीर्ण / हठी / पर निन्दक बना लेते हैं।

2. भाव की अपवित्रता से ही हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह रुपी

पाप होते हैं। परन्तु अधिकांश व्यक्ति द्रव्य हिंसा नहीं करते हैं वे भी असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह रूपी पाप को करते रहते हैं और स्वयं को अहिंसक मान लेते हैं। इसी प्रकार अन्य चोरी आदि द्रव्य पापों को नहीं करने वाले भावरूप से या विकृत रूप से उन पापों को करते रहते हैं। जैसा कि कोई अनाज को रोटी के रूप से या कोई भात के रूप से या कोई बाटी के रूप से तो कोई मिष्टान्नादि रूप से खाते हैं। रूप, रंग, स्वादादि अलग–अलग होने पर भी वे सब कोई मूल रूप से अनाज ही खाते हैं इसी प्रकार प्रत्येक धर्म के अनुयायी पाँचों ही पाप करते हैं।

3. भाव की कलुषता ही क्रोध, मान, माया, लोभ है। इन कषायों से युक्त व्यक्ति कषाई है। इस दृष्टि से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब कषाई है। तथापि इन कषायों ये युक्त व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, उच्च मानते हैं।

4. प्रायः प्रत्येक धर्म के अनुयायी हो या देश के निवासी हो या भाषा–भाषी हो अथवा जाति के लोग हो स्वयं की श्रेष्ठता / ज्येष्ठता / पवित्रता / का बखान करते हैं परन्तु इन गुणों को विचार–आचार–व्यवहार रूप में जीवन में उतारना नहीं चाहते हैं।

5. आत्म–कल्याण के लिए हर कार्य करने योग्य है, कि परिवर्तन में अधिकांश व्यक्ति के अधिकांश कार्य क्षुद्र स्वार्थ के लिए होता है भले वह कार्य धार्मिक हो या राष्ट्रीय हो या परोपकार का ही क्यों न हो। व्यापर, व्यवसाय, नौकरी आदि तो साक्षात् शोषण, अन्याय, धोका–धड़ी, बेईमानी, चोरी, डकैती रूपी नारकीय कार्य है।

6. भारत को धर्म प्रधान तो कहते हैं परन्तु अधिकांश भारतीय तो अधर्म प्रधान है। भले भारतीय लोग अपनी–अपनी धार्मिक परम्परा की पूजा–पद्धति, रीति–रिवाज को रुढ़िवशात् मान लेते हैं परन्तु परोपकारिता, जीवन्त व्यक्ति की सेवा, उदारता, राष्ट्रीयता, स्वच्छता, प्रामाणिकता, एकता, सहिष्णुता, कर्तव्यनिष्ठा, समयानुबद्धता, नियमितता, वचनबद्धता आदि जो जीवन्त धर्म है उसे जीवन में नहीं उतारते हैं।

7. सामान्यतः धार्मिक ज्ञान धार्मिक सत्–साहित्यों के अध्ययन से होता है और उससे व्यक्ति धार्मिक आचरण करके धार्मिक बनता है। परन्तु अधिकांश धार्मिक साहित्य अध्ययन करने वाले अधिक अधार्मिक पाये जाते हैं। क्योंकि वे

इस ज्ञान के अनुसार आचरण तो करते नहीं परन्तु जो धार्मिक साहित्य नहीं पढ़ते है उनसे घृणा करते हैं, उनका शोषण करते हैं, धार्मिक कट्टरता / संकीर्णता / वैमनस्यता फैलाते हैं, धार्मिक ज्ञान का व्यापार करते हैं, दूसरे धार्मिक व्यक्तियों की केवल कमियों को उछाल करके गन्दगी फैलाते हैं। उनमें कुटिलता / कठोरता / रुढ़िवादिता / संकीर्णता / अहंवृत्ति अधिक पाई जाती है।

8. सत्य, न्याय, उत्कृष्टता, सदाचारादि प्राचीन काल के हो या आधुनिक काल के, उसे उत्तम मानकर स्वीकार करना चाहिए। परन्तु (अधिकांश रुढ़िवादी) धार्मिक लोग प्राचीन काल को (प्राचीन कालीन व्यक्ति, रीति, नीति आदि को) ही अच्छा मानते हैं और आधुनिक काल को (व्यक्ति, नीति आदि) ओच्छा मान लेते हैं। ऐसा ही कुछ तुच्छ आधुनिकवादी प्राचीन काल को खोटा मान लेते हैं। प्राचीन कालीन बहुविवाह, शिकार, युद्ध, दास–प्रथा, दिग्विजय, द्यूत(जुआ) आदि को किसी न किसी रूप में महिमा मण्डित किया गया है। आधुनिक कालीन मिलावट, भ्रष्टाचार, धोखा–धड़ी, मायाचारी, घोटालादि को व्यापारिक दक्षता/कला या मजबूरी रूप में तो, शारीरिक श्रम नहीं करना, कृत्रिम रेडीमेड भोजन–प्रसाधन सामग्री, चाय, कॉफी, नशीली वस्तु, टूथपैस्ट, गर्मी में भी काला–कोट पहनना, टाई बाँधना,घर में भी जूते–चप्पल पहनना या पहने हुए ही भोजन करना, स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छन्द उद्दण्ड होना आदि आधुनिकता के नाम पर गर्व से अपनाते हैं।

9. हर देश के हर काल के लोग अपने–अपने प्राचीन महापुरुषों के तो आदर–सत्कार–बहुमान करते हैं परन्तु अधिकांश व्यक्ति जीवन्त महापुरुषों का अनादर–अपमान, ताड़न–मारणादि करते हैं। उनकी मृत्यु के बाद उनकी मूर्ति या चिन्हादि की पूजा करते हैं। इसलिये अधिकांश व्यक्ति भले वे मूर्ति पूजक हो या न हो, भूत पूजक हैं, बुत (मूर्ति–चिन्ह) पूजक हैं। इसलिए तो जीवन्त को स्वर्गीय कहते हैं (भले वह मर करके नरक में भी क्यों न गया हो)।

10. महापुरुषों का सम्मान साधारण व्यक्तियों से न होकर संघर्ष होना भी स्वाभाविक है। क्योंकि साधारण व्यक्तियों की गति असत्य, अन्याय, अत्याचार, मिथ्याचार की ओर है तो महापुरुषों की गति इससे विपरीत सत्य, न्याय, यत्नाचार, सदाचार की ओर होती है। इस प्रकार दोनों की गति परस्पर विपरीत होने से संघर्ष होना स्वाभाविक है।

11. कृषक वनस्पति का दोहन करके पेट भरता है तो अधिकांश व्यापारी,

उद्योगपति मनुष्यों को दहन करके, शोषण करके पेट से अधिक पेटी भरते हैं, तथापि कृषक को दीन-हीन-पापी मानते हैं और स्वयं को पुण्यशाली, बड़ा आदमी मानते हैं। अर्थात् आदमखोर, अनाजखोर को आदमखोर शेर मानता है।

12. प्रायः प्रत्येत व्यक्ति किसी न किसी रूप से संकीर्णता / हठग्राहिता / पक्षपातिता / एकान्तअभिप्राय से ग्रसित हुआ, बन्धा हुआ अनुभव में आता है: भले वह संकीर्णता आदि धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, रीति-रीवाज, वेष-भूषा, भाषागत, जातिगत, भोजन, चिकित्सा, सामूहिक, व्यक्तिगत, दलगत आदि क्यों न हो। इसके कारण ही जीव का सार्वभौम, सार्वत्रिक विकास नहीं होता है।

13. दान, पुण्य, परोपकार, त्याग, तपस्या, ज्ञान, ध्यान, सदाचार, सहिष्णुता, उदारता, सरलता, गुणग्राहकता आदि उत्तम गुण तथा इन गुणों से युक्त व्यक्तियों से भी अधिकांश व्यक्ति घृणा, ईर्ष्या करते हैं, उनकी निन्दा करते हैं, उन्हें क्षति पहुँचाने की भावना भाते हैं, उसकी योजना बनाते हैं और क्षति भी पहुँचाते हैं। इन गुण तथा गुणी की प्रशंसा करने वालों से भी उपर्युक्त दुर्व्यवहार करते है भले उन गुणों को वे आदर्श रूप से क्यों न मानते हो। उपर्युक्त गुणों से युक्त भूतपूर्व प्राचीन अविद्यमान व्यक्तियों को भले वे भगवान्, महान् आदि मानकर उनकी पूजा, सत्कार, प्रशंसा आदि क्यों न करते भी हो।

14. प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अन्य को स्वयं से किसी भी दृष्टि से दूसरों को श्रेष्ठ रूप से देखना नहीं चाहता है। यह दुष्प्रवृत्ति गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, अभिभावक-सन्तान, सधर्मी-सधर्मी, अड़ोसी-पड़ोसी, भाई-भाई, बहन-बहन, सहपाठी-सहपाठी, व्यापारी-व्यापारी, वैद्य-वैद्य, कवि-कवि, शिक्षक-शिक्षक, धर्मगुरु-धर्मगुरु, राज्य-राज्य, राष्ट्र-राष्ट्र में भी पाई जाती हैं। जैसा कि पानी का स्तर या गति मूल स्थान से अधिक ऊँचाई लिए हुए नहीं होती है उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अन्य की प्रगति को स्व-प्रगति से अधिक होने पर सहन नहीं कर पाता है।

15. अधिकांश व्यक्ति दूसरों को क्षति पहुँचा कर सोचते हैं कि मैं दूसरों को क्षति पहुँचा कर स्वयं को लाभ पहुँचाया है परन्तु वे नहीं जानते हैं कि दूसरों को क्षति पहुँचाना वस्तुतः स्वयं को भी क्षति पहुँचाना है। इसी प्रकार परोपकार से केवल दूसरों का उपकार मान लेते हैं परन्तु स्वयं का भी उपकार होता है,

यह नहीं जानते हैं। इसलिए अधिकांश व्यक्ति दूसरों को तो क्षति पहुँचाते हैं किन्तु उपकार नहीं करते हैं जिस उपकार से साक्षात् स्वयं को लाभ नहीं पहुँचता हो।

16. अधिकांश व्यक्ति स्वाभिमानी के परिवर्तन में दुराभिमानी होते हैं। स्वाभिमान को नष्ट करने वाले चोरी, डकैती, धोखा-धड़ी, बेईमानी, झूट-कूट, कपट, व्यसन सेवन, क्रोध, घमण्ड, घृणा, तृष्णा, भ्रष्टाचार, बलात्कार आदि कार्य करेंगे। इन कार्यों को बिना शिक्षण, अनुमोदन, सहमति से भी करेंगे परन्तु दुराभिमान के कारण सेवा, परोपकार, दूसरों के सहयोग, स्वावलम्बन, स्वच्छता, अनुशासन, शालीनता, नम्रता आदि जो स्वाभिमान को बढ़ाने वाले कार्य हैं उसे नहीं करेंगे। बिना स्वागत, बिना बुलाये चोरी, बलात्कार, निन्दा, कलह, ईर्ष्या, द्वेष करने के लिए, बाधा पहुँचाने के लिए आ जावेंगे परन्तु धार्मिक, परोपकार, समाजसेवा, राष्ट्रहित, दानादि के लिए सुस्वागत करने के बाद भी नहीं आयेंगे। उन्हें यह कार्य करने में अपमान अनुभव होता है। इसलिए निमंत्रण पत्रिका, द्वार आदि पर केवल स्वागत न लिखकर "सज्जनों का स्वागत दुर्जनों का निर्गत" लिखना चाहिए और तदनुकूल व्यवहार भी करना चाहिए।

17. अनेक व्यक्ति जितना धन दुरुपयोग - भोगादि के लिए करते हैं उतना दान आदि में नहीं करते हैं। दान करने वाले भी जितना नाम के लिए करते हैं उतना धर्म के लिए नहीं करते हैं। जिस समय जिसमें अधिक नाम होगा वहाँ धन देंगे परन्तु अच्छे कार्यों के लिए नहीं देंगे। जैसे कि आहारदान, औषधदान, अभयदान, ज्ञानदान में। इसमें भी ज्ञानदान कम देंगे। अनेक व्यक्ति बोली में लाखों रुपये बोलते हैं परन्तु आहारदान, औषधिदान, अभयदान और उससे भी कम ज्ञानदान में खर्च करेंगे।

18. विश्व की सर्वश्रेष्ठ अमूल्य - आध्यात्मिक - निधि, मोक्ष के साधक स्वरूप भगवान, शास्त्र और गुरु का दुरुपयोग अधिकांश लोक लौकिक प्रयोजन तथा संसार के साधक रूप में करते हैं। भगवान की पूजा-प्रार्थना सांसारिक लाभ के लिए करते हैं। कुछ पंडितादि भगवान की पूजा करवा कर धन शोषण करते हैं तो कुछ पूजा-पद्धति को लेकर लड़ाई - झगड़ा करके भाव को और भी कलुषित करके कर्म बंध करते हैं। कुछ लोग ज्ञान का व्यापार करते हैं तो कुछ लोग शास्त्र के आधार से समाज में विषमता फैलाते हैं। कुछलोग पंचकल्याणक, विधान आदि में गुरुओं को धन कमाने का ऐजन्ट बनाते है।

19. अधिकांश व्यक्ति अपनी उपलब्धि, योग्यता, अधिकार, सत्ता का दुरुपयोग करते हैं। यथा: कानून के अधिवक्ता धन कमाने के लिए न्याय के पक्ष को भी त्याग करके अन्याय का पक्ष लेंगे और केस को अनावश्यक लम्बा खींचेंगे। इसी प्रकार न्यायाधीश भी अन्यायाधीश और न्यायालय भी अन्यायालय का काम कर रहे हैं। लोकसेवक (सांसक,मंत्री आदि) भी सेवा के बदले में शोषण राष्ट्र की सम्वृद्धि के परिवर्तन में राष्ट्र की बर्बादि करते हैं पुलिस को जनता के रक्षक होने के कारण उन्हें आरक्षक कहते हैं। परन्तु अधिकांश पुलिस रक्षक के बदले भक्षक हैं। चोरी करवाने से लेकर बलात्कार करना, शान्ति की रक्षा से लेकर शांति भंग करना आदि हर अच्छे बुरे काम में इनके हाथ रहते हैं। अधिकांश शिक्षक गुरु न रहकर नौकर या शिक्षा के व्यापारी बने हुए हैं, विद्यार्थी सदाचार, शालीनता, स्वावलम्बी, विद्वान आदि गुणों के बदले उत्शृंखल, परावलम्बी, अभद्र, आलसी, साक्षर मूर्ख बनते हैं। व्यापारियों का कर्त्तव्य है – आवश्यक वस्तुओं का आयात–निर्यात करके मनुष्यों की सेवा करना और लाभ रूप में योग्य परिश्रमिक लेना। परन्तु अधिकांश व्यापारी आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करके अत्यधिक कृत्रिम मूल्य बढ़ाकर हानिकारक वस्तु मिलाकर बेचते हैं मानो वे रोग और मृत्यु को अधिक से अधिक मूल्य से उपभोक्ताओं को बेचते हैं।

भारत : नेता अभिनेता, खेलनेता, खलनेता का अन्धभक्त

भारत के लोग प्राचीन भारत को विश्वगुरू मानते हैं और अभी भी भारत को धर्म प्रधान महान देश मानते हैं। परन्तु भारतीयों की प्रायोगिक जीवन्त प्रवृत्ति ही इसे खोखला, ढोंग सिद्ध करती है, क्योंकि भारत जो विश्वगुरु बना था कोई नेता, अभिनेता, खेलनेता, खलनेता के कारण नहीं। अभी भी इनके कारण भारत कोई महान नहीं बना है।

अभी भारत के अधिकांश नेता भ्रष्ट, धोखेबाज, गुण्डे, मुँह में रामनाम बगल में छुरी वाला, बगुला भगत, राष्ट्र तथा जनता के शोषक–भक्षक तो स्वयं है इसके साथ–साथ ऐसे ओर भी जो अन्य भ्रष्टादि लोग हैं उन्हीं के संरक्षक, सम्बर्धक, पोषक, प्रेरक, तथा ठेकेदारादि भी है। यह सब भारतीय लोग जानते हुए भी ऐसे भ्रष्ट नेताओं का सम्मान करते हैं उन्हें वोट देते हैं, उनके आगे–पीछे हाथ जोड़कर दीन वृत्ति से घूमते–फिरते हैं, जय–जयकार करते हैं और यहाँ तक की उनके

लिए दूसरों से वैरत्व करते हैं, लड़ते हैं, शराब–मांसादि का प्रयोग करते हैं तथा दूसरों की हत्या तक कर देते हैं। ऐसे नेताओं के बिना न धार्मिक कार्यों का मंगलाचरण होता, न सामाजिक कार्यों का शुभारम्भ होता, न उद्घाटन समारोह सम्पन्न होते हैं, न राष्ट्र की कोई पत्ती ही हिलती है।

जो अश्लील वेष–भूषा, नृत्य–गान, आचार–विचार, व्यवहार से युक्त हैं, हिंसा, झूठ, धोखा–धड़ी आदि अनैतिक विषयों का प्रदर्शन करते हैं तथा स्वयं भी उसे जीवन में अपनाते हैं ऐसे जीरों (भारतीय महान् आदर्श से शून्य) को हीरो (वीर, योद्धा महान्) मानते हैं उन्हें आदर देते हैं, उनकी वेष–भूषा से लेकर हर गति–विधियों का दिवानियाँ भारतीय लोग होते हैं। ऐसे नाटक बाजी, अभिनय करने वाले बहुरूपिया, विदूषक अभिनेता देश के नेता भी बन गये हैं। अभिनेता के बिना चुनाव प्रचार में भी रौनक नहीं आती है। इसलिए तो नेता बनकर भी अभिनय करते रहते हैं। अभी तो भारत में नेता अभिनेता का काम करते हैं और अभिनेता नेता का काम कर रहे हैं। इसलिए भारतीयों की प्रवृत्ति गधे–ऊँट की प्रवृत्ति के समान हो रही हैं। यथा –

उष्ट्राणां विवाहेषु गीत गायति गर्धभा।
परस्पर प्रशंसति अहो रूप अहो ध्वनि ॥

अर्थात् ऊँट के विवाह में ऊँट ने गधे को गीत गाने के लिए निमंत्रण दिया। गधा आकर उसके विवाह में उसके रूप की प्रशंसा में गीत गाया तो ऊँट प्रसन्न होकर गधे की ध्वनि की भी प्रशंसा की। इसी प्रकार भारतीय लोग जिससे स्वयं की स्वार्थ–सिद्धि होती है उसकी प्रशंसा गधे के समान सुललित – मधुर कंठ से गधा–राग आलापते रहते हैं।

शारीरिक–मनसिक स्वास्थ्य सम्पादन के लिए, कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए प्रेम–संगठन–सहयोग वृद्धि के लिए प्रतिद्वन्दिता से रहित निस्वार्थ भाव से खेल खेला जाता है। परन्तु अभी के बड़े–बड़े खेल–नायक तथा खेलों में उपर्युक्त गुणों से विपरीत दुर्गुण पाये जाते हैं। उनमें गन्दी, राजनीति, सट्टाबाजी, बेईमानी, हिंसक–प्रवृत्ति, मादक वस्तुओं का प्रयोग आदि पाया जाता हैं। वे रूपये लेकर हारते हैं जिससे राष्ट्रीय–अपमान होता है और उससे राष्ट्र में हीन भावना व्याप्त होती है। अर्न्तराष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताएँ अर्न्तराष्ट्रीय प्रेम बढ़ाने के लिए आयोजित

की जाती हैं परन्तु इससे विपरीत फल पाया जाता है। विशेषतः भारत–पाकिस्तान के मध्य में।

खेल के लिए करोड़ों रूपये खर्च होते हैं हजारों व्यक्ति स्टेडियम में देखते हैं और करोड़ों व्यक्ति टी.वी. में देखते हैं जिससे उनके द्वारा जो कार्य होता था वह कार्य नहीं होता है, छात्रों का अध्ययन नहीं हो पाता है। यह सब होते हुए भी खिलाड़ी को अतिमहत्व देते हैं । उनके द्वारा विज्ञापित वस्तुओं को भी महत्व देते हैं भले वे वस्तु अच्छी हो या बुरी हो। पूरा राष्ट्र ही उनका दिवाना है।

इसी प्रकार सुन्दरी (सुन्दर) प्रतियोगिता। सुन्दरता प्रकृति प्रदत्त हैं, उसमें सुन्दरी (सुन्दर) का स्वयं उत्पादन / योगदान / पुरुषार्थ क्या है ? शोषणकारी धन्नासेठ अपना विज्ञापन तथा अपनी प्रसिद्धि के लिए ये सब षड्यंत्रणा रचाते हैं और दूसरों को फँसाते है। गरीब, मजदूरों से शोषण, किया हुआ धन का अनावश्यक अनाप–शनाप खर्च इस कार्यक्रम में करते हैं।

कुछ अच्छी चमड़ी वाली ओछी छोकरियों का और कुछ तुच्छ लोगों का तो मनोरंजन होता है परन्तु अनेकों के नैतिक तथा आर्थिक मरण होता हैं। अनेक अन्धानुकरण करने वाली बच्चियाँ केवल शरीर सज्जा में और फैशन में समय तथा धन को बर्बाद करती है, अध्ययन सही नहीं कर पाती है, गृहकार्य, धार्मिक कार्य एवं सामाजिक कार्य भी समुचित रूप से नहीं कर पाती है। भारत स्वयं को एक धार्मिक तथा गरीब देश मानते हुए भी ऐसे ओछे–हुल्लड़ कार्यक्रम को महत्व दे रहा हैं। पाश्चात्य देश की संस्कृति को गाली देने वाले लोग उनके गुणों को अपनाते नहीं हैं परन्तु दुर्गुणों को अपना लेते हैं। इतना ही नहीं यह कार्यक्रम नगर–नगर में, स्कूल–कॉलेज में भी आयोजित होने लगे हैं। प्रतियोगिता में बौद्धिक एवं नैतिक वाक्यों का प्रयोग तो कर लेते हैं परन्तु जीवन में उससे विपरीत चलते हैं। अभी हमारे भारत में जितनी विश्व सुन्दरियाँ हुई हैं अथवा अन्यान्य सुन्दरियाँ हुई हैं उन्होंने राष्ट्र के लिये, विश्व के लिये, मानव–समाज के लिये क्या किया ? स्वयं तो अर्धनग्न हुई और हो रही है एवं दूसरों को भी अर्धनग्न बना रही हैं।

ऐसे अयोग्य नेता, अभिनेता के समान कुछ खलनेता भी होते हैं वे अधिक से अधिक भ्रष्टाचार, चोरी, डकैती, धोखा–धड़ी करते हैं वे बड़े से बड़े हीरो बन जाते हैं और उन्हें अन्य भी हीरों रूप में आंखों में एवं शिर में चढ़ा देते है। ऐसे खलनेता का भी सम्मान समाज में, राजनीति में यहाँ तक कि धर्म के

क्षेत्र में भी हो रहा है।

उपर्युक्त दुष्टों, राष्ट्र–द्रोही नेता आदि का प्रचार–प्रसार भी अखबार, टी.वी. विज्ञापन आदि के द्वारा खूब जोर–शोर से हो रहा हैं। जो मंदिर में राम की पूजा करते हैं वे मन में एवं कार्यक्षेत्र में रावण को अपनाते हैं। इन उपर्युक्त कारणों से राष्ट्र, अर्न्तराष्ट्रीय तथा मानव–समाज का पतन हो रहा हैं।

बीड़ी से लेकर साबुन, टी.वी. आदि के लिए जो मोटे, स्वस्थ्य, सुन्दर सजे–धजे सम्पन्न मॉडल खिलाड़ी, हीरो, हीरोइन के चित्रों के माध्यम से विज्ञापन समाचार पत्रों में टी.वी. आदि में आते हैं क्या यह सब वास्तविक हैं। विज्ञापन में जैसे चेहरा दिखाई देता है क्या उन वस्तुओं के कारण वे ऐसे बने हैं ? क्या उसके सेवन जो करेंगे वे ऐसे बनेंगे ? क्या ऐसी बहुमूल्य वस्तु अधिकांश भारतीय सेवन करने में समर्थ है ? बीड़ी आदि जैसी असेवनीय वस्तुओं का आराध्य महापुरुषों चित्रों के साथ या उनके पुण्य–पर्व में विज्ञापित करना क्या उचित है ? महान भारत की जनता तथा सरकार को क्या ऐसा करके भारत को महान सिद्ध करना चाहते हैं ? भारत को अहिंसा प्रधान महान देश मानने वाली जनता तथा सरकार को बुचड़खाना में दूध, गोबर, श्रम देने वाले गो वंश (गौ–माता, बैल) पशुधन की निर्मम हत्या करके क्या भारत को अहिंसा प्रधान–महान देश सिद्ध करना चाहते हैं ? जंगल में स्वच्छन्द सैर करने वाले शेर आदि की तो व्यवस्था कर रहे हैं यह सही भी है परंतु जीवन भर हर प्रकार की सेवा करने वाले पशुओं की योजनाबद्ध व्यापक हत्या क्या यह राम–रहीम–महावीर के भक्तों का खोखलापन प्रगट नहीं करता है ? वृद्ध बेकार के बहाने पशुओं को मारने मरवाने वाले क्या स्वयं को वृद्ध माता–पिता तथा वृद्ध नेताओं के साथ ऐसा व्यवहार योग्य मानेंगे ? वे स्वयं जब ऐसे वृद्ध बनेंगे तब क्या ऐसे कार्य को स्वीकार करेंगे ? जब कोई मनुष्य वृद्ध होने के कारण सेवा निवृत्त होता है तो उसकी व्यवस्था के लिए पेंशन मिलता है परन्तु सेवा निवृत्त पशुओं को पेंशन के परिवर्तन में सामूहिक योजना बद्ध मृत्यु–दण्ड मिलता हैं। इन सब कारणों से मैं भारत को महान न मानकर निकृष्ट भारत मानता हूँ।

उपर्युक्त नेतादि के विपरीत महान् चिन्तक, समाजसेवी, साहित्यकार, साधु सन्त, राष्ट्रहितैषी, वैज्ञानिक, कृषक, श्रमिक आदि का महत्त्व कम है। नेतादि की हर–गतिविधियों में भीड़ जुटती है, समाचार पत्र, टी.वी. आदि में उनके बारे

में लम्बा चौड़ा फोटों, मेटर होते हैं परन्तु महान चिन्तक आदि की सभा में न अधिक श्रोता होते हैं न समाचार–पत्र, टी.वी. आदि में उनके बारे में प्रकाश डालते हैं न वे चर्चा का विषय बनते हैं। देश के अन्नदाता कृषकों को घृणा दृष्टि से देखते, उनको पोषण के पुरस्कार के रूप में उन्हें शोषण मिलता है अर्थात् वे तो दूसरों का पोषण करते हैं परन्तु दुसरे लोग उनका शोषण करते हैं। भले स्कूली पुस्तकों में नेताओ के भाषणों में उनकी थोती प्रशंसा होती है परन्तु वास्तविक रूप से उन्हें हीन,दीन, नीच, पापी, हिंसक, असभ्य, गँवार मानते हैं। ऐसी ही परिस्थिति श्रमिको की है भारतीय लोग फूल–फल को अच्छा मानते हैं परन्तु जड़ (मूल) को ओछा तुच्छ मानते हैं। भारतीयों के मन्दिर का र्म अलग होता है और मन के अन्दर का धर्म तथा व्यवहार का धर्म अलग होता है। इस असंतुलन के कारण भारत की महान संस्कृति रूपी महल चरमरा रहा है, विखण्डित हो रहा है, विध्वंस हो रहा है।

महान धर्म के अनुयायी महान बनें

जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म है। चोरी नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, कुशील सेवन नहीं करना, परिग्रह संचय नहीं करना, स्वभाव को पवित्र रखते हुए किसी को भी किसी भी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचाना, क्षमा धारण करना, नम्र होना, कुटिलता से रहित होकर सादा सरल होना, निर्लोभ–तृष्णा से रहित होकर शौच रहना, वस्तु स्वरूप को उस की समग्र पहलुओं से स्वीकार करना हठग्राहीता से रहित सापेक्ष–कथन करना आदि को अहिंसा कहते हैं। केवल जीवों को नहीं मारना, उनके अवयवों को क्षति नहीं पहुँचाना ही अहिंसा नहीं है। यह तो अहिंसा का एक बहुत ही छोटा रूप हो सकता है। अदृश्य छोटे–छोटे जीवों की अहिंसा की चर्चा करने वाले क्या दृश्यमान पंचेन्द्रिय मनुष्य और उसमें भी माता–पिता भाई–बन्धु सहधर्मी और यहाँ तक की गुरु–शिष्य की अहिंसा पालन करते हैं ? उन्हें क्या मन–वचन–क्रिया, व्यवहार से कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ? उनकी सेवा करते है ? व्यापार, धंधा व्यवहार में क्या उनके साथ प्रेम, सौहार्द, वात्सल्य, सहज, सरल व्यवहार करते हैं ? क्या बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, चर्म, हिंसात्मक प्रसाधन सामग्री, आलू–प्याज, ब्याज का व्यापार नहीं करते हैं ? क्या व्यापार में कम–अधिक माप–तौल, मिलावट, कालाबाजारी, कर चोरी, शोषण नहीं करते हैं ? क्या दहेज, मृत्यु–भोज, शादी में अनावश्यक आडम्बर का त्याग हैं ? क्या पंथ,

पूजा–पाठ, शास्त्र, साधु, मन्दिर, मूर्ति, धर्मशाला, धार्मिक सम्पत्ति, सामाजिक सम्पत्ति, जाति आदि को लेकर झगड़ा, कलह, फूट, शोषण तनाव नहीं करते है ? वचन, कार्य, व्यवहार, लेन–देन में क्या प्रामाणिकता रखते है ? क्या पूजा, विधान, पंचकल्याणक तक धन संग्रह के लिए या सांसारिक स्वार्थ के लिए नहीं करते हैं ? धन या नाम की चाह कितनी कम हुई ? यथार्थ अहिंसा रूप सरलता, प्रमाणिकता, सत्यवादिता, कर्तव्यनिष्ठा, सेवा, दया, करुणा आदि प्रायोगिक रुप में जीवन के हर क्षेत्र में कितना है ? इन प्रश्नात्मक उत्तर – को स्वयं में शोध–बोध करना चाहिए और स्वयं को विश्व के प्राचीनतम, महानतम, उदारतम, सत्यमय वैज्ञानिक धर्म के अनुसार परिमार्जित करना चाहिए।

मेरे जीवन के मधुर अनुभव

प्रायः प्रत्येक धर्मों के ग्रन्थों में यह वर्णन पाया जाता है कि वर्तमान काल निकृष्ट काल है। परन्तु मैंने उन्हीं साहित्यों के गहन अनुसन्धानात्मक अध्ययन से, इतिहास, आधुनिक साहित्य के अध्ययन तथा प्रायोगिक अध्ययन से पाया कि वर्तमान युग में भी पहले से भी कुछ अच्छे गुण पाये जाते हैं। यथा– शिक्षा का व्यापक प्रचार प्रसार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, उदारता, व्यापक संचार तथा यातायात सुविधा, विभिन्न धार्मिक पंथो में और राष्ट्रों में समन्वय, आदान–प्रदान एवं सहिष्णुता, धर्म दर्शन – विज्ञान तथा शिक्षा में समन्वय, धर्म का वैज्ञानिक विश्लेषण, अन्ध विश्वास–पाखण्डता – रूढिवादिता – संकीर्णता – असहिष्णुता में कमी, नई पीढ़ी तार्किक – प्रगतिशील– संवेदनशील, अझगडालु – जागरूक, वैज्ञानिक शोध–बोध–उपलब्धि के कारण जीवनस्तर में सुधार, प्राकृतिक विपत्ति यथा–भूकम्प, दुर्भिक्ष–महारोग–बाढ़ आदि में राष्ट्रीय–अन्तराष्ट्रीय सहायता, पीछडों की विशेष सहायता आदि अनेक गुण पाये जाते हैं।

भारत में अति प्राचीन काल से ही तीर्थंकर, अवतार, बुद्ध, साधु, सन्त ज्ञानी, विज्ञानी जन्म लेकर धर्म ज्ञान–विज्ञान का प्रचार प्रसार किया, ऐसा महान भारत में विघटन अन्धविश्वास, धर्म के नाम पर हिंसा, सती–दाह, बाल विवाह, अव्यापक स्त्री शिक्षा, अव्यापक स्त्री–अधिकार, गरीब–पीछड़े– नीच जाती वालों की प्रगति की अव्यापक व्यवस्था आदि समस्याएँ थी जिसके कारण आध्यात्मिक अहिंसा प्रधान भारत में भी अनेक गृह–युद्ध, महायुद्ध होते रहते थे। भारत अनेक टुकडों में विभक्त था तथा हजारों वर्ष तक आंशिक या पूर्ण रूप से गुलाम रहा। गुलाम

भारत की तो और भी महान दुर्दशा हुई। इसकी अपेक्षा तो अभी का भारत कुछ दृष्टि से अच्छा है। उपर्युक्त दुर्गुणों में कमी आई है और कुछ सद्गुणों में वृद्धि हुई।

निष्कर्ष तथा दिशा निर्देश

वर्षाऋतु की घनघोर मेघ तथा अन्धकार से व्याप्त रात्रि में भी जिस प्रकार बिजली प्रकाशित होती है, उसी प्रकार धार्मिक–नैतिक अन्धकार पूर्ण परिस्थिति में भी कुछ महान व्यक्ति, महान गुण अभी भी चमक रहे हैं। उससे प्रकाश प्राप्त करके दूसरों को भी प्रकाशित होना चाहिये। राग–द्वेष या घृणा से प्रेरित होकर मैंने यह अनुभव नहीं लिखा है परन्तु एक वैज्ञानिक के समान जो मैंने शोध–बोध किया है– उसे ही दूसरों के उपकार के लिए लिखा है। अखिल जीव जगत मेरे इस अनुभव से लाभ उठाये यही मेरी पवित्र भावना है। दोषों को जानकर उसे त्याग करें तथा गुणों को जानकर उसे ग्रहण करें यही सुख–शान्ति–समृद्धि का सार्वभौम शाश्वतिक – सत्यमार्ग है।

4- मेरी विवशता तथा चिन्ता क्यों ? कब ?

1. क्योंकि मैं 'सर्वजीव सुखकारी' 'सर्वजीव हितकारी' संकीर्णता से रहित, भाव की पवित्रता से युक्त, वैज्ञानिक सत्य–उदार धर्म को चाहता हूँ और उसका प्रचार–प्रसार करना चाहता हूँ परन्तु अधिकांश व्यक्ति विभिन्न संकीर्णता, भाव की मलिनता, अन्ध–विश्वास अनुदार भाव से युक्त होते हैं और वे धर्म का प्रचार–प्रसार इस ही दृष्टि से करना चाहते हैं।..... तब .....

2. कषाय रहित भाव की पवित्रता ही वस्तुतः अहिंसा है परन्तु स्वयं को अहिंसा के अनुयायी मानने वाले भी अधिकांश व्यक्ति ईर्ष्या, द्वेष, तृष्णा, घमंड, नाम, ख्याति–पूजा–लाभ से ओत–प्रोत रहते हैं और जिससे अनुशांगिक रूप से भी एकेन्द्रिय जीव की द्रव्य हिंसा हो जाती है उसे हिंसक पापी मानकर उससे घृणा करते हुए और भी हिंसा रुपी सागर में बेसहारा डूबते जाते हैं।..... तब.....

3. भाव को पवित्र करना, संक्लेश भाव से रहित होना तथा आध्यात्मिक सुख शान्ति को प्राप्त करना धर्म का उद्देश्य है और इसके लिये विभिन्न धार्मिक क्रिया–काण्डों की आवश्यकता होती है परन्तु जब धार्मिक क्रिया–काण्डों में संक्लेश, धन, संग्रह, विग्रह (फूट), अशान्ति, अनुशासन विहीनता पाई जाती है।..... तब .....

1. ''वसुधैव कुटुम्बकम्'', प्रत्येक जीव में परम ब्रह्म का दर्शन करने वाले, जीव में जिनेन्द्र को मानने वाले जब गुरु शिष्य, सधर्मि–सधर्मि, पिता–पुत्र, भाई–भाई लडते हैं, एक दूसरों को नीचा दिखाते हैं, एक दूसरों को क्षति पहुँचाते हैं, फूट डालते हैं..... तब .....

5. सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की रक्षा करने वाले जब पंचेन्द्रिय मनुष्य यहाँ तक कि माता–पिता, गुरु–शिष्य को संकट में डालते हैं असुरक्षा उत्पन्न करते हैं.... तब....

6. संस्कार, सदाचार, सद्विचार को अपनाना और इसका प्रचार–प्रसार करने रूप प्रभावना को छोडकर ईंट–पत्थर को इकट्ठा करना (भवन निर्माणादि), धन का संग्रह करना, हाथी–घोड़ा आदमियों की भीड लगाना रूपी प्रभावना करते हैं।..... तब .....

7. जब दिगम्बर जैन साधु तक सिद्धि को छोडकर प्रसिद्धि, णमोकार को छोड़कर ममकार, धर्म को छोड़कर धन, वात्सल्य को छोड़कर राग, समता को छोड़कर ममता, वीतरागता को वित्तरागता, निर्ममत्व को छोड़कर निर्मम के पीछे पडते हैं..... तब .....

8. मौन पूर्वक, एकान्तवास करके पूर्ण समता तथा क्षमता के साथ ध्यान, अध्ययन एवं तपश्चरण के माध्यम से पूर्ण सत्य को जानकर–मानकर–आचरण कर स्वयं ''सत्यसाम्यसुख'' स्वरूप बनकर विश्व को भी इसी प्रकार बनाने की भावना चाहता हूँ परन्तु शारीरिक असमर्थता (शरीर की उष्णता, भयंकर अम्लपित्त, उल्टी, गर्मी से स्वास्थ्य खराब होना, भोजन योग्य न होने पर उल्टी, स्वास्थ्य बिगडना आदि) विपरीत परिस्थिति, प्रतिकूल जनमानस, अयोग्य आहार आदि से भावना को क्रियान्वित नहीं कर पाता हूँ..... तब .....

9. (१) घी को छोड़कर घी के घड़े (घी रहित केवल पूर्व में जिस घड़े मे घी था ऐसा घडा)को ही घी मान लेने के समान जब जीवन्त यथार्थ धर्म–स्वरूप साधु, श्रावकों आदि का अनादर, तिरस्कार करते हैं उनकी सेवा, सुरक्षा व्यवस्था नहीं करते हैं परन्तु प्रतीक धर्म स्वरूप मन्दिर, मूर्ति आदि को यथार्थ धर्म मानकर उसकी सेवा, व्यवस्था करते है..... तब .....

(२) इसी प्रकार जीव जब भाव की पवित्रता के बदले धार्मिक – क्रिया–काण्डों को सत्य धर्म को, छोड़कर अन्ध परम्पराओं को, सत्य–तथ्य के परिवर्तन

में रीति–रिवाजों को महत्व देता है.... तब .....

10. शिक्षा, विद्या, ज्ञान, धर्म, राजनीति, संविधान, कानून आदि जीवों के सुख, शान्ति, सम्बृद्धि, विकास के लिए है परन्तु जब मनुष्य इसका दुरुपयोग दुःख, अशान्ति, अवरुद्ध विनाश के लिए करता है..... तब .....

11. जो भारत विश्वगुरु, सोने की चिड़िया, अहिंसा प्रधान, आध्यात्मिक, धर्म प्रधान के कारण महान कहलाने वाला था उस देश में जब भ्रष्टाचार, हिंसा, बलात्कार, धोखा–धड़ी, गुण्डा–गर्दी, धर्मान्धता, संकीर्णता, अन्धविश्वास, अकर्मण्यता आदि के कारण गरीब, बर्बर, भ्रष्ट, दीन–हीन, कायर विवश पाया जाता है..... तब .....

यथार्थ धार्मिक कौन?

जो प्रत्येक प्राणी के हित चिन्तक, गुणियों को सम्मान देने वाला, दुःखी, रोगी, गरीब, असहाय, दुर्बल, संकटापन्न की सेवा, सहायता करने वाला और दुष्ट/शत्रु से अपनी रक्षा करता हुआ भी उनके कारण अपना भाव दूषित नहीं करने वाला हो।

★

जो स्वयं के साथ–साथ अपना वंश, कुल, धर्म, राष्ट्र, धन, वैभव, सत्ता, प्रभुत्व को श्रेष्ठ जानता हुआ एवं मानता हुआ भी अहं भाव से ग्रसित न हो और दूसरों को नीच भाव से नहीं देखता हो।

★

जो योग्य धार्मिक रीति–रिवाज का पालन करते हुए भी अन्तरंग से उसे धर्म न मानकर सत्य को तथा भाव की पवित्रता एवं दूसरों के साथ उत्तम व्यवहार को ही धर्म मानता है।

5. स्वावलम्बन तथा समयानुबद्धता

स्वावलम्बन तथा समयानुबद्धता जीवन विकास के प्रथम सूत्र हैं।

अंग्रेजी में कहावत है – 'Self help is the best help' अर्थात् आत्मनिर्भर शीलता स्वयं के लिये सबसे बड़ी सहायता है। इसलिये अंग्रेजी में कहते हैं–

Who helps himself God helps them. Who helps one step God helps them hundred steps अर्थात् जो स्वयं एक कदम आगे बढ़ता है भगवान उसे सौ कदम आगे बढ़ाने के लिये सहायता करते हैं। इसका रहस्य यह है कि– जो आलस्य, प्रमाद को छोड़कर अपना कर्त्तव्य समय पर करता है उसके लिये दूसरे लोग तथा प्रकृति भी सहायता करती है। जो आत्म–निर्भरशील होगा वही अपना कर्त्तव्य समय पर कर सकता है। जो समयानुकूल अपना कर्त्तव्य करता है वही स्वावलम्बी बन सकता है। ऐसा व्यक्ति जीवन में प्रगति कर सकता है, सुखी हो सकता है एवं दूसरों की भी सहायता कर सकता है। इसके विपरीत जो स्वावलम्बी नहीं है वह अपना कर्त्तव्य नहीं कर सकता है और जो समय पर अपना कर्त्तव्य नहीं करता है वह स्वावलम्बी भी नहीं बन सकता है। जो स्वावलम्बी है और समयानुसार अपना कर्त्तव्य करता है वही सुखी हो सकता है और वही स्वतंत्र हो सकता है। इससे विपरीत दूसरे व्यक्ति गुलाम परतंत्र होकर दुःखी होते हैं। महात्मा गाँधी Time is money कहते थे परन्तु इस नीति को मैं नहीं मानता हूँ क्योंकि जो समय नष्ट हो जाता है उसे सम्पूर्ण विश्व की सम्पत्ति देकर भी पुनः प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसलिये मेरे मतानुसार 'Time is life if you kill time the time kill you' अर्थात् यदि तुम समय को बर्बाद करोगे तो समय तुम्हें बर्बाद कर देगा। इसलिये महावीर भगवान् ने गौतम गणधर को सम्बोधित करते हुये कहा था –

''गोयम पमायेण एक समय न मुक्कऊ''।

हे गौतम! आपका एक क्षण भी प्रमाद से, असंयम से, लापरवाही से नहीं जाना चाहिये। क्योंकि –

''संयममेव जीवनं असंयमेव मरणम्'॥

संयम ही जीवन है एवं असंयम ही मृत्यु है।

समय, शक्ति, सम्पत्ति, बुद्धि का सुनियोजित रूप से उत्तम कार्य के लिये प्रयोग

करना संयम है इससे विपरीत असंयम है। जिस प्रकार रेलगाड़ी, समयानुकूल संयमित होकर हजारों टन माल वहन करते हुए तीव्र गति से चलती है तो भी किसी प्रकार की दुर्घटना नहीं होती है परन्तु वही गाड़ी असमयानुसार या असंयमित होकर चलती है तो दुर्घटना हो जाती है जिससे जान/माल की बर्बादी हो जाती है। इसी प्रकार जो अपना कर्त्तव्य स्वावलम्बन रूप से समयानुकूल नहीं करता है उसकी शक्ति, सम्पत्ति, बुद्धि, आरोग्यता आदि नष्ट हो जाती है।

6- कर्त्तव्य तथा अधिकार

कर्त्तव्यपालन के साथ–2 अधिकार भी चिर स्त्रोता जीवन रूपी नदी के दो तट हैं।

मेरा नारा है– ''अधिकार से महान् – कर्त्तव्य पालन'' अर्थात् समुचित कर्त्तव्य पालन करने से ही अधिकार प्राप्त होता है। इसीलिये अधिकार से भी महान् कर्त्तव्य है। इसलिये मैंने एक सूत्र दिया है At first do your duties then you gain your rights अर्थात् पहले आप अपना कर्त्तव्य करो उसके बाद आप अपना अधिकार प्राप्त करोगे। पहले कृषक खेत में काम करता है इसीलिये खेत में जो पैदा होता है उस पर उसका अधिकार होता है। इसी प्रकार श्रमिक अपना कर्त्तव्य करता है तब उसका अपने पारिश्रमिक के ऊपर अधिकार होता है। परन्तु जो कर्त्तव्य किये बिना अधिकार प्राप्त करना चाहता है वह चोर, ठग, डाकू या बलात्कारी होता है। नदी जिस प्रकार दो स्त्रोतों के मध्य में बहती है उसी प्रकार जीवन रूपी नदी भी कर्त्तव्य व अधिकार रूपी दो तट के मध्य में बहती है। यदि नदी का एक तट भी टूट जायेगा तो नदी, नदी नहीं रहेगी बाढ़ आ जायेगी या नदी सूख जायेगी। एक उदाहरण है– स्वतंत्रता के बाद एक व्यक्ति सार्वजनिक राजमार्ग के बीचों–बीच सो गया। दोनों साइड से जो गाड़ी आईं उन्हें ड्राईवर खड़ी करके उस व्यक्ति को बोलते हैं आप यहाँ से उठो। हमें गाड़ी चलानी है। तब वह व्यक्ति बोलता है, अभी भारत स्वतंत्र हो गया है। इसलिये मैं भारत का स्वतंत्र नागरिक हूँ, इसलिये मैं जहाँ चाँहू वहाँ सो सकता हूँ। तब वे ड्राईवर उस मक्कार को शिक्षा देने के लिये बोले कि हम भी स्वतंत्र भारत के स्वतंत्र नागरिक हैं अतः हम भी हमारी इच्छानुसार गाड़ी चला सकते हैं; ऐसा बोलकर वे गाड़ी चलाने लगे तो वह स्वच्छंदाचारी वहाँ से भाग निकला। इसलिये अधिकार के साथ–2 अपना कर्त्तव्य पालन भी करना चाहिये अन्यथा स्वतंत्रता स्वतंत्रता न रह कर

स्वच्छंदता हो जावेगी और स्वच्छंदता से ही परतंत्रता जन्म लेती है। कहा भी है–

उद्योगिनं पुरूषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।
दैवेन देयमिति का पुरूषा वदन्ति ॥

उद्योगशील पुरूष सिंह विजय लक्ष्मी को वरण करता है, परन्तु जो पुरुषार्थहीन कापुरुष होते हैं, वे केवल भाग्य के ही आश्रय लेकर बैठे रहते हैं।

आस्ते भग आसीत् स्योर्ध्व तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निषद्य मानस्य चरति चरतो भगः॥ चरैवेति चरैवेति

पुरूषार्थहीन होकर बैठे रहने से भाग्य भी बैठा रहता है। पुरूषार्थ से खड़ा होने से भाग्य भी खड़ा हो जाता है। पुरुषार्थ हीन होकर सोने से भाग्य भी सो जाता है। प्रबल पुरुषार्थ से आगे बढ़ने से भाग्य भी आगे बढ़ता है। इसीलिए हे पुरूषार्थी! आगे बढ़ते चलो, बढ़ते चलो !

कलिः शयनो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥ चरैवेति चरैवेति (ऐतरेय ब्राह्मण)

पुरूष शयन करने से उसके लिए वह समय कलियुग होता है अर्थात् पुरूषार्थ नहीं करना, कलियुग का आह्वान करना है। पुरूषार्थ के लिए जाग्रत होने पर उसके लिए वह काल द्वापर युग हो जाता है। कार्य करने के लिए खड़े होने पर वह काल उसके लिए त्रेता युग हो जाता है, कार्य करने के लिए आगे बढ़ने से वह काल सतयुग हो जाता है। इसलिए हे पुरूषार्थी! सत्य को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ते ही चलो! बढ़ते ही चलो !

7- त्रिवेणी संगम

मन–वचन–काय रूपी पवित्र त्रिवेणी से स्वयं को आप्लावित (संगम) करो। Man is a rational animal, अर्थात् मनुष्य एक बौद्धिक पशु है। मनुष्य समस्त जीव जगत् में सर्वश्रेष्ठ इसलिये है कि इसके पास सर्वश्रेष्ठ समर्थ पवित्र मन–वचन–काय की उपलब्धि है। मनुष्य के पास शरीर के आकार अनुपात से विश्व का सबसे बडा मस्तिष्क है। सामान्यतः मनुष्य का मस्तिष्क अढ़ाई पाउण्ड अर्थात् 1400 ग्राम का है जो कि 10 खरब कोशिकाओं से बना हुआ है। इसीलिए मनुष्य की बुद्धि लब्धि, विचार–शक्ति सबसे अधिक है। मनन् शील होने के कारण इसे मनुष्य कहते हैं। अंग्रेजी में कहावत है–

"Will power is the best power of the universe" अर्थात् इच्छा शक्ति विश्व की सर्वश्रेष्ठ शक्ति है। प्रकारान्तर से कहा गया है – 'Knowledge is power' अर्थात् ज्ञान ही शक्ति है। और मनुष्य में सबसे बड़ा मस्तिष्क होने के कारण इसके पास समस्त संसारी जीवों में से सबसे अधिक ज्ञान है। इसी प्रकार मनुष्य जितने प्रकार की भाषाएँ सीख सकता है, बोल सकता है कोई भी इसके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता है। मनुष्य की रीढ़ सीधी है तथा वह सीधा दोनों पैर के माध्यम से चल सकता है और सबसे विशिष्ठ–पूर्ण, क्रिया शील हाथ इसके पास ही हैं। इन गुणों के कारण मनुष्य विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। मनुष्य एक तेजपूर्ण, ओजपूर्ण, क्रियाशील बुद्धिमान प्राणी है। वह इसका सदुपयोग करके स्वपरकल्याण कर सकता है तो इसका दुरूपयोग करके स्वपर का विनाश भी कर सकता है। इसलिए मनुष्य को सतत्, सतर्क, विवेकशील होकर मन–वचन–काय की प्रवृत्ति करनी चाहिये और तीनों को स्वस्थ उपयोगी रखना चाहिए। इसलिये कहा है–

मनस्येकं वचनस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यान्य वचनस्यान्य कर्मण्यान्य दुरात्मनाम्॥

अर्थात् मन–वचन–काय की प्रवृत्ति जिनकी पवित्र एवं सरल होती है वे महात्मा हैं इसके विपरीत वे दुरात्मा हैं।

कथंचित् कर्मवशात् (क्षयोपशम) कुछ उपलब्धि हो जाने पर भी स्वार्थ निष्ठ, संकीर्ण – कलुषित भावना वाला जीव उपलब्धि का भी सदुपयोग नहीं कर पाता है परन्तु अधिकांशतः दुरूपयोग ही करता है। यथा–

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिं परेषां परपीड़नाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतम् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

अपवित्र विचार वाला दुर्जन विद्या को प्राप्त करके वाद–विवाद कलह करता है, धन को प्राप्त करके, भोग–राग, दिखावा, अहंकार में मस्त हो जाता है, शक्ति प्राप्त करके दूसरों को सताता है। पवित्र विचार वाला सज्जन इससे विपरीत विद्या से स्व–पर के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करके ज्ञान रूपी प्रकाश को प्रसारित करता है, धन प्राप्त करके योग्य क्षेत्र में योग्य व्यक्ति को दान देता है तथा शक्ति से दूसरों की रक्षा करता है।

बुद्धि आदि के सदुपयोग के बारे में वर्णन करते हुये नीतिकारों ने कहा भी है–

बुद्धे फलं तत्व विचारणं च देहस्य सारं व्रतधारणं च।
अर्थस्य सारं किलपात्रदानं, वचः फलं प्रीतिकरं नराणां॥

बुद्धि का फल तत्वचिन्तन, देह का सार व्रतों का धारण, धन का सार सुपात्र में दान, वचन का फल मनुष्य को प्रीतिकर होना है।

8- प्रातः कालीन क्रियायें

प्रातः कालीन शुभारम्भ जीवन–सूर्य उदय के लिए बने।

अंग्रेजी में कहावत है–

Early to bed and early to rise.
Is the way to be healthy wealthy and wise.

अर्थात् "शीघ्र शयन करना तथा शीघ्र जागृत हो जाना यह स्वास्थ्य, धनी तथा बुद्धिमानी का रास्ता है।" रात को शीघ्र शयन करके प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में जग जाना, स्वास्थ्य, कर्त्तव्य, बुद्धि के लिए उत्तम है । प्रकृति में दिन एवं रात है । दिन श्रम के लिए है तो रात विश्राम के लिए है। दिन को सूर्य से प्रर्याप्त किरणें, ऊर्जा मिलती है जिससे कार्य क्षमता बढ़ती है और रात को इसके अभाव से कार्य क्षमता घटती है। रात को अंधकार रहता है और अंधकार काला है। इससे कोई वस्तु दिखाई नहीं देती, अवसाद बढ़ता है, उत्साह घटता है। काला को पाप, अज्ञान, अवसाद, विरोध का प्रतीक माना जाता हैं। इसलिये सूर्य अस्त से 48 मिनट पहले भोजन करके संध्या कालीन देवदर्शन, आरती, स्वाध्याय, गुरू सेवा आदि कार्यों से निवृत्त होकर शीघ्र स्वच्छ शांत स्थान में पूर्व या दक्षिण दिशा की ओर सिर करके भगवान् का स्मरण करते हुये समस्त जीवों से क्षमा याचना करके अच्छी भावना भाते हुए शयन करना चाहिये। मध्य रात्रि के पहले सोने से कम निद्रा से भी अधिक विश्राम मिलता है। देरी से सोने से अधिक निद्रा से कम विश्राम मिलता है। जल्दी सोने पर ही थकान को दूर करके जल्दी उठा जा सकता है। जो अनावश्यक समय बर्बाद करके देर रात से सोते हैं वे देरी से जगते हैं जिससे उनका दैनिक कार्यक्रम अव्यवस्थित होता है। प्रातःकाल से ही कार्य अव्यवस्थित होने पर पूरे दिन के कार्य भी अव्यवस्थित हो जाते हैं। एक दिन के कार्यक्रम अव्यवस्थित होने पर वह अव्यवस्था जीवन के अन्य कार्य क्षेत्र

में भी व्यवधान डालती है। इसीलिये कहा गया है ''शुभस्य शीघ्रम्'' अर्थात् अच्छे कार्य उचित समय में तत्परता से करने चाहिये। रात्रि को प्रभु स्मरण, आत्मचिंतन पूर्वक पूर्व, दक्षिण या पश्चिम दिशा की ओर सिर करके स्वच्छ, जीवों से रहित स्थान में विश्राम के लिये शयन करना चाहिए। शय्या समतल होनी चाहिए। शयन के पूर्व हाथ, पैर, मुँह धोकर शयन करना चाहिए। जब तक निद्रा नहीं आती है तब तक सत् चिंतन करना चाहिए। इससे निद्रा अच्छी आती है, दुःस्वप्न नहीं आते हैं। बायें करवट सोना चाहिये। सोते समय शरीर पर कसे हुए वस्त्र नहीं होना चाहिए तथा मुँह को पूर्ण ऊपर तक वस्त्र से ढाक कर नहीं सोना चाहिए। स्नान के बाद शुद्ध वस्त्र पहन कर मंदिर जाना चाहिये। साथ में कुछ न कुछ शुद्ध–पूजा–द्रव्य लेकर जाना चाहिये । 'देव दर्शन' परिच्छेद में वर्णित विधि के अनुसार देव–दर्शन, पूजादि करना चाहिये। भगवान के सामने पांच मुष्टि (पुंज) चांवल चढ़ाकर गवासन में बैठकर नमस्कार करना चाहिये। 'णमो अरिहंताणम्' बोलकर मध्य में पहला पुंज, 'णमो सिद्धाणं' बोलकर ऊपर में पुँज, 'णमो आइरियाणं' बोलकर दाये में पुँज, 'णमो उवज्झायाणं' बोलकर नीचे में पुँज, 'णमो लोए सव्व साहूणं' बोलकर बायें में पुंज चढ़ाना चाहिये।

साधु के सामने सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यग्चारित्राय नमः बोलकर क्रम से 3 पुँज चढाना चाहिये। जिनवाणी के सामने क्रमशः प्रथमानुयोगाय नमः, करणानुयोगाय नमः, चरणानुयोगाय नमः, द्रव्यानुयोगाय नमः बोलकर चार पुंज अक्षत चढाना चाहिये।

देव दर्शन के बाद विनय से विधि के अनुसार शास्त्र–स्वाध्याय करना चाहिये। शास्त्र के मध्य से कोई पृष्ट निकाल कर यद्वा–तद्वा पढना नहीं चाहिये। सच्चे गुरू को नमोस्तु कहकर गवासन में बैठकर प्रणाम करना चाहिये। बैठते समय मृदु वस्त्र से जीवों की रक्षा करते हुए बैठना चाहिए। आर्यिका को वन्दामि कहकर प्रणाम उपरोक्त विधि से करना चाहिये। ऐलक,क्षुल्लक, क्षुल्लिका को इच्छामि कहकर प्रणाम करें। ब्रह्मचारी को वन्दना कहकर प्रणाम करें। अन्य सामान्य व्यक्तियों को 'जय जिनेन्द्र' कहकर यथा योग्य सम्मान करें। पूजादि करके मुनि आदि को भक्ति से विधि पूर्वक आहारादि देवें । आहार दान 'आहार दान विधि' परिच्छेद के अनुसार दें। गृह पालित पशु, सेवक, वृद्ध, माता, पिता, रोगी दुःखित को भोजनादि देकर स्वयं भोजन करें।

9- धार्मिक - विद्यालय : देवालय

मन के अंदर गुप्त–सुप्त रूप से विराजमान जीवात्मा को परमात्मा बनाने की शिक्षा के लिए मंदिर जाओ।

विद्यालय में जिस प्रकार विद्यार्थी विद्याध्ययन करके जीवन को आदर्श बनाता है उसी प्रकार देवालय में आध्यात्मिक पाठ पढ़ करके जीवन को आध्यात्मिक/ नैतिक / सदाचारी बनाया जाता है। वस्तुतः धर्मायतन में या धार्मिक आराधना स्थलि में ही भगवान् नहीं होते हैं परन्तु वहाँ पर उनके आदर्श स्वरूप कुछ चिन्ह/ मूर्ति / शास्त्र / चित्र / चरण पादुका या वस्तु आदि होती है। यह सब धार्मिक विषयों को अध्ययन करने के लिये वर्णमाला स्वरूप है। परन्तु जिस प्रकार केवल 'अ' आदि वर्णमाला ही ज्ञान नही है उसी प्रकार यह प्रतीक ही धर्म नहीं है। जिस प्रकार अग्नि शब्द में अग्नि नहीं होती है भारत के नक्शे में भारत नहीं होता है परन्तु यह सब जानकारी के साधन हैं उसी प्रकार धर्मास्थलादि धर्म को जानने के लिये साधन स्वरूप हैं । इसलिये धर्म स्थल में जाकर भगवान् के आदर्श स्वरूप, अच्छे गुणों का स्मरण करना चाहिये और उसे यथा शक्ति–यथा भक्ति जीवन में उतारना चाहिये। इसलिये कहा है–

जिस करणी से हम हुये अरिहंत - सिद्ध महान्।
उस करणी तुम करो हम - तुम एक समान ॥

अर्थात् भगवान का उपदेश यह है कि जिन आदर्शो के कारण मैं महान् बना उन आदर्शो को तुम भी अपनाओ जिससे हम और तुम एक समान हो जायेंगे। इसलिए मन्दिर जाना, देवदर्शन करना, पूजा–पाठ करना, स्तुति, प्रार्थना आदि करना केवल अच्छे आदर्शों को अपनाने की एक आध्यात्मिक–मनो वैज्ञानिक प्रणाली है। भगवान् से यही प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवान! मैं भी आपके समान आदर्श, ज्ञानवान, क्षमावान, धैर्यवान, निष्कलंक, पवित्र, शांत–सुखी बनूँ। इसलिये भक्त को भगवान बनने के लिये धार्मिक क्रियायें करनी चाहिए ना कि भिखारी बनने के लिये धन, मान, नाम, वैभव आदि माँगना, दूसरों के प्रति बुरा व्यवहार करना आदि भिखारीपना है, दरिद्रता है, जघन्य काम है।

भक्त जब भगवान् के पास जाता है तब वह भगवान के स्वरूप रूपी दर्पण में अपने स्वरूप का दर्शन करता है। जब वह द्रव्य दृष्टि से स्वयं को एवं भगवान्

को देखता है तब दोनों में कोई अन्तर दृष्टि गोचर नहीं होता है क्योंकि पूज्य भी जीव द्रव्य है तथा पूजक भी जीव द्रव्य है। गुण-दृष्टि से भी कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता है किन्तु जब पर्याय-दृष्टि से अवलोकन करता है तब दोनों में महान्- अन्तर परिलक्षित होता है, क्योंकि भगवान् पर्याय दृष्टि से अनन्त जान, दर्शन, सुख वीर्य के अक्षय भण्डार हैं एवं पूजक स्वयं अनन्त अज्ञान, दुःखादि को भोगने वाला है।

अंग्रेजी में एक नीति वाक्य है-

There is no difference between God and us.

But there is so difference between God and us.

अर्थात् द्रव्य दृष्टि से भगवान और हमारे में कोई अन्तर नहीं है किन्तु अवस्था दृष्टि (पर्याय दृष्टि) से भगवान् और हमारे में महान् अन्तर है। भक्त भगवान के पास एक अलौकिक उपादेय प्रशस्त स्वार्थ को लेकर जाता है। उसका स्वार्थ यह है कि मेरा स्वरूप भगवत् स्वरूप होते हुये भी मैं अभी दीन-हीनं भिखारी के समान हूँ। मैं भगवान् के पास से उनसे वही शिक्षा प्राप्त करूँ जिस मार्ग पर चलते हुये भगवान् ने इस परमोत्कृष्ट नित्यानन्द अवस्था को प्राप्त किया है। इसलिये भक्त की आद्यन्त भावना एवं परिणति निम्न प्रकार की होती है-

दासोऽदं रटता प्रभो! आया जब तुम पास।
'द' दर्शत हट गयो, सोऽहं रहो प्रकाश ॥
सोऽहं सोऽहं ध्यावतो रह न सको सकार ।
दीप 'अहं' मय हो गयो अविनाशी अविकार॥

जब भक्त भगवान के पास आता है तब वह स्वयं को दास (पूजक) एवं भगवान को प्रभु (पूज्य) मानता है। जब भगवान् का दर्शन करके भगवान् का स्वरूप एवं स्व-स्वरूप का तुलनात्मक विश्लेषण करता है तब वह पूज्य के गुणों का अनुकरण करके, आध्यात्मिक साधना करता है तो उस साधना के फलस्वरूप निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करता है तब सोऽहं रूप विकल्प भी विलय हो जाता है, तब अहं रूप अविनाशी, अविकारी स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यह ही पूजा का परमोत्कृष्ट फल है। आचार्य प्रवर उमास्वामी ने कहा है- 'वन्दे तद्गुण लब्धये, अर्थात् मैं वितराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी भगवान के उनके गुणों की प्राप्ति के लिये वन्दना करता हूँ।'

पूजा, वन्दना, अर्चना, विनय, समर्पित भाव में ऐसी एक शक्ति है जिससे पूजक के मन में पूज्य के गुण संचार होते रहते हैं तथा धीरे-2 पूजक भी पूज्य बन जाता है।

अज्ञानोप्रास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यतु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः ॥इष्टोपदेश 23॥

आत्मा ज्ञान से शून्य अज्ञानी की सेवा - उपासना अज्ञान को देती है और ज्ञानियों की सेवा उपासना ज्ञान उत्पन्न करती है क्योंकि यह बात अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्य के पास जो कुछ होता है उसी को वह देता है।

10- परिवार जीवन्त प्रयोगशाला

परिवार जीवन्त प्रयोगशाला है, जहाँ पर जीवन निर्माण का शुभारम्भ होता है।

Man is a social animal. अर्थात् मनष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज शास्त्री के अनुसार विक्षुब्ध मनुष्य या अति विशिष्ट वितरागी पुरूष ही समाज से भिन्न होकर रह सके हैं। सूक्ष्मदृष्टि से देखने से शिशु जब गर्भ में आता है तब से वह समाज का अभिन्न अंग हो जाता है और उसके ऊपर समाज का प्रभाव पड़ने लगता है। जन्म के बाद भी अनेक वर्ष तक वह पर के ऊपर अवलम्बित रहता है। भोजन से लेकर वस्त्र, गृह, भोगोपभोग की सामग्रियों आदि अधिकांश-वस्तु समाज से ही प्राप्त करता है। इतना ही नहीं भाषा, आचार-विचार, सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाज आदि बहुत कुछ वह समाज से सीखता है। समाज की सबसे मौलिक छोटी इकाई है परिवार। परिवार के सदस्यों के परस्पर सौहार्द पूर्ण सहनिवास, सहकार से ही समाजरूपी विशाल परिवार का निर्माण होता है। शिशु मनुष्य की प्राथमिक अवस्था है। वह इस समय असहाय के साथ-साथ ग्रहणशील, जिज्ञासु, अनुकरणप्रिय होता है। आस-पास के व्यक्तियों से, वातावरण से वह बहुत कुछ सीखता है, समझता है एवं अनुकरण करता है। शिशु का सबसे अधिक सम्पर्क माता-पिता से होता है, इससे माता-पिता का संस्कार बच्चों पर बहुत अधिक पड़ता है।

इसीलिये माँ-बाप का कर्त्तव्य होता है कि बच्चों को सुसंस्कारित करने के लिए विशेष पुरूषार्थ करें। बच्चों को सुसंस्कार देने वाले माता-पिता यथार्थ से

योग्य माता–पिता हैं, परन्तु जो योग्य संस्कार नहीं देते हैं तथा कुसंस्कार देते हैं, वे माता–पिता–बच्चों के लिये शत्रु के समान हैं। महान् नीतिकार चाणक्य ने कहा है–

माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभन्ते सभा मध्ये हंसो मध्ये बको यथाः॥

जो माता–पिता अपने बच्चों को सुसंस्कार करके विद्या नहीं सिखाते हैं, ऐसी माता शत्रु, पिता वैरी है क्योंकि विद्या एवं संस्कार से रहित संतान सुसंस्कृत भद्र व्यक्तियों की सभा में शोभायमान नहीं होता जैसे, हंसों के मध्य में बगुले की शोभा नहीं होती है।

गुरू अनेक होते हैं, उनमें से श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ गुरू माता एवं उसके बाद पिता उसके बाद विद्या–शिक्षा देने वाले गुरू हैं। अंतिम गुरू धार्मिक शिक्षा – दीक्षा देने वाले हैं। शिक्षा देने में माता–पिता का जो उच्चस्थान है उसके बारे में प्राचीन नीतिकारों ने कहा है:–

उपाध्यायन्दशाचार्य आचार्याणां शत पिता ।
सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातीश्यते ॥

दश उपाध्याय से उत्कृष्ट एक आचार्य है। 100 आचार्य से उत्कृष्ट एक पिता है, 100 पिता से उत्कृष्ट एक माता हैं अर्थात् 10 लाख उपाध्याय जो संस्कार डालते, बच्चों पर वह एक माता डाल सकती है तथा एक लाख उपाध्याय जो संस्कार डालते हैं वह एक पिता डाल सकता है। इससे सिद्ध होता है कि बच्चों को संस्कारित करने के काम में माता का स्थान सर्वोपरि है, इसीलिये माताओं को सुसंस्कृत, सभ्य, धर्मात्मा, विदुषी होना चाहिए। इस युग के आदि काल में आदिनाथ भगवान् ने ब्राह्मी को ब्राह्मीलिपि तथा सुन्दरी को अंकलिपि की शिक्षा देकर यह ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया कि नारी शिक्षा सर्वोपरि है। आदिनाथ भगवान् ने ब्राह्मी और सुन्दरी को स्त्री शिक्षा का महत्व बताते हुए कहा था–

विद्यावान् पुरूषों लोके सम्मत्ति याति कोविदैः।
नारीं च तद्वत्ती धत्ते स्त्री सृष्टेरग्रिमं पदम् ॥ (आदिपु.)

विद्या से संस्कृत पुरूष विश्व में विद्वान् के द्वारा सम्मान को प्राप्त करता है उसी प्रकार नारी भी विद्या से सुसंस्कृत होने पर नारी समाज में अग्रगण्य हो

जाती है।

भारत के महान् क्रान्तिकारी नेता सुभाषचन्द्र बोस श्रेष्ठ राष्ट्र के लिये उत्कृष्ट माता की आवश्यकता सर्वोपरि मानते थे। राष्ट्र के लिये वे बोलते थे A good mother is better then hundred teachers अर्थात् एक योग्य माता सौ शिक्षकों से भी उत्कृष्टतम है। और भी कहते थे You give me a hundred mothers I give you good nation अर्थात् आप मुझे सौ उत्तम मातायें दें, मैं एक उत्तम राष्ट्र दूँगा। इसका भावार्थ यह है कि उत्तम व्यक्तियों का निर्माण, सुसंस्कृत–उत्तम माताओं से होता है। जैसे शुद्ध स्वर्ण से जो अलंकार बनता है वह अलंकार भी शुद्ध होता है। कहा भी है–

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्चत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्तिं तु यत्रैया वर्धते वद्धि सर्वदा ॥

बोज के अनुसार वृक्ष एवं वृक्ष के अनुसार फल आता है। मूल को सींचने से जैसे वृक्ष पुष्पित पल्लवित् होता है, उसी प्रकार नारी समाज को सुसंस्कृत करने से मानव समाज भी पल्लवित्, पुष्पित, सुसंस्कृत होता है। इसीलिये प्राचीन नीतिकारों ने कहा है–

स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोस्ति कश्चन।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।(मनु 19/26)

जननी एवं जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् हैं॥

योग्य – सुसंस्कृत वीरांगना माता जीजाबाई के कारण ही एक दुबला–पतला सामान्य सामंत का लड़का आगे जाकर छत्रपति शिवाजी बना। जीजाबाई बाल्यावस्था में शिवाजी को प्रेरणा देती थी, अरे शिवा! यदि तुमको महान् बनना है एवं भारत माता, नारी जाति, स्वसंस्कृति, सभ्यता, धर्म की रक्षा करनी है तो तेरे लिये, सोने, के लिये पलंग नहीं, खाने के लिये सोने की थाली नही, परन्तु कठोर साधना रूप जीवन जीना पड़ेगा। यदि तुमको अपनी संस्कृति, नारी–जाति आदि की रक्षा की परवाह नहीं है तो सोने के लिये पलंग है तथा खाने के लिए सोने की थाली है। समर्थ गुरू रामदास की प्रेरणा से शिवाजी एक धीर, वीर, गम्भीर, देशभक्त, स्वाधीनता प्रेमी राजा बना, जो आज भारतीय इतिहास में अमर है। यहाँ तक कि महाराष्ट्र में आज शिवाजी को शिव का अवतार मानकर पूजा

करते हैं। उपरोक्त ऐतिहासिक घटना से यह सिद्ध होता है कि मोह से ग्रसित होकर बच्चों का लालन–पालन नहीं करना चाहिये किन्तु उन्हें महान् बनाने के उद्देश्य से करना चाहिए। नीतिकारों ने कहा भी है–

लालनात् बहवो दोषास्ताडनाद्बहवो गुणाः ।
तस्मात् पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्नतुलालयेत् ॥42॥

मोह– युक्त होकर लालन करने से बहुत दोष उत्पन्न होते हैं। दुर्गुण को नष्ट करने के लिए एवं उचित मार्ग में लगाने के लिये ताड़न करने से अनेक गुण उत्पन्न होते हैं। इसीलिये शिष्य और पुत्र को ताड़न करना चाहिए, लालन नहीं करना चाहिए।

लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडषे वर्ष पुत्रे मित्र वदाचरेत् ॥43॥

शैशव अवस्था में बच्चे अधिक संवेदनशील, निः सहाय, दुर्बल होने के कारण 5 वर्ष तक उनका लालन करना चाहिए। शैशव अवस्था में ताड़न, भर्त्सना करने से बच्चों में कुण्ठित–भाव, तनाव, हीनता, डर आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये अधिक शैशव दशा में प्यार – दुलार, लालन–पालन करना चाहिये। पाँच वर्ष के बाद बच्चों के मन, इन्द्रियाँ, शरीर कुछ परिपक्व होते जाते हैं, इसलिए उसे इस अवस्था में योग्य शिक्षा–दीक्षा–संस्कार देने के लिए कठोर अनुशासन करना चाहिए। किशोर अवस्था से जब बच्चे युवक अवस्था में पदार्पण करते हैं, तब उनमें कुछ आत्म–गौरव–स्वाभिमान जग जाता है। इसके साथ–साथ बाल्यावस्था की सरलता, ऋजुता, ग्रहणशक्ति, स्मरण–शक्ति कुछ मंद होने की संभावना होती है। इसलिये पहले जिसको सुसंस्कार नहीं मिला है उन्हें इस अवस्था में अनुशासित करने पर वे सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाते हैं। इसलिये इस अवस्था के बच्चों से प्यार मृदुभाव से काम लेना चाहिए।

परिवार में परस्पर प्रेम, सौहार्द, सहकार, सेवाभाव, त्यागभाव होना चाहिये। बड़ों के प्रति आदर तो छोटो के प्रति प्यार होना चाहिये। मिलजुल करके काम करना चाहिये और मिलजुल करके भोजन करना चाहिये। बहू के साथ गृहलक्ष्मी प्यारी बेटी के समान व्यवहार करना चाहिये और बहू को सास–ससुर के साथ पूजनीय माता–पिता के समान व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार व्यक्ति निर्माण

से समाज निर्माण, समाजनिर्माण से राष्ट्र निर्माण व राष्ट्र निर्माण से विश्व निर्माण होगा।

11- कर्त्तव्य पालन के लिये भोजन

खाने के लिए जिओ मत, जीने के लिए खाओ मत, किंतु जीवन ज्योति के लिए ईंधन प्राप्त करो।

सामान्यतः यह नीति है कि जीने के लिये खाओ खाने के लिए जिओ मत। परंतु मै इस नीति को नहीं मानता हूँ, क्योंकि इसके दोनों पक्ष महान् उद्देश्य को लिए हुए नहीं है परंतु जीवन ज्योति को प्रकाशित करने के लिये भोजन रूपी ईंधन को स्वीकार करो। जिस प्रकार दीपक की ज्योति के लिए तेल रूपी ईंधन की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार जीवन में आदर्श रूपी ज्योति फैलाने के लिए भोजन रूपी तेल को ग्रहण करना चाहिए। "शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्" अर्थात् धर्म साधन के लिए शरीर की आवश्यकता होती है एवं शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता होती है।

जैसा होवे आहार वैसा होवे विचार एवं आचार

जीव के शरीर उसकी द्रव्यात्मक इन्द्रियाँ, उसके द्रव्य मन पूर्णतः भौतिक (पौद्गलिक) होने के कारण एवं उसकी भावात्मक इन्द्रियाँ, भाव मन भी सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि से क्षायोपशमिक भाव होने से पौद्गलिक (भौतिक)है।

भोजन, पानी आदि भौतिक वस्तु होने के कारण इसका भी सुप्रभाव एवं कुप्रभाव जीव के ऊपर पड़ना भी स्वाभाविक है। जिस प्रकार पानी की कमी होने से प्यास लगती है एवं पानी पीने से शरीर, इन्द्रियाँ मन तरोताजा हो जाते हैं। इसी प्रकार शराब पीने से शरीर दुर्बल एवं रोगाक्रान्त हो जाता है, मन क्षुब्ध हो जाता है तथा विवेक नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार शुद्ध शाकाहार, मांसाहार, शुद्ध पानी एवं नशीले पानी के बारे में भी जान लेना चाहिए। इसलिए कहा गया है –

As you eat so you think and as you think so you become.
Our body is what we eat.

अर्थात् जैसा आहार करते हैं वैसा विचार करते हैं एवं जैसे हम विचार करते हैं वैसे हम परिणमन करते हैं। हमारा शरीर वैसा है जैसा हम आहार करते हैं।

Animal food for those
who will fight and die,
and vegetable food for those,
who will live and think.
मांसाहार उनके लिए है, जो लड़ेंगे एवं मरेंगे।

शाकाहार उनके लिए है, जो जीवित रहेंगे एवं चिन्तन करेंगे। जो अभक्ष भक्षण करते हैं; भ्रष्ट आचरण करते हैं वे शरीर से मानव होकर भी भाव से, क्रिया से दानव हैं। नीतिकारों ने कहा भी है:-

मांसाहारी मानवा परतछ राक्षस अंग।
तिन की संगति मत करो, परत भजन में भंग॥
जो रक्त जगे कापड़े, जामा होवे पलीत।
जो रक्त पीवे मानुसा, तिन क्यों निर्मल चित्त॥

वर्तमान मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों ने भी सिद्ध किया है कि मांस, मद्य, धूम्रपान, तम्बाकू सेवन, अमर्यादित भोजन, अशुद्ध भोजन एवं अभक्ष भक्षण से अनेक शारीरिक, मानसिक रोग हो जाते हैं। इसका सविस्तृत वर्णन मैंने **'धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान'**एवं **'व्यसन का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण'** में किया है। विशेष जिज्ञासु के लिए वहाँ अवलोकनीय है।

विचारानुसार आहार– अनेक उदाहरणों से सिद्ध होता है कि विचार में परिवर्तन होते ही आहार में परिवर्तन हो जाता हैं। जैन धर्म के अनुसार महावीर भगवान का जीव पहले सिंह था, वह प्राणियों को मार–कर उनका कच्चा माँस खाता था परन्तु जब एक दिन दो चारण ऋद्धिधारी मुनि उसको सम्बोधित करते हैं तब उसका विवेक जाग्रत हो जाता है जिससे भाव में परिवर्तन आ जाता है, जिससे वह न केवल माँस खाना छोड़ देता है बल्कि सम्पूर्ण प्राणियों को कष्ट देना भी छोड़ देता है और सम्पूर्ण भोजन को त्याग कर समाधि लेकर आत्म चिन्तन करता है। इसी प्रकार एक हाथी का वर्णन है जिसने जाति स्मरण के बाद अप्रासुक पानी एवं जीवित वृक्ष का सेवन भी त्याग दिया।

प्राचीन इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विद्युत चोर आदि ऐसे पतित जीव थे जो चोरी, वेश्या–गमन, मांस भक्षण आदि व्यसनों का सेवन करते थे।

परन्तु जब उनके भाव में परिवर्तन आया तो उनके सम्पूर्ण कुव्यसन छूट गये एवं शुद्ध भोजन करने लगे। इतना ही नहीं वे आगे जाकर मुनि बनकर आत्म साधन के बल से मानव से भगवान बन गये। बौद्ध धर्म में भी अंगुली माल आदि जैसे पतित भी महात्मा बुद्ध के सम्पर्क में आकर पतित से पावन बन गए। उपर्युक्त उदाहरण से एवं सिद्धान्तों से यह सिद्ध होता है कि विचार से आहार का गहरा संबंध है।

विश्व साहित्य के अध्ययन से एवं अनुभव से ज्ञात होता है कि कभी कभी सात्विक आहार करने वाले कुछ व्यक्ति भी वैचारिक दृष्टि से पतित पाये जाते है। जैसे जैन धर्मानुसार, रावण, कंस, दुर्योधन आदि सात्विक आहारी होते हुए भी पापाचारी दुराचारी, भ्रष्टाचारी थे। स्वयंभूरमण समुद्र में निवास करने वाले महामत्स्य के कान का मैल खाकर उसके कान में निवास करने वाला तन्दुल मत्स्य ने अपने जीवन में न दूसरों को मारा, न मांसाहार किया। तथापि सप्तम् नरक में जाने का कारण दूषित विचार थे। इसलिए केवल शाकाहार या सात्विक आहार करके स्वयं को सात्विक व्यक्ति, साधु सन्त या अहिंसक नहीं मान लेना चाहिए। सात्विकआहार करना धर्म–साधन के लिए बाह्य निमित्त है। इस निमित्त को ही सब कुछ मानकर नहीं बैठे जाना चाहिए। कबूत्तर, बकरा आदि शाकाहारी होते हुए भी बहुत काम सेवन करते हैं। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता है कि, केवल आहार के ऊपर ध्यान देकर विचार, आचार के ऊपर ध्यान नहीं देना बहुत बड़ी गलती है। इसलिए जितना ध्यान आहार के ऊपर देना चाहिए, उससे भी अधिक ध्यान विचार एवं आचार के ऊपर देना चाहिए। क्योंकि यदि हमारा आचार एवं विचार शुद्ध एवं सात्विक होगा तब हमारा आहार भी शुद्ध व सात्विक होगा। जो असात्विक भोजन करते हुए कहेगा कि, मेरा आचार एवं विचार शुद्ध है, मुझे सात्विक आहार की क्या आवश्यकता है ? तो जानना चाहिए कि वह व्यक्ति ढ़ोंगी है, पाखण्डी है, मायाचारी है व झूठ बोलने वाला है।

वर्तमान युग वैज्ञानिक तार्किक युग होते हुए भी कुछ व्यक्ति साक्षर होते हुए भी राक्षस बनकर माँस सेवन करते हैं, मद्यपान करते हैं, धूम्रपान करते हैं व तम्बाकू खाते हैं। परन्तु कुछ व्यक्ति केवल भोजन में शाकाहार का प्रयोग करके स्वयं को अहिंसक एवं धार्मिक मान लेते हैं ऐसे व्यक्ति भी कम मूर्ख नहीं है, क्योंकि कुछ शाकाहारी व्यक्ति हिंसात्मक प्रसाधन सामग्री जैसे नेल पॉलिस, लिपिस्टिक, चर्म निर्मित जूता, बेल्ट, रेशमी वस्त्र आदि का प्रयोग निःसंकोच करते

हैं। केवल वे हिंसात्मक सामग्रियों का ही निःसंकोच प्रयोग नहीं करते हैं बल्कि वे उसका उत्पादन भी करते हैं एवं कुछ विक्रय भी करते हैं। ऐसे व्यक्ति भी हिंसक हैं, मांसाहारी के समान हैं, पाखण्डी हैं और मूढ़ भी हैं। वे गोमुख व्याघ्र के समान दिखने में तो बगुलों के जैसे धार्मिक हैं परन्तु वस्तुतः धर्म द्रोही हैं। कुछ व्यक्ति उपर्युक्त हिंसात्मक सामग्री प्रयोग नहीं करते हैं परन्तु व्यापार में दूसरों का शोषण करते हैं और उससे उपार्जित धन से शाकाहार करते हैं वे शाकाहारी भी मनो–वैज्ञानिक व आध्यात्मिक दृष्टि से माँसाहारी के समान हैं।

भोजन शुद्ध, सात्विक, ताजा प्रासुक (मर्यादित)होना चाहिये। भोजन भूख लगने पर ही दिन में योग्य समय में सूर्य के पर्याप्त प्रकाश में करें। स्वच्छता से हाथ, पैर मुँह धोकर कुल्ला कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके मन को शांत करके मौन पूर्वक प्रशस्त स्थान में भोजन करें। भात, रोटी आदि खाद्य को पीना चाहिये एवं पानी आदि पानीय को खाना चाहिये अर्थात् ठोस चीज को इतना चबाना चाहिये, जिससे भोजन पानी के जैसे पीने में आवे एवं पानी को धीरे–धीरे पीना चाहिये। भोजन को 32 दांत की संख्या बराबर चबाना चाहिये। पहले थोड़ा सा पानी (आचमन) पीना चाहिये। उसके बाद मीठा ठोस भोजन करना चाहिए। मध्य में नमकीन आदि भोजन करना चाहिये। मध्य–मध्य में थोड़ा–थोड़ा पानी पीना चाहिये। पहले या अंत में ज्यादा पानी नहीं पीना चाहिये। विपरीत रस का सेवन नहीं करना चाहिए। जैसे–दूध के साथ या ठीक पहले या बाद में खट्टा रस, फल या फलरस के बाद पानी, शीतल भोजन या पानी के बाद गरम या गरम के बाद शीतल भोजन या पानी। भोजन के अंत में इलायची, सौंफ, लौंग का सेवन करना चाहिये। किन्तु धुम्रपानादि नहीं करना चाहिये।

भोजन के बाद हाथ, पैर, मुँह अच्छी तरह से धोना चाहिये। भोजन के बाद हाथ को धोकर तथा हाथ को परस्पर में रगड कर दोनों आंख के ऊपर धीरे–2 से हाथ से रगड़ना चाहिये। इससे दृष्टि शक्ति, इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है एवं रोग नहीं होता है। भोजन के बाद प्रभु स्मरण करके उठना चाहिये। शांत गंभीर मुद्रा में कुछ समय बैठना चाहियें इसके अनन्तर 100 कदम धीरे–धीरे चलना चाहिये। भोजन के बाद मुत्रत्याग (पेशाब) करना चाहिये। भोजन के बाद कठिन कार्य, तेलमालिश, स्नानदि नहीं करना चाहिये। अनन्तर चित्त होकर (सीधे लेटकर)9, दायें करवट 18 एवं बायें करवट 27 श्वासोच्छ्वास प्रमाण काल विश्राम करना चाहिये। विश्राम के बाद योग्य अध्ययनं, ध्यान–चर्चा, लेखन, मनन, परोपकारादि कार्य करना चहिये।

12- प्रशिक्षणालय - विद्यालय

जीवन संग्राम के प्रशिक्षणालय विद्यालय हैं, न कि केवल प्रदर्शनालय।

शिक्षा प्राप्त करना जीवन का एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रत्येक कार्य के लिए अंतरंग कारण एवं बहिरंग कारण की आवश्यकता है। शिक्षा प्राप्त करने में अंतरंग कारण बुद्धि–लब्धि, रुचि, अध्ययनशीलता, एकाग्रता है तो बहिरंग कारण शारीरिक स्वास्थ्य, योग्य पोष्टिक भोजन, शान्त–स्वच्छ–एकान्त प्राकृतिक वातावरण आदि है। जिस प्रकार हवा चलने से या पत्थर फेंकने से शान्त जल राशि भी क्षुभित हो जाती है उसी प्रकार अशान्त वातावरण से मन भी चंचल, अशान्त क्षुभित हो जाता है। जहाँ अधिक जन कोलाहल हो, शोर शराबा हो अर्थात् शब्द प्रदूषण हो तथा वायु प्रदूषण, भूमि प्रदूषण हो वहाँ शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है जिससे अध्ययन व्यवस्थित नहीं हो पाता है। इसलिए प्राचीन काल में गुरुकुल अर्थात् विद्यालय एकान्त, शान्त प्रकृति की गोद में होते थे, जिससे शिक्षक तथा शिक्षार्थी अपना अध्यापन एवं अध्ययन कार्य सुचारु रूप में करते थे। इसी प्रकार के स्थान में प्राण वायु (ऑक्सीजन) पर्याप्त मात्रा में मिलती थी। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्राण वायु की आवश्यकता अधिक होती है। एकान्त स्थान में ज्ञानार्जन के माहौल में ज्ञान का आदान–प्रदान एवं प्रशिक्षण कार्य निर्विघ्न रूप से होता है। कोलाहल में मन स्थिर नहीं होता है, मन इधर–उधर भटकता है।

परन्तु मध्यकाल में प्राचीन ज्ञान के ह्रास से एवं आधुनिक ज्ञान के प्रचार–प्रसार के अभाव में अधिकांश विद्यालय नगर के मध्य में कोलाहल के बीचमें बनने लगे थे। इसका दुष्ट परिणाम मानसिक एवं शारिरिक स्वास्थ्य के ऊपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। शब्द प्रदूषण के कारण मन अस्थिर हो जाता है, ब्लेड़–प्रेशर बढ़ जाता है; वायु प्रदूषण के कारण प्राण वायु पर्याप्त नहीं मिलती है, श्वास एवं फेफड़े सम्बन्धी अनेक रोग हो जाते हैं, बुद्धि–लब्धि घट जाती है, स्मरण शक्ति घट जाती है। यातायात की अधिकता से बच्चों को यातायात में बाधा पहुँचती है, दुर्घटना हो जाती है। अभी पुनः वैज्ञानिक शोध के कारण विद्यालय, ग्राम एवं नगर से दूर शान्त वातावरण में बनने लगे हैं।

विद्यालय जन कोलाहल से दूर शान्त, प्रशान्त, स्वच्छ, प्रशस्त, विस्तीर्ण,

उन्मुक्त, प्राकृतिक परिवेश के मध्य में होना चाहिए। विद्यालय के परिसर में चारो दिशाओं में अच्छे–अच्छे वृक्ष, फलदार वृक्ष, पुष्प के वृक्ष, औषध वृक्ष आदि से युक्त होना चाहिये क्योंकि एक वृक्ष तेरह व्यक्तियों के लिए एक दिन में प्राण वायु प्रदान करता है। तुलसी का वृक्ष तो दिन–रात ऑक्सीजन त्याग करता है। नीम वृक्ष, अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) विशेष रूप से पर्यावरण को शुद्व करते हैं। जहाँ वृक्ष होतें हैं वहाँ प्राण वायु तो पर्याप्त रूप में मिलती ही है साथ–साथ शब्द प्रदूषण को भी वृक्ष रोकता है। वृक्ष से जल बाष्पीकरण होने के कारण और ताप विकिरण होने के कारण वहाँ उष्णता भी कम होती है। एक वृक्ष कई कूलर का काम करता है। हरियाली को देखने से दृष्टि–शक्ति बढती है, मन को शान्ति मिलती है, तनाव दूर होता है, मन प्रसन्न होता है। वृक्ष पर विभिन्न पक्षी आकर बैठते हैं, कलरव करते हैं, गिलहरी फुदक–फुदक करती है जिससे बच्चे प्रायोगिक रूप में वृक्ष के बारे में, पशु के बारे में, पक्षियों के बारे में रोचक जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। पक्षियों के चहचहाने में जो मधुरता होती है जिससे बच्चों को बहुत ही प्रसन्नता होती है जिससे बाल मन खिल उठता है। इससे उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर भी अनुकूल प्रभाव पडता है।

विद्यालय में खेल–कूद के लिए, मनोरंजन के लिए क्रीडांगन होना चाहिये। क्योंकि अध्ययन मानसिक– टॉनिक (रसायन) है तो खेल–कूद शारीरिक टॉनिक है। खेल–खेल से बच्चे परस्पर सहकार, प्रेम, संगठन, सामाजिकता, कष्ट–सहिष्णुता, जय–पराजय में समभाव आदि गुण को सीखते हैं। इससे वास्तविक जीवन रूपी क्रीड़ा में जो अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थिति आयेगी उसको भी खेल भाव से सहने की शिक्षा प्राप्त करते हैं। विद्यार्थियों को बगीचा लगाने में, वृक्ष को पानी देने में, परिसर की स्वच्छता के लिए भी प्रेरित करना चाहिये। इससे इनके स्वावलम्बन, प्रकृति प्रेम, स्वच्छता, कर्तव्यनिष्ठा आदि गुणों में वृद्धि होगी।

उपर्युक्त समस्त कारण को जानते हुए भी कुछ व्यक्ति स्थानाभाव से और विशेषतः व्यापारिक दृष्टिकोण से जो पब्लिक स्कूल बनाते हैं उनमें से अधिकांश स्कूल संकीर्ण, गन्दे, शोर–शराबा एवं दूषित पर्यावरण से युक्त स्थान में बनाते हैं। वहाँ न बच्चों को पर्याप्त प्रकाश, मुक्त स्वच्छ प्राण वायु मिलती है न खेल कूद के लिए क्रीडांगन मिलता है। पहले तो विद्या दान करते थे अंभी सबसे अधिक मूल्य से विद्या विक्रय की जाती है।

बच्चों के लिए जल–पान के लिए छना हुआ, स्वच्छ, स्वास्थ्यप्रद पानी की भी व्यवस्था होनी चाहिये क्योंकि बच्चे स्कूल के परिसर में 5–6 घंटे रहते हैं पानी के अभाव से गला, मुँह सूखता है, प्यास लगती है, शरीर थक जाता है, अवसाद, मूर्च्छा, भ्रम, अजीर्ण, लू लगना (तापघात) आदि रोग हो जाते हैं। स्कूल के परिसर में अशुद्व खुले बरतन में रखे हुए जिसमें मक्खियाँ बैठती हों, धूल गिरती हो ऐसे चाट, पकोड़ी, समोसा आदि खाद्य पदार्थ किसी को भी बेचने नहीं देना चाहिये। यदि इसकी आवश्यकता है तो अच्छे फल जैसे– केला, सेव, ककडी आदि फला की व्यवस्था होनी चाहिये। यदि अग्नि से पकाई हुई खाद्य वस्तु की आवश्यकता है तो उसकी स्वच्छता, पवित्रता होनी चाहिये।

विद्यालय में बच्चों के मनोरंजन के लिए एवं विभिन्न सांस्कृतिक प्रशिक्षण के लिए, नाटक, एकांकी, भाषण, संगीत, नृत्य आदि कार्यक्रम भी मध्य–मध्य में होने चाहिये । परन्तु जिस कार्यक्रम से बच्चों में ईर्ष्या, द्वेष, पक्षपात बढ़े, अन्ध विश्वास बढ़े, ऐसे कार्यक्रम नहीं होने चाहिये। जादु–टोना, मन्त्र–तन्त्र आदि कार्यक्रम जो कि अन्धविश्वास व संकिर्णता को बढावें, बच्चों के मन में भय भावना भर जावे ऐसे कार्यक्रम भी नही होने चाहिये। यदि उपर्युक्त कार्यक्रम करना है तो उसका वैज्ञानिक विश्लेषण भी होना चाहिये। क्योंकि भारत एक धर्म प्रधान देश होने के कारण यहाँ के लोग दूसरों को धर्म के नाम पर ठगते है, अन्धविश्वास फैलाते हैं और दूसरे लोग भी सहजता से अन्धविश्वासों को स्वीकार कर लेते हैं। मध्य युग में अन्धविश्वास के कारण देश का बहुत पतन हुआ है। मध्य – मध्य में जो राष्ट्रीय, धार्मिक एवं एतिहासिक पर्व आते हैं उन्हें भी उत्साह से युक्त होकर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम के साथ मनाना चाहिये नहीं तो इससे भी अन्धविश्वास, रुढ़िवादिता, पन्थवाद, व्यक्तिपूजा, शोषणनीति, फिजूल खर्च, समय का दुरुपयोग आदि दुर्गुण उत्पन्न हो सकते हैं।

जीवन संग्राम के प्रशिक्षणालय विद्यालय होने के कारण कठोर प्रायोगिक जीवन की रणभूमि की भयंकरता तथा प्रयोग धार्मिकता का भी प्रशिक्षण विद्यालय में प्राप्त करना चाहिये। केवल अच्छे–2 स्कूली ड्रेस –सूट बूट, पेंट, टाई, पहनकर विद्यालय चले जाना यह कोई विद्यार्थियों का सच्चा लक्षण नहीं है। विद्यार्थियों को विद्यालय से पुस्तकीय ज्ञान के साथ–साथ जीवन उपयोगी प्रायोगिक ज्ञान, स्वावलंबी, परिश्रमी, विनम्र, कष्ट सहिष्णु, परोपकारी, सेवा भावी, संस्कारवान, सदाचार आदि गुणों को भी ग्रहण करना चाहिये।

13- शिक्षा का स्वरूप एवं उद्देश्य

विश्व में अनेक प्रजाति के अनन्तानन्त जीव हैं परन्तु उनमें से मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। प्रत्येक धर्म, दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि मनुष्य शरीर की रचना, बौद्धिक क्षमता, शिक्षा–दीक्षा का आदान–प्रदान, एकाग्रता, पुरुषार्थ, गवेषणा की शक्ति, खोज–बुद्धि, जानने की जिज्ञासा, सुख प्राप्त करने की उत्कृष्ट इच्छा मनुष्य में अधिक पाई जाती है। उपर्युक्त गुण ही अन्य जीव से मनुष्य को पृथक् कर लेते हैं, श्रेष्ठ बना लेते हैं। कहा भी है–

आहार-निद्रा-भय मैथुनं च सामान्य मेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये पशुओं में और मनुष्यों में समान है। मनुष्यों में केवल (धर्म, विवेक, सदाचार, सत् विश्वास आदि) ही अधिक हैं और जो ऐसे विशिष्ट गुण से रहित होता है वह मनुष्य यथार्थ से पशु के समान है। अर्थात् वह मनुष्याकार पशु है। कहा भी है –

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्य लोके भुवि भारभूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

जो विद्या अध्ययन नहीं करते हैं सत्कार्य के लिए तपस्या अर्थात् पुरूषार्थ नहीं करते हैं, परोपकार के लिए दान नहीं देते हैं, ज्ञानार्जन नहीं करते हैं, शालीनता, नम्रता, सौजन्यता आदि गुण से युक्त नहीं होते हैं; अहिंसा, सत्य, सेवा, परोपकार आदि धर्म का पालन नहीं करते हैं वह इस मनुष्य लोक में पृथ्वी के भार स्वरूप होकर मनुष्य रूप में पशु के समान विचरण करते हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि जो केवल पेट, प्रजनन, पेटी (परिग्रह) आदि पशुत्व प्रवृत्ति में प्रवृत्त होता है उसने यथार्थ से मनुष्यत्व को प्राप्त नहीं किया है। पशुत्व से निवृत्त होकर मनुष्यत्व को प्राप्त करके महामानव से भगवान् (ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान्) बनने की जो प्रक्रिया है उसे ही यथार्थ से शिक्षा कहते हैं। शिक्षा का उद्देश्य हैं – **असतो मा सद्गमय ।**
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृतयोर्मा अमृतंगमय ।

असत् से सत्य की ओर प्रयाण करना, अज्ञान रूपी अंधकार से ज्ञान रूपी आध्यात्मिक प्रकाश की ओर गमन करना, मृत्यु तथा विनाशशीलता से अविनश्वर मोक्ष रूपी अमृत को प्राप्त करना है। अर्थात् शिक्षा से जीव "सत्यं शिवं सुन्दरम्" "सच्चिदानंदम्" बन जाता है शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ उद्धृत कर रहा हूँ –

भारतीय दृष्टिकोण – (1) 'शिक्षा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'शिक्ष' धातु ('शिक्ष' भाव् 'अ' + टाप्) से हुई है, जिसका अर्थ होता है – सीखना और सिखाना।

(2) 'विद्या' शब्द को भी शिक्षा के पर्याय के रूप में समझा जाता है जिसकी उत्पत्ति संस्कृत की विद् (ज्ञान) धातु से विद् + क्यप् + टाप् के योग से हुई है, जिसका अर्थ होता है – जानना, जताना या ज्ञान प्राप्त करना ।

हमारे भारतीय छह शास्त्रों (शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छन्द) में 'शिक्षा' नाम के शास्त्र का प्रथम स्थान है।

पाश्चात्य दृष्टिकोण (1) 'शिक्षा' का अंग्रेजी पर्याय 'एजूकेशन' (Education) है जिसकी उत्पति लैटिन भाषा के मूल शब्द 'एज्युकेटम' (Educatum) से हुई। यह – एज्युकेटम शब्द दो शब्दों के मेल से बना है – 'ई' (E) तथा 'ड्यूको' (Duco) , इसमें 'ई' का अर्थ – 'अन्दर से' (जन्मजात प्रवृतियों को 'ड्युको' का अर्थ – अग्रसर करना (निकालना)। इस प्रकार 'एज्युकेशन' शब्द का अभिप्राय हुआ अन्तर्निहित शक्तियों या प्रवृत्तियों को बाहर की ओर अग्रसर करना। इस व्युत्पत्ति से यह विदित होता है कि शिक्षा देते समय अध्यापक बालक को कुछ नई वस्तु या ज्ञान नहीं देता अपितु उसकी अन्तर्निहित शक्तियों के विकास में सहायता देता है। अर्थात् बालक के अन्दर अनेक मानसिक शक्तियाँ सुषुप्तावस्था में निहित रहती हैं, उन्हें जागृत कर विकसित करते हुए बाहर ले आने का कार्य शिक्षा के द्वारा किया जाता है। परन्तु इस व्युत्पत्ति–परक अर्थ के अनुसार तो शिक्षा कोई वस्तु या पदार्थके रूप में प्रतिभाषित होती है, जो कि युक्तिसंगत नहीं है।

(The word education means - The act of training bringing up and to lead out.) अर्थात् सरल शब्दों में शिक्षा शब्द का अर्थ हुआ – प्रशिक्षण, संवर्द्धन और पथ–प्रदर्शन का कार्य। बालक की जन्म जात शक्तियों को विकसित कर उनका सर्वांगीण विकास करना न कि उनके मस्तिष्क में ज्ञान को ठूँसना।

शिक्षा की परिभाषाएँ

प्लेटो के अनुसार– "शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रशिक्षण से है जो बालकों के सद्गुण की मूल प्रवृत्ति हेतु उपयुक्त आदतों द्वारा प्रदान किया जाता है।"

(I mean by education that training which is given by suitable habits to the first instincts of virtue in children. - Plato

पेस्तालॉजी के अनुसार – "मानव की आन्तरिक शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील विकास ही शिक्षा है।"

(Education is a natural harmonious and progressive development of man's innate powers) - Pestalozzi

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार – "मनुष्य में पूर्व से विद्यमान सम्पूर्णताओं को बाहर लाना ही शिक्षा है।"

(Education is the manifestation of perfections already in man.) - Swami Vivekanand

रवीन्द्रनाथ टेगौर के अनुसार – "सर्वोच्च शिक्षा वह है जो केवल सूचनायें ही नहीं देती अपितु हमारे जीवन और सम्पूर्ण सृष्टि में तादात्म्य स्थापित करती है।"

(The highest education is that which does not merely give us information but makes our life in harmony with all existance). -Tagore

महात्मा गांधी के अनुसार – "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक एवं मनुष्य में शरीर, मस्तिष्क एवं आत्मा के सर्वोत्तम रूप की अभिव्यक्ति है।"

(By education I mean an all- round drawing out of the best in child and man's boby, mind and spirit.) - M.K. Gandhi

गीता के अनुसार – "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् शिक्षा वह है जो मुक्ति प्रदान करे।

अरस्तु के अनुसार – "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का सृजन ही शिक्षा है।"

(Education is the creation of a sound mind in a sound body)

जॉन डीवी के अनुसार – 'शिक्षा दर्शन का गति शील पक्ष है।'

(Education is the dynamic process of philsophy).

डमाविल के अनुसार – शिक्षा के व्यापक अर्थ में सभी प्रभाव आते हैं जो व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक प्रभावित करते हैं।

(Education, in its widest sense includes all the influences which act upon an individal during his passage from the creale to the grave). Dumviie

फ्रेंडसन के अनुसार – 'आधुनिक शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति और समाज दोनों के कल्याण से है।'

(Modern education is concerned with ths welfare of both the individual and Society.) - Frandsh

यूलिच के अनुसार – "शिक्षा–व्यक्तियों की व्यक्तियों के द्वारा और व्यक्तियों के लिए की जाने वाली प्रक्रिया है। यह सामाजिक प्रक्रिया है और इसको समाज के सम्पूर्ण स्वरूप और कार्यों से पृथक् नहीं किया जा सकता है।"

(Education is a process performed of the people, by the people, for the people. It is a social process, and it cannot be separated from the total character and tasks of society.)- Robert ulich

भर्तृहरि –

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्।
विद्याभोगकरी यशः सुखकरी विद्यागुरूणां गुरूः।
विद्या बन्धुजने विदेशगमने विद्या परा देवता।
विद्या राजसु पूजते न च धनं विद्याविहिनः पशु॥(2)

विद्या ही मनुष्य का सौन्दर्य और गुप्त धन है। विद्या ही भोग, यश और सुख को देने वाली है। विद्या ही गुरुओं का भी गुरु है। परदेश में विद्या ही बन्धु है। विद्या परा देवता है। विद्या ही राजाओं में पूजी जाती है धन नहीं, अतः विद्याहीन नर निरा पशु है।

भगवान् महावीर

जेण तच्चं विबुज्झेज्ज जेण चित्तं णिरुज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज तं णाणं जिणसासणे।

जिससे तत्त्व का बोध होता है, जिससे मन का निरोध होता है, जिससे आत्मा शुद्ध होता है जिन शासन में उसका नाम ज्ञान है।

जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि।
जेण मित्तीं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे ।268)

जिसके द्वारा जीव राग से विरक्त होता है, जिसके द्वारा मोक्ष में राग करता है, जिसके द्वारा मैत्री को भावित करता है महावीर का शासन (भगवान् की शिक्षा) में वह ज्ञान (विद्या) कहा गया है।

महात्मा बुद्ध –

सव्वपापस्य अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं। (183) धम्मपद

सभी पापों को न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना ये बुद्धों की शिक्षा है।

अनूपवादो अनूपघातो पतिमोक्खे च संवरो
मतञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयसासनं ।
अधिचित्ते चायोग एतद् बुद्धांनां शासनम्। (185)

निन्दा न करना, घात न करना, प्रतिमोक्ष में संयम रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकान्तवास, चित्त को योग में लगाना – यह बुद्धों की शिक्षा है।

नारायण श्रीकृष्ण –

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्। (16)

परन्तु जिनके अज्ञान का आत्मज्ञान द्वारा नाश हो गया है, उनका वह सूर्य के समान, प्रकाशमय ज्ञान परमतत्त्व का दर्शन कराता है।

तदबुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूत कल्मषः। (17)

ज्ञान द्वारा जिनके पाप धुल गए हैं, वे ईश्वर का ध्यान धरने वाले, तन्मय हुए, उसमें स्थिर रहने वाले, उसी को सर्वस्व मानने वाले लोग मोक्ष पाते हैं।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः । (18)

विद्वान और विनयवान ब्राह्मण में, गाय में, हाथी में, कुत्ते में और कुत्ते को खाने वाले मनुष्य में ज्ञानी समदृष्टि रखते हैं।

उपर्युक्त समस्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि केवल अक्षर का (साक्षारता) ज्ञान कर लेना, हस्ताक्षर कर लेना, पुस्तकों का अध्ययन कर लेना या धन कमाने के लिए नौकरी करना, व्यवसाय करना शिक्षा का सम्पूर्ण उद्देश्य नहीं है। शिक्षा का संक्षिप्ततः सम्पूर्ण उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज का सर्वांगीण एवं सार्वभौम विकास है। इसलिए शिक्षा के उद्देश्य को हम दो वर्गों में बांट सकते हैं।

(1) व्यक्ति सम्बन्धी उद्देश्य (2) समाज सम्बन्धी उद्देश्य

(1) व्यक्ति सम्बन्धी उद्देश्य

1. शारीरिक विकास (Physical Development)-

"शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्" अर्थात् शरीर के माध्यम से हम स्व का विकास एवं समाज की सेवा करते हैं। इसलिये शारीरिक विकास करना भी शिक्षा का एक उद्देश्य है। शरीर एवं मन का गहरा सम्बन्ध है। जिसका शरीर रुग्ण, दुर्बल होगा वह राष्ट्र की सेवा क्या करेगा क्योंकि स्वयं की सेवा भी नहीं कर सकता। इसलिये शरीर की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिये शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य, व्यायाम, आसन, योगासन, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा आदि के ज्ञान के लिये शिक्षा की आवश्यकता है । कहा भी है –

Healthy mind in a healthy body,
A Sound mind in a sound body.

2. मानसिक विकास– (Mental Development)-

"मन एव मनुष्याणां कारण बंधमोक्षयो" अर्थात् मन ही मनुष्य के लिये बंध (परतंत्रता, परावलम्बन) एवं मोक्ष (स्वतंत्रता, स्वावलम्बन) के लिए कारण है। हमारी मानसिक कमजोरियाँ यथा अशिक्षा, कुशिक्षा, अंधश्रद्धा, अंध–परम्परायें स्वयं के एवं राष्ट्र के पतन के लिए कारण है। इससे विपरीत सुशिक्षा, सुसंस्कार, मानसिक दृढ़ता, निर्णय लेने की क्षमता, मौलिक स्वतंत्र विचार धारा, स्व एवं समाज की उन्नति के लिए कारण है। जब–जब जो राष्ट्र केवल पुस्तकीय ज्ञान में ही अटक जाता है वह स्वाधीनता एवं उन्नति के पथ से भटक जाता है। भारत के लोग भी जब ज्ञान को केवल पुस्तकीय, वाक् चातुर्य, वाद विवाद, मनोरंजन, छिद्रान्वेषण का विषय बना दिये तब भारत भी परतंत्र हो गया। अतः शिक्षा का

उद्देश्य केवल साक्षरता नहीं है परन्तु मानसिकता सुशिक्षा है।

3. चारित्र निर्माण– (Character Development)

''चारित्तं खलुधम्मो'' अर्थात् चारित्र ही निश्चय से सर्व श्रेष्ठ धर्म है। इसलिये कहा है – 'ज्ञानस्य फलं आचरणं' ज्ञान का फल आचरण है। इसलिये ''ज्ञानं भारः क्रिया विना'' अर्थात् सदाचरण के बिना ज्ञान भार स्वरूप है क्योंकि–

'साक्षरा विपरीताश्चेत् राक्षसा एव केवलम् ।'

विपरीत आचरण करने वाले साक्षर व्यक्ति राक्षस हैं। इसलिये शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य चरित्र–निर्माण है क्योंकि चरित्र निर्माण से व्यक्ति निर्माण, समाज निर्माण व देश निर्माण है। जब–जब जो व्यक्ति या राष्ट्र चारित्र से भ्रष्ट हो गया उसका अवश्य पतन हो गया भले वह कितना भी साक्षर क्यों न हो। इसके लिये प्रसिद्ध उदाहरण है रावण, कंस, दुर्योधन आदि। रावण तो महान राजनीतिज्ञ पंडित था परन्तु सीता हरण रूपी चरित्र हीनता के कारण लंका सहित नष्ट हो गया। अधिकांश राजा, राजपरिवार या राज्य, सुरा, सुन्दरी, शिकार के कारण नष्ट हो गये। इसलिये कहा है–

वित्तं हि नष्टं किंचत् न नष्टं,
स्वास्थ्य हि नष्टं किंचित् हि नष्टं
वृत्तं हि नष्टं सर्वविनष्टं-
तस्मात् वृत्तं परिरक्षणीयम् ॥

अर्थात् सम्पति नष्ट होने से कुछ नष्ट नहीं हुआ, स्वास्थ्य नष्ट होने पर कुछ नष्ट हुआ परन्तु चारित्र नष्ट होने पर सब नष्ट हो जाता है। इसलिए हर प्रयत्न से चारित्र की रक्षा करना चाहिये। अंग्रेजी में भी कहा है –

If Wealth is lost nothing is lost
If health is lost, something is lost.
But if character is lost, every thing is lost.

चारित्र का अर्थ है कर्तव्य निष्ठा, दूसरे के प्रति सद्व्यवहार, अहिंसा, सत्य, धैर्य, क्षमा, सरलता, नम्रता, अवंचकता, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परोपकार, सेवा, दान आदि। उपर्युक्त गुणों के बिना व्यक्ति व राष्ट्र कितना भी साक्षर क्यों न हो पर वह शिक्षित नहीं है। जैसे वर्तमान भारत के उच्च पदस्थ उच्च साक्षर व्यक्ति

(न्यायाधीश, पुलिस – अधिकारी, मंत्री, शिक्षक, डॉक्टर, वकील आदि) कितने निरक्षर, ग्रामीण, आदिवासी म्लेच्छों से भी भ्रष्ट हैं यह कहने की या लिखने की आवश्यकता नहीं है। अभी तो अधिकांश साक्षर व्यक्ति राक्षस बनकर दूसरों का शोषण करने में लगे हैं। शायद इसलिए रावण को भी राक्षस कहते हैं क्योंकि वह साक्षर होकर भी चरित्र हीन था।

4. सांस्कृतिक विकास – (Cultural development)-

जिसके द्वारा शरीर, मन, आत्मा, विश्वास, वेशभूषा, भोजन रीति–रिवाज, संस्कारित हो, परिमार्जित हो, परिशुद्ध हो उन्हें संस्कार कहते हैं और उनका परिणाम ही संस्कृति है। संस्कृति का जो प्रतिफल है वही है सांस्कृतिक और इसका विकास ही सांस्कृतिक विकास। प्रत्येक व्यक्ति एवं राष्ट्र के विकास के लिये संस्कृति का योगदान महत्वपूर्ण है। जिन व्यक्ति में एवं राष्ट्र में संस्कार का बल नहीं है वह व्यक्ति या राष्ट्र स्वाभिमान से स्वावलम्बन से खड़ा नहीं हो सकता है और न ही विकास कर सकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता है संस्कृति की सुरक्षा करना। इसलिए शिक्षा में भी सांस्कृतिक विकास को महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिये। अथवा संस्कृति को सुरक्षित, परिवर्द्धित करना भी शिक्षा का उद्देश्य है।

5. वैज्ञानिक दृष्टि का विकास – (Development of scientific Attitude)

जिस प्रकार अंधा स्वतंत्र रूप से गमन करने के लिये या गमन करने पर भी निश्चित लक्ष्य स्थल में पहुँचने के लिये प्रायः समर्थ नहीं होता उसी प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि बिना अंध विश्वासी रूढ़ीवादी, संकीर्णता, मूढ़ता और जड़ता से युक्त व्यक्ति स्व तथा राष्ट्र प्रगति करने के लिए असमर्थ होता है। शिक्षा द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करके उपर्युक्त अंधविश्वास आदि दुर्गुणों को दूर करके व्यक्ति एवं राष्ट्र प्रगति करने में अधिक समर्थ होता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति प्राचीन से शिक्षा लेकर नवीन–नवीन ज्ञान को भी आत्मसात् करके आगे बढ़ने में तत्पर होते हैं। अंध विश्वासी गुण–दोष की परीक्षा किये बिना केवल प्राचीन पद्धति, परम्पराओं को सब कुछ समझकर आधुनिक सत्यात्मक–तथ्यात्मक शोध–बोध को भी नकार देता है इतना ही नहीं, इतिहास साक्षी है कि अनेक वैज्ञानिकों को, धर्मात्माओं को, सुधारकों को, साधु संतों को भी अंधविश्वासी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र ने किस प्रकार यातनायें दीं, उन्हें अपमानित किया और मृत्यु दण्ड भी दिया है।

6. आध्यात्मिक विकास – (Spiritual development)

प्रायः करके प्रत्येक आस्तिकवादी शिक्षा का अंतिम लक्ष्य आध्यात्मिक विकास ही है। उपर्युक्त विषयों का वर्णन यत्र–तत्र इसी पुस्तक में अन्यत्र किया जायेगा अतः यहां संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। आध्यात्मिक विकास का अर्थ है आत्मा में निहित गुण को जागृत करना, परिमार्जित करना, संवृद्ध करना एवं परिपूर्ण करना। वह आध्यात्मिक गुण है – सत् विश्वास, सम्यक् ज्ञान, सत् चरित्र, संयम, आत्मानुशासन, संतुष्ट, समता, अहिंसा, सेवा, परोपकार, आत्मिक शांति आदि। उपर्युक्त गुणों से व्यक्ति अधिक विकास करता है और राष्ट्र भी अधिक विकास करता है। इसके बिना शिक्षा प्राण बिना शरीर के समान हो जाती है। जिस प्रकार प्राण बिना शरीर विकास नहीं करता, जीवित नहीं रहता है, क्रिया नहीं करता है परन्तु सड़ता है, दुर्गंध फैलाता है, प्रदूषण फैलाता है। उसी प्रकार आध्यात्मिक विकास के बिना शिक्षा से भी जीव तथा राष्ट्र भी न विकास करता है न प्राणवन्त होता है न क्रिया शील होता है। जिस प्रकार वर्तमान आध्यात्मिक विकास के बिना भारत के अनेक लोग भ्रष्टाचार, शोषण घोटाला, बलात्कार, विघटन आदि दुष्ट वृत्ति में लगे हुये हैं। इसलिये वर्तमान भारतीय अशिक्षितों से भी शिक्षित के लिये आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता अधिक है। क्योंकि शिक्षित व्यक्ति ही आज हर क्षेत्र के उच्च स्थान पर कार्यरत हैं और वे अशिक्षित से अधिक पापाचार और भ्रष्टाचार में लिप्त हो रहे हैं।

7. व्यावसायिक कुशलता की उन्नति – (Improvement of vocational efficiency)

जीवन यापन के लिये भोजन, वस्त्र, आवास, यान–वाहन आदि की आवश्यकता पड़ती है। धार्मिक कार्यों के लिये मंदिर, धर्मशाला तीर्थयात्रा, आदि की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिये भौतिक साधनों की आवश्यकता पड़ती है। इन भौतिक साधनों को उत्पन्न करने के लिये कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा आदि की आवश्यकता पड़ती है। इस कृषि आदि में निष्णात बनने के लिये, दक्ष बनने के लिये शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। भौतिक प्रगति एवं स्वावलम्बन के बिना भी व्यक्ति तथा राष्ट्र भी विकास नहीं कर सकता है, प्रगति नहीं कर सकता है। आर्थिक विपन्नता के कारण वह दूसरों का आवलम्बन लेगा, दूसरों से ऋण लेगा जिसके कारण वह धीरे–धीरे दूसरों के अधीन हो जायेग। इसलिये

नीतिकारों ने कहा ''बुभुक्षितं किं न करोति पापं'' अर्थात् जो भूखा है वह भूख की शांति के लिये दूसरों का दास बनेगा, सेवा करेगा, अथवा चोरी, डकैती करेगा या दीन–हीन होकर भीख मांगेगा। इन कारणों से शिक्षा का एक अंग व्यवसायिक कुशलता की उन्नति करना है परन्तु शिक्षा का अंतिम व सम्पूर्ण लक्ष्य यह नहीं है। जैसे – वर्तमान के कुछ व्यक्तियों का अंतिम एवं सम्पूर्ण लक्ष्य शिक्षा के माध्यम से आर्थिक सम्पादन है। यदि आर्थिक सम्पादन ही शिक्षा का अंतिम लक्ष्य होता तो अनेक अशिक्षित व्यक्ति, पशु–पक्षी तक भी पेट भरने में, घर बनाने में समर्थ होते हैं तो उनमें और शिक्षित में कोई अंतर नहीं होता।

(2) समाज सम्बन्धी उद्देश्य

1. साम्यवादी समाज की स्थापना – (Establishment of sosialistic society)

विषमता ही द्वन्द्व–कलह, झगड़ा, युद्ध, विनाश का कारण है। इसलिये शिक्षा का उद्देश्य समाज से समता की स्थापना करना है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक मानसिक आर्थिक सुरक्षा तथा धन, अधिकार आदि का समवंटन या सम प्रयोग से ही समाज में समता आ सकती है। समाज में कोई किसी का शोषण नहीं करे। परस्पर सौहार्द, सम्मान से वास करें यह इसका फल है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से ही उसका भरण–पोषण एवं संवर्द्धन होता है। इसलिये समाज एवं व्यक्ति का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित एवं गहरा है। अतः कहा है ***''परस्परोपग्रहो जीवानाम्''*** अर्थात् परस्पर उपकार, सहकार करना जीवों का स्वभाव है, धर्म है। समाज में जाति को लेकर, पंथ को लेकर, पूजा–आराधना पद्धति को लेकर विषमता नहीं फैलाना परन्तु समरसता ही रखना साम्यवादी समाज की आधारशिला है। यह तब सम्भव है जब प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, संतोष, परोपकार को अपनायें, इसके लिये चाहिये– **'आत्मभूत सर्व जीवेषु,** अर्थात् सब जीवों में स्वात्मा का परमात्मा का दर्शन करना है। इसके साथ **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'** अर्थात् – 'जो कार्य तुम्हें पसन्द नहीं है, उसे दूसरों के लिये मत करो' का सिद्धान्त अपनाना चाहिये। यह शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य है। यदि ऐसा नहीं होता है तो शिक्षा समाज के लिये भी अभिशाप बन जायेगी। जैसा कि वर्तमान भारत के बड़े–बड़े राजनीतिज्ञ नेता उद्योगपति सेठ आदि शोषण के माध्यम से धन कमाते हैं और करोड़ों की सम्पति

विदेशी बैंक में जमा रखते हैं। ऐसा कार्य तो अशिक्षित व्यक्ति शिक्षित व्यक्ति से कम ही करते हैं या नहीं के बराबर है।

2. सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करना – (Abolution of social evils)

'गतानुगतिक लोकः ने लोके परमार्थिक', अर्थात् लोक गतानुगतिक, अन्धानुकरण करने वाला, परम्परावादी होता है। पारमार्थिक को, सत्य को कम जानता है, कम मानता है, कम सत्यानुकरण करता है। उपर्युक्त न्याय के अनुसार समाज में कुप्रथायें जो एक बार प्रारम्भ हो जाती हैं वे चलती ही रहती हैं उससे भले ही समाज को लाभ न हो हानि ही हानि हो। जिस प्रकार बाल विवाह, दहेज–प्रथा, पर्दाप्रथा, मृत्युभोज, सतीदाह प्रथा, मद्यपान, विवाह में अनावश्यक फिजूल खर्च, दिखावा, बाह्य आडम्बर आदि आदि। ये तो कुछ पहले प्रथायें थीं। परंतु वर्तमान में आधुनिक कुप्रथायें चालू हो गई हैं। जैसे पाश्चात्य व्यक्तियों का अन्धानुकरण करना, उष्ण प्रधान देश होते हुए भी गर्मी में कूलर में बैठकर चाय–कॉफी पीना, होटल में खाना, बाजार में जहाँ / तहाँ चाट–पकौडी खाकर झूँठन फेंकना, निर्धारित कार्यक्रम में देर से पहुँचना, धार्मिक, राजनैतिक या आम सभा में अनुशासन भंग करना, यान–वाहन को जहाँ तहाँ खड़े करना, शारीरिक परिश्रम करने में आलस्य करना, अश्लील गाना सुनना, चित्र देखना तथा टी.वी. देखना, महिलाओं तथा बच्चियों से बलात्कार करना, बड़ों का विनय नहीं करना, अतिथियों का सत्कार नहीं करना, असहाय व्यक्ति की सहायता नहीं करना आदि वर्तमान कुरूतियाँ हैं। इसके साथ–साथ खेल एवं खिलाड़ी, अभिनेत्री–अभिनेता, राजनीतिज्ञ नेता को अत्यधिक महत्व देना। इनके पीछे अनाप–सनाप राष्ट्रीय सम्पत्ति को खर्च करना। इनका फोटो तथा इनसे संबंधित समाचार पत्रों में अधिक छपवाना, उनको लेकर झगड़ा–कलह, हिंसा, विघटन करना भी आधुनिक समाज की बहुत बड़ी व्यापक एवं गहरी कुप्रथा है। उपर्युक्त कुरीतियों को दूर करना भी शिक्षा का उद्देश्य है।

3. नेतृत्व के लिये शिक्षा – (Education for Leadership)

यद्यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते ॥

श्रेष्ठ व्यक्ति जो–जो आचरण करते हैं उन–उन आचरणों का अन्य लोग अनुकरण करते हैं। वे जो प्रमाणित करते हैं अर्थात् सिद्ध करते हैं उसके अनुसार

दूसरे लोग भी अनुवर्तन करते हैं। इसलिये कहा है **"महाजन येन गता सः पंथा"** महाजन जिस राह पर जाते हैं जिसका अनुसरण करते हैं, जिसका आचरण करते हैं उसी रास्तें में अन्य लोग भी गमन करते हैं। इसलिये इन्हें नेता कहते हैं। ये नेता कई प्रकार के होते है जैसे– धार्मिक नेता (साधु, तीर्थंकर, पैगम्बर, तथागत बुद्ध, गुरु आदि) सामाजिकता नेता– (समाज सेवक, समाज सुधारक) राजनैतिक नेता – (M.L.A., M.P., मंत्री, मुख्य मंत्री, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति आदि), न्याय नेता – (वकील, न्यायाधीश, सरपंच आदि) सुरक्षा नेता – (पुलिस अधिकारी, सेना, सेना अधिकारी), पारिवारिक नेता – (माता–पिता, दादा–दादी, बड़ा भाई आदि) व्यापारिक नेता (उद्योगपति, व्यापारिक संगठन के अध्यक्ष आदि), शैक्षणिक नेता– (शिक्षामंत्री, शिक्षा शास्त्री, शिक्षा संगठन के अधिकारी आदि) आदि–आदि। उपरोक्त नेताओं को उन–उन विषयों में नेतृत्व करने में, प्रगति करने में, सुधार करने में न्याय, दक्षता, साहस, अनुशासन, सहनशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा, निष्पक्षता, अवंचकता, सरलता, सहजता, सत्–चरित्र आदि गुण होना अनिवार्य है। इन गुणों को शिक्षा के माध्यम से प्राप्त करना शिक्षा का एक समाज सम्बन्धी उद्देश्य है क्योंकि जिस क्षेत्र में, जिस राष्ट्र में अच्छे नेतृत्व करने वाले नहीं होते हैं तो वह क्षेत्र और राष्ट्र विकास नहीं कर सकता है। मेरा प्रायोगिक अनुभव है कि साधारण व्यक्ति में पहले आगे बढ़कर कार्य करने का साहस नहीं होता है। वे स्वयं बढ़कर कार्य नहीं करते हैं परन्तु दूसरे व्यक्ति आगे बढ़कर कार्य करते हैं तो अन्य व्यक्ति उसे देखकर कार्य करते हैं। साधारण व्यक्ति मानो गाय है तो नेता ग्वाला है। ग्वाला जिस प्रकार निर्देशन करेगा उसी प्रकार गाय आगे बढ़ती है। इसलिये शिक्षा का एक उद्देश्य नेतृत्व करना है।

4. नागरिकता का विकास – (Development of Citizenship)

व्यक्तियों का समूह ही समाज है। जब तक अच्छे नागरिक नहीं होंगे तो अच्छा समाज नहीं होगा। क्योंकि "Democracy is for the people, by the people and of the people" अर्थात् लोकतंत्र जनता के लिये जनता के द्वारा एवं जनता का है। इसलिये सुयोग्य नागरिक बनना याने योग्य राष्ट्र का निर्माण करना है। तुलसीदास ने कहा–

दैहिक दैविक भौतिक तापा रामराज्य माहिं काहु न व्यापा।
सर्व दुःख वर्जित प्रजा सुखारी धरमशील सुंदर नर नारी॥

अर्थात् रामराज्य में किसी भी प्रकार की समस्या नहीं थी। हर प्रकार की खुशहाली थी। प्रजा प्राकृतिक, आर्थिक, शारीरिक कष्ट से दूर सुखमय जीवन जी रही थी क्योंकि उस समय की प्रजा धर्मशील थी। अभी तो पहले से प्रजा के लिये और भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि प्रजातंत्र में नागरिक की भूमिका सर्वेसर्वा है, सर्वोपरि होती है। प्रजा जिसे नेता रूप में, सरकार रूप में चुनती है वही नेता बनता है, जिसे प्रजा पदच्युत करना चाहती है उसे कर देती है। इसलिये शिक्षा के द्वारा नागरिकों में स्वतंत्र चिंतन, भाषण, लेखन, कार्य करने की क्षमता विकास करना चाहिये। यथार्थ शिक्षा के अभाव में भारत के नागरिक नेताओं का अन्धानुकरण करते हैं, चापलूसी करते हैं उन्हें सिर पर चढ़ाकर रखते हैं। इसके कारण महान् भारत गारत/पतित हो रहा है। इसलिये शिक्षा के माध्यम से नागरिक को साहसी, निर्भयी, स्वावलम्बी, निष्पक्षी, कर्तव्यनिष्ठ बनना चाहिये। राजनैतिक दृष्टि से या धार्मिक दृष्टि से नागरिकों में भेद होते हुए भी परस्पर में द्वेष, ईर्ष्या, मतभेद, असहिष्णुता नहीं होना चाहिये। यह नागरिकों के शिक्षा की सबसे बड़ी शिक्षा है।

5. भावात्मक एकता का विकास – (Development of Emotional Integration)

णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयण विवादं सगपरसमएहिं वज्जिज्जो ॥

संसार में नाना प्रकार के जीव हैं। उनकी योग्यतायें भिन्न–भिन्न हैं। उनके कर्म भी भिन्न–भिन्न हैं। यह विभिन्नता प्राकृतिक है। इसलिये इस विभिन्नता को लेकर विषमता नहीं फैलाना चाहिये, वाद–विवाद नहीं करना चाहिये। इसे ही भावात्मक एकता कहते हैं। रविन्द्र नाथ ठाकुर ने भी कहा है –

नाना भाषा, नाना जाति, नाना परिधान ।
समस्तर माझे देखो मिलन महान ॥

विभिन्न भाषा–भाषी, विभिन्न जाति, विभिन्न परिवेष में भी जो परस्पर में सौहार्द, संगठन है वही भावात्मक एकता है। जो संकीर्णता में रहता है वह कूप मण्डूप के समान हो जाता है। ऐसा कूप मण्डूप व्यक्ति यथार्थ से दण्ड का भागी है। रवीन्द्र नाथ ठाकुरने कहा भी है–

शास्ति शास्ति तारि ओरे, जो पारेना शास्ति भये होइत बाहिर।
लंघिया अपना बेड़ा मिथ्यार प्राचिर ॥

6. विश्व मैत्री भावना का विकास – (Developement of universal International understanding)

अयं निजः पर वेत्ति भावना लघुचेतसाम् ।
उदार पुरूषाणां तु वसुधैव स्व कुटुम्बकम् ॥

संकीर्ण विचार वाले व्यक्ति अपना–पराये का निकृष्ट भेदभाव रखता है। परन्तु जो उदात्त उच्च विचार वाले होते हैं उनके लिये समस्त विश्व परिवार की तरह होता है। ऐसी उदात्त उच्च भावना को जागृत करना शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। इसे ही विश्वबन्धुत्त्व, विश्वमैत्री कहते हैं। पहले अर्थात् ऐतिहासिक काल में विश्वमैत्री की भावना की कमी होने के कारण एक शक्तिशाली राष्ट्र या राजा दूसरे राष्ट्र या राजा पर आक्रमण करते थे, लूटपाट, विध्वंस करते थे। यदि आक्रमणकारी राजा अन्य धर्म का हो तो वह जिस राष्ट्र पर आक्रमण करता था उस राज्य की सभ्यता, संस्कृति के साथ महिलाओं, मूर्ति, धर्मायतन, धर्मगुरु, धर्मशास्त्र को भी तहस–नहस करता था। प्रायः ईसा पूर्व 300–200 से लेकर 19–20 वीं शताब्दी तक विश्व मैत्री भावना की कमी के कारण एक राजा दूसरे राजा पर, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर लूटपाट– विध्वंस, आक्रमण में ही लगे रहते थे। उस समय छोटी–छोटी बात को लेकर या कारण–अकारण भी एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को नष्ट करता था या अपने आधीन बनाता था। केवल भारतीय इतिहास के अवलोकन से सिद्ध होता है कि 326 ईसा पूर्व में सिकन्दर ने ऐसे कुकार्य को प्रारम्भ किया और इसी श्रृंखला की कड़ी में 5 वीं शताब्दी में हूण, 8वीं शताब्दी में मुस्लिम अरब सेनापति मोहम्मद बिन कासिम, 986 में तुर्क मुसलमान सुबुक्तगीन गजनवी, 12 वीं सदी के अंत में बख्तियार खिजली, 1137 में गयासुद्दीन गौरी, 1178 में मोहम्मद गौरी, 1223 में चंगेज खां, 1302 में मंगोलों ने, 1398 में तैमूरलंग फिर बाबर, शेरशाह, औरंगजेब, 1749 में नादीर शाह, 17वीं शताब्दी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत पर आक्रमण किया, लूटा, विध्वंस किया और उसे परतंत्र किया। वर्तमान विज्ञान के कारण यातायात एवं दूर संचार व्यवस्था से राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय दूरियाँ

घटती जा रही है। वर्तमान पृथ्वी एक संयुक्त परिवार रूप में परिवर्तित हो रही है। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से स्वतन्त्र होकर न जी सक रहा है न विकास कर सकता है। अभी अन्तर्राष्ट्रीय विषमता को परस्पर की चर्चा से मिटाने का पुरुषार्थ कर रहे हैं। 1996 तो अन्तराष्ट्रीय सौहार्द वर्ष के रूप में मना रहे हैं। यह सब व्यापक शिक्षा, उदारता एवं वैज्ञानिक दृष्टि का प्रतिफल है।

7. शिक्षा का सार्वभौम विकास

चित्तेन जनितं दोषं चित्तनैव परिशुद्ध्यते।
जलेन जनितं दोषं जलनैव परिशुद्ध्यते॥

अर्थात् भाव में जो दोष उत्पन्न होते हैं उसे भाव से ही परिशुद्ध किया जा सकता है किन्तु भौतिक पानी, साबुनादि से नहीं, अथवा जो दोष, (कीचड़ादि) जल से उत्पन्न होता है उसे जल से शुद्ध किया जाता है। उसी प्रकार दोषों को दूर करने वाली, गुणों का विकास करने वाली शिक्षा में जो दोष हैं उसकी शुद्धता शिक्षा ही कर सकती है। जिस प्रकार हीरा की कटाई, घिसाई हीरा से ही होती है उसी प्रकार शिक्षा–सम्बन्धी दोषों की परिमार्जना एवं शिक्षा का सार्वभौम–विकास शिक्षा ही कर सकती है। भोजन, जल, वायु बिना जीवन जीना कष्ट साध्य है परन्तु जब ये ही तत्व विषाक्त हो जाते हैं तब भी उसके सेवन से जीवन जीना भी कष्ट साध्य है। उसी प्रकार शिक्षा से विकास तो होता है परन्तु कु–शिक्षा या शिक्षा के दुरुपयोग से भी विनाश होना सम्भव है। इसलिये शिक्षा को प्राप्त करके राक्षस, अहंकारी, शोषणकारी, आलसी, अनुशासनहीन, धूर्त भ्रष्टाचारी नहीं बनना तथा शिक्षा से सर्वांगीण विकास करना एवं सार्वभौम शिक्षा प्राप्त करना ही शिक्षा का सार्वभौम विकास है।

प्राचीन काल में भी शिक्षा में कुछ कमियाँ थीं और वर्तमान में भी कुछ कमियाँ हैं। प्राचीन साहित्य के आलोड़न से यह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में शिक्षा सबके लिए सुलभ नहीं थी। कुछ शिक्षक विद्यार्थियों को शारीरिक अतिरिक्त दण्ड देते थे। वर्तमान शिक्षा में भी अनेक कमियाँ हैं। यथा–प्रथम कक्षा से लेकर 10वीं कक्षा तक सबके लिये सब विषय अनिवार्य रूप में पढ़ाना, योग्यता को देखे बिना सबको सब विषय पढ़ाना शिक्षा को थोपना है। इससे बच्चों की स्व–स्व योग्यता, प्रतिभा उभर कर नहीं आती है। अनेक शिक्षायें आधार शून्य असत्य

कपोला कल्पित भी हैं। जैसे – भारत में पहले आर्य नहीं थे, विदेश से आर्य भारत में आये। परन्तु भारत प्राचीनकाल से ही आर्यों का देश रहा है। इसलिये इसका प्राचीन नाम "आर्यावर्त" था। इसका विस्तार वर्णन मैंने मेरी **"भारतीय आर्य"** पुस्तक में किया है। इस देश का नाम शकुन्तला और दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर भारत पड़ा यह भी गलत है क्योंकि ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर भारत पड़ा है। इसका भी विस्तृत विवरण **'भरत से भारत'**में मैंने मेरी पुस्तक में किया है। महावीर भगवान् जैन धर्म के संस्थापक है यह भी बड़ी गलती है क्योंकि महावीर भगवान् जैन धर्म के अन्तिम प्रचारक थे। इसके पहले भी इस युग में और भी 23 प्रचारक हो चुके हैं। अकबर को महान मानना यह ऐतिहासिक गलती है क्योंकि अकबर ने कूटनीति से भारतीय राजाओं को दास बनाया, मीना बाजार में भारतीय स्त्रियों के शील को लूटता था, राणा प्रताप जैसे महान् स्वतंत्रता प्रेमी को भी बहुत यातनायें दीं। मैकाल की शिक्षा पद्धति (पाश्चात्य) के कारण लोग भारतीय स्वस्थ, पवित्र, समृद्ध सभ्यता–संस्कृति–शिक्षा को भी हीन दृष्टि से देखने लगे।

साक्षरता को ही शिक्षित मान लेना, कक्षा उन्नति को ही शिक्षा का विकास मानना, उपाधियों को योग्यता एवं क्षमता मान लेना, परीक्षा उत्तीर्ण को ही शिक्षा का फल मानना, साक्षर व्यक्ति को ज्ञानी महान् मान लेना, विद्यालय में ही शिक्षा मानना पुस्तक में ही अनुभव एवं विद्या मान लेना, आपाधापी जीवन को ही पुरुषार्थमय जीवन मानना, नौकरी प्राप्त करने को शिक्षा का लक्ष्य मानना, आदि शिक्षा की अनेक कमियाँ हैं। यदि ऐसा है तो महान् गणितज्ञ रामानुजन, महात्मा गांधी, न्यूटन, ऐडिसन आदि विद्यालय में अधिक योग्य विद्यार्थी नहीं थे तो भी वे अपने–अपने कार्य क्षेत्र में उच्च स्थान को प्राप्त किये थे। महान् क्रान्तिकारी धर्मान्धता को दूर करने वाले कबीर दास को तो अक्षर का ज्ञान भी नहीं था तथापि उनके साहित्य उच्चतम विद्यालय में पढ़ते हैं और अधिकांशतः विद्यार्थी उनके विषय की गहराई को समझ भी नहीं पाते हैं। जैन धर्म के तो कोई भी तीर्थंकर दिगम्बर जैन सिद्धान्त के अनुसार विद्यालय में पढ़ते ही नहीं हैं परन्तु उन्होंने अपने ज्ञान में अणु सिद्धान्त, सापेक्ष सिद्धान्त, अहिंसा, सत्य, जीव विज्ञान का वर्णन किया। उनमें से अधिकांश विषय शोध से भी ऊपर हैं। केवल आक्षरिक शिक्षा और विद्यालय शिक्षा को ही सब कुछ मानना कूप–मण्डुपता से कुछ अधिक

नहीं है। आधुनिक शिक्षा की और भी कमी है वह है आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षा की कमी। जिस प्रकार पेट भर भोजन करना भौतिक उन्नति है तो प्राण वायु को पाना आध्यात्मिक नैतिक उन्नति को प्राप्त करना। भौतिक उन्नति को अधिक महत्व देना मानों चारित्रक, आध्यात्मिक, नैतिक, दया, करूणा की अवहेलना करना है। विद्यार्थी अर्थहीन तोते के जैसे विषय को रटते हैं, परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए नैतिक, अनैतिक उपायों का अवलम्बन लेते हैं। अनुशासन हीनता, उच्छृंखलता, तोड़फोड़ उद्दण्डता, बलात्कार नशाखोरी, कामचोरी वर्तमान विद्यार्थियों की पर्याय ही बन गये हैं। कारण अकारण से दादागिरी दिखाने, आतंक फैलाने के लिये, स्कूल की छुट्टी के लिए स्ट्राईक करते हैं। विद्यालय एवं राष्ट्रीय सम्पदा भी तोड़ फोड़ करते हैं। विद्यार्थी राष्ट्र के भावी कर्णधार हैं तो शिक्षक उनके निर्माता तथा विद्यालय निर्माण केन्द्र हैं। परन्तु, आज विद्यार्थी राष्ट्र के लिए, संस्कृति के लिए शालीनता एवं अनुशासन के लिए अभिशाप बन रहे हैं। शिक्षक उपर्युक्त कारण के निमित्त बन रहे हैं और विद्यालय और शिक्षा केन्द्र, उपरोक्त कार्यों के केन्द्र बन रहे हैं। विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में बलात्कार के काण्ड अधिक घट रहे हैं। विद्यार्थी जो ब्रह्मचर्य के पयार्य थे आज वे ही भ्रष्टाचार एवं बलात्कार के पर्याय बन रहे हैं। शिक्षक जो पहले भगवान् के समकक्ष थे आज वे शोषणकारी, निकम्मे, अल्पज्ञ, असम्मानीय स्थान प्राप्त हो रहे हैं। इसलिये आज हर कोने से आवाज आ रही है कि शिक्षा में परिवर्तन होना चाहिये। इवान इलिज ने तो समाज को निर्विद्यालयीकरण (Deschooling) कर देना चाहिये, यह आंदोलन ही दिया था। उन्होंने विद्यालय की शिक्षा का घोर विरोध किया था। महात्मा गांधी, विनोबा भावे, मॉन्टेसरी, रविन्द्रनाथ टैगोर, डॉ. राधाकृष्णन् आदि ने भी आधुनिक शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन का आव्हान किया था। केवल उन्होंने आव्हान नहीं किया बल्कि अपने-अपने क्षेत्र में कार्यान्वित भी किया।

भारतीय शिक्षा-प्रणाली

भारत प्राग् ऐतिहासिक काल से ही नहीं परन्तु प्राग् वैदिग काल से भी प्राचीन काल से अत्यन्त सभ्य, सुसंस्कृत, सुशिक्षित देश रहा है। प्राचीन काल में इस देश में गुरूकुल शिक्षा प्रणाली के द्वारा बहुमुखीय, बहुउद्देशीय तथा सर्वोदय शिक्षा प्रणाली थी। अधिकांशतः शिक्षक सन्यासी, त्यागी, आध्यात्मिकवादी, धर्मनिष्ठ,

कर्त्तव्यपालक, निर्लोभी होते थे। इन्हें गुरू, ऋषि, मुनि, उपाध्याय, आचार्य, योगी, पुरोहित आदि विभिन्न उपाधियों से सम्बोधित करते थे। कुछ सर्वसन्यासी साधु तो अनियत बिहार करके देश-विदेश में, नगर-नगर में, डगर-डगर में और जन-जन में शिक्षा का प्रचार करते थे। कुछ जन-कोलाहल से दूर नदी के किनारे में, जंगल में आश्रम बनाकर अध्ययन/अध्यापन करवाते थे। यह अध्ययन केन्द्र स्थिर होता था। वहाँ जाकर राजा-रंक एक साथ भेदभाव से परे स्वावलम्बी होकर विद्याध्ययन करते थे। जैसे- सांदिपनी के गुरूकुल में राजकुमार नारायण कृष्ण एवं गरीब ब्राह्मण सुदामा भी पढ़ते थे। राजकुमार से लेकर रंक कुमार तक भिक्षा से जो प्राप्त करते थे उससे भरण-पोषण करते थे। आश्रम के कार्य, वृक्ष सिंचन, गौ पालन, दुग्ध दोहन, जंगल से लकड़ी लाना, गुरू सेवा, सफाई कार्य स्वयं करते थे। भिक्षा से भोजन करने से अहंकार का परिमार्जन एवं रूपान्तर करण होता था। सब एक साथ रहने से एवं सबकी समान व्यवस्था होने से समरसता, सामाजिकता, संगठन की प्रायोगिक शिक्षा मिलती थी। आश्रम के हर कार्य विद्यार्थी द्वारा करवाने से स्वावलम्बन की शिक्षा मिलती थी और वे आगे जाकर जीवन के प्रायोगिक क्षेत्र में विफल नहीं होते थे।

प्राचीन काल में शिक्षा का मुख्य केन्द्र या उद्देश्य धर्म या आध्यात्मिक विकास था। इसके इर्द-गिर्द अन्य सब शिक्षाएँ होती थीं। धर्म के साथ-साथ उन्हें व्याकरण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिल्प, संगीत, नृत्य, रथचालन, पशुपालन आदि की शिक्षा भी दी जाती थी। इसलिये विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास होता था और वे सब क्षेत्र में दक्ष होते थे। एक ही गुरू अनेक शिक्षायें देने के लिये समर्थ होते थे। प्राचीन साहित्य से यह भी सिद्ध होता है कि राजकुमारों आदि की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था अधिक होती थी। वे युद्धविद्या में निष्णात होने के कारण देश की सुरक्षा करने में समर्थ होते थे। राजनीति, दण्डनीति में दक्ष होने के कारण राज्य संचालन भी करते थे और न्यायालय का भी उत्तरदायित्व निभाते थे। एक ही राजा, सैनिक, सेनापति, मंत्री, न्यायाधीश, दण्डनायक आदि विभिन्न महत्वपूर्ण पदधारियों के कार्य करने में समर्थ होते थे। इसलिये ऐसे योग्य राजा जब राज्य शासन करते थे तब राज्य में सुख-समृद्धि एवं खुशहाली होती थी। वर्तमान में सर्वांगीण शिक्षा एक व्यक्ति में नहीं होने के कारण एक व्यक्ति पूर्वकाल में जो भूमिका निभाता था उस भूमिका को नहीं निभा पाता है। इसके कारण कोई तो न्याय देता है,

अन्य कोई उसे दण्ड देता है तो अन्य कोई शासन करता है। इसलिये राष्ट्र की व्यवस्था, सुरक्षा एवं समृद्धि समुचित रूप से नहीं हो पाती है। व्यावहारिक जीवन में भी वर्तमान शिक्षा पूर्ण खरी नहीं उतरती है। क्योंकि वर्तमान शिक्षा में जीवनोपयोगी प्रायोगिक शिक्षा नहीं दी जाती है। कम से कम दैनिक क्रिया, भोजन, परस्पर व्यवहार, स्वास्थ्य, पर्यावरण, सफाई, सांस्कृतिक, भौगोलिक परिस्थिति, दैनिक जीवन में आनेवाला गणित, सद्व्यवहार, परस्पर का वार्तालाप, नैतिक–अनैतिकता के परिज्ञान की शिक्षा अवश्य देना चाहिये। इसके अतिरिक्त जिसमें अधिक योग्यता है, अधिक रूचि है वह शोध–बोध करे इसमें कोई दोष नहीं है परन्तु गुण ही है। किन्तु उपर्युक्त सामान्य ज्ञान के बिना केवल एक विषय के विशेष ज्ञान से अधिक लाभ नहीं होता है। जिस प्रकार शरीर का समुचित, सुव्यवस्थित विकास तो लाभप्रद है परन्तु केवल एक अंग यदि अन्य अंग से अत्यधिक फूल जायेगा तो वह स्वास्थ्य का परिचायक नहीं है परन्तु वह अस्वस्थता का परिचायक है, रोग का परिचायक है। जैसे – पेट के अधिक बढ़ने से, चर्बी के बढ़ने पर एक पैर का अधिक बढ़ने से क्रम से जलोदर, मोटापा, हाथी पाँव(फेलेरिया) रोग होता है। इसलिये शिक्षा उपरोक्त रोग के समान न बने इस बात पर ध्यान देना चाहिये।

पहले की परीक्षा–प्रणाली वर्तमान की परीक्षा–प्रणाली से अलग थी। प्राचीन काल में जीवनोपयोगी प्रायोगिक–परीक्षा को महत्व दिया जाता था। विद्यार्थी के चरित्र, कर्त्तव्यनिष्ठा, गुरू–भक्ति, गुरू–सेवा, अधिगम विषयों की परीक्षा ज्ञात, अज्ञात, परोक्ष, प्रत्यक्ष रूप से होती थी। इससे विद्यार्थी की सर्वांगीण परीक्षा होती थी। वर्तमान विद्यार्थी की केवल साक्षरता तथा बौद्धिकता की परीक्षा होती है। इसलिये विद्यार्थी का मूल्यांकन यथार्थ से नहीं हो पाता है, जिसके कारण वह प्रायोगिक क्षेत्र में सफल नहीं हो पाता है। युद्ध–विद्या की परीक्षा प्रदर्शनी रूप से तथा आखाड़े में भी होती थी। विद्यार्थी अनेक गुरू से भी विद्याध्ययन करता था। एक गुरू या गुरूकुल (विद्यालय) की विद्या पूर्ण होने के बाद अन्य गुरू या गुरूकुल में जाकर विद्याध्ययन करता था।

प्राचीन काल में शिक्षा प्रचार–प्रसार तथा शिक्षा–दीक्षा उत्तम होते हुये भी मध्यकाल में कुछ सन्तोषजनक नहीं थी। विषय–वस्तु को रटने में, तथा विद्याको वाद–विवाद में अधिक प्रयोग में लाते थे। प्रायोगिक जीवन में विद्या को नहीं

लाने के कारण समाज में जड़ता, विषमता, निष्कर्मण्यता, विघटन, संकीर्णता, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता आदि कुरीतियाँ फैली हुई थीं। इसके कारण प्रायः 1 या 1–1/2 हजारों वर्ष से विदेशी आक्रमणकारी भारत पर आक्रमण करते रहे, लूटे, विध्वंस किया और परतंत्र किया। परतंत्र के समय में तो भारत की शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता आदि की दशा और भी दयनीय हो गई। इस अवधि में परदा–प्रथा, बाल–विवाह, सती–दाह, स्त्री–शिक्षा का निषेध आदि कुप्रथायें जन्मीं और फूली–फलीं। भारत इस समय में केवल राजनैतिक दृष्टि से परतंत्र नहीं हुआ था परन्तु सांस्कृतिक, सभ्यता, शिक्षा, धर्म, परम्परा, बौद्धिक आर्थिक आदि दृष्टि से भी परतंत्र हो गया था। यह काल भारत के लिए अन्धकारा छन्नकाल / महाकाल / मृत्युकाल / विनाश का काल था। परन्तु प्रकृति का नियम है पतन के बाद उत्थान। उत्थान के लिये अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद् उठ खड़े हुये। आत्म–स्वाभिमान जगा, प्राचीन संस्कृति का पुनरावर्तन हुआ, प्राचीन शिक्षा आधुनिक आलोक से जगमगा उठी। यह घटना उस प्रकार घटी जिस प्रकार प्रज्ज्वलित–अंगार स्व–राख से ढक जाता है परन्तु लाठी के प्रहार से राख निकल जाने के बाद पुनः प्रज्ज्वलित हो जाता है। भारतीय तेजस्विता जो स्व–दोष के कारण निस्तेज हो गई थी विदेशी के प्रहार से प्रखर हो उठी। अग्नि–प्रज्ज्वलन के लिये वायु की जिस प्रकार भूमिका होती है वैसी ही कुछ भूमिका विदेशी शिक्षा–सभ्यता की भी हुई। भारत की स्वतंत्रता को चाहने वाले कुछ तेजस्वी व्यक्ति जिन्होंने विदेशी–शिक्षा प्राप्त की उन्हें ज्ञात हुआ कि हमारी परम्परा, सुसंस्कृति, सभ्यता, शिक्षा कितनी प्राचीन एवं सम्मुन्नत है। तब उन्हें भारत का विश्व स्वरूप, सच्चे–स्वरूप का ज्ञान हुआ। जैसे दर्पण के माध्यम से स्वमुख का अवलोकन होता है। उन्होंने भारतीय आध्यात्मिक बल पर संग्राम करके देश को स्वतंत्र कराया। परन्तु पुनः वर्तमान स्वाधीनता रूपी प्रज्ज्वलित–अंगार के ऊपर भ्रष्टाचार, आलस्य, शोषण, अन्यायादि रूपी राख लद गई है। उसे पुनः दूर करने का उत्तरदायित्व शिक्षा के ऊपर आ पड़ा है। अभी देखना है शिक्षार्थी, शिक्षक एवं शिक्षा अपना उत्तरदायित्व कितना शीघ्र पूर्ण करते हैं।

शिक्षा वह है जो मानव को सही अर्थों में मानवता के पाठ पढ़ाये।

14-विद्यार्थियों के योग्य आहार-विहार-आसनादि

विद्यार्थियों के लिये जिस प्रकार अच्छी बुद्धि-लब्धि, योग्य शिक्षक, योग्य वातावरणादि चाहिये उसी प्रकार योग्य आहार (भोजन,पानी) विहार (व्यवस्थित कार्यक्रम) तथा आसन (योगासन, ध्यान, व्यायाम) आदि की आवश्यकता है।

1. योग्य आहार –

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वभावबोधस्य योगी भवति दुःखहा। 17 (गीता)

जिसका आहार, विहार नियमित/व्यवस्थित/योग्य है, कर्मों का आचरण सुव्यवस्थित है, सोना, जागना परिमित है उसको वह योग्य/ध्यान दुःख को नाश करने वाला अर्थात् सुख को देने वाला होता है। इसलिये कहावत है –

जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन ।
जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी ।
As you eat so you think,
And as you think so you become.

जिस प्रकार का हम भोजन करते हैं उसी प्रकार का हम विचार करते हैं और जिस प्रकार का हम विचार करते हैं उसी प्रकार के हम बन जाते हैं। सात्त्विक (शाकाहार, दुग्धाहार, फलाहार) भोजन से सात्त्विक (सरल, शान्त, बुद्धिमान, विचारशील) राजसिक (चरपरा, मसालेदार, जायकेदार, नमकीन आदि) भोजन से राजसिक (विलासप्रिय, आडम्बरप्रिय, क्रोधालु, असहिष्णु) एवं तामसिक (मद्य,मांस, अण्डा, तम्बाखू, वासी भोजन) भोजन से तामसिक (मन्द बुद्धि, खोटी बुद्धि, क्रूर, आतंककारी, डाकू) बन जाते हैं।क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार आहार का स्थूल भाग मल रूप में परिणत होता है, मध्यमांश से धातुओं का निर्माण होता है तथा सूक्ष्म अंश से मन का पोषण होता है। इसलिये व्यक्तित्व, स्वभाव निर्माण में भोजन का भी योगदान है।

मद्य, मांस, मछली, अण्डा, हिरोइन, तम्बाकू आदि तामसिक आहार होने के कारण, इसके सेवन से मानव तामसिक भावों से आक्रान्त हो जाता है जिससे वह मानव न होकर दानव हो जाता है। नरराक्षस होकर वह मानवता के विपरीत कार्य यथा-कलह, अन्याय, अत्याचार, हिंसा, युद्ध, आतंक, गुण्डा-गर्दी, भ्रष्टाचार

करता है। कहा भी है :

Animal food for those,
Who will fight and die.
And vegetable food for those,
Who will live and think.

मांसाहार (पशु आहार, तामसिकाहार) उन्हीं के लिए हैं, जो लड़ेंगे एवं मरेंगे। शाकाहार सात्त्विकाहार उन्हीं के लिए है जो सुखमय जीवन जियेंगे एवं विचार करेंगे।

नीतिकारों ने कहा है :

भक्ष्याभक्ष्य जाने नहीं, मानव बिना विवेक ।
सींग, पूंछ बिन बैल है, भगिनी भामिनी एक।
हिताहित जाने नहिं, मानव बिना विवेक ।
सींग पूंछ बिन बैल है, भगिनी भामिनी एक।

जिस मानव को हिताहित एवं भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक नहीं है, वह मानव सींग और पूंछ के बिना पशु के समान है क्योंकि जैसे पशु जिस माता से उत्पन्न होता है वह बड़ा होने के बाद उस माता से भी सम्भोग करता है। उसकी दृष्टि में माता एवं पत्नी में कोई भेद नहीं है; उसी प्रकार अविवेकी मनुष्य भी करणीय-अकरणीय, ग्रहणीय-अग्रहणीय, भक्ष्य-अभक्ष्य में किसी प्रकार का भेद नहीं रखता है।

मांसभक्षैः सुरापैश्च मूर्खैः शास्त्र विवर्जितेः।
पशुभिः पुरूषाकारैर्भाराक्रान्तास्ति मेदिनी ॥
(चाणक्य नीति)

मांस खाने वाले, मद्यपान करने वाले, मूर्ख पुरुष किसी आकृति वाले वस्तुतः पशुओं के भार से पृथ्वी दब जाती है।

व्यसन से आसक्त जीव भी सम्पूर्ण मानवीय गुणों को खो देता है। कहा भी है :

व्यसन चित्त चित्तानां गुणाकोऽपि न नश्यति ।
न वैदुष्यं, न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्॥

व्यसन में आसक्त चित्त वाले मनुष्य के विद्वत्ता, मनुष्यता, अभिजात्य (उच्चकुलीन आचार विचार) सत्य वचन आदि सम्पूर्ण मानवीय गुण नष्ट हो जाते हैं।

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः ।
चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित्॥

(आ. शासन 35)

नेत्रहीन रूपी अन्धे से भी महान् अन्धा वह है जिसके अंतरंग के विवेक रूपी चक्षु, विषय वासना से नष्ट हो गए हैं। चक्षु से जो अन्धा है वह भौतिक वस्तुओं को चक्षु से नहीं देख पाता है परन्तु विवेक रूपी चक्षु से वह देख सकता है, किन्तु विषयान्ध कुछ भी नहीं देख सकता है। इसलिए पूर्व जैनाचार्यों के साथ-साथ प्रायः प्रत्येक धर्म के प्रबुद्ध मनुष्यों ने सम्पूर्ण पतनों के कारण स्वरूप व्यसनों का त्याग करना अनिवार्य बताया है। पुरूषार्थसिद्धयुपाय में अमृतचन्द सूरी ने प्राथमिक धर्मात्माओं के लिए अनिवार्य रूप से मद्य मांसादि का त्याग बताया है। यथा:

मद्यं मांसं क्षौद्रं पंचोदुंबर फलानि यत्नेन ।
हिंसाव्युपरतकामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव ॥ (61)

हिंसा को छोड़ने की इच्छा करनेवाले पुरूषों को सबसे पहले प्रयत्नपूर्वक अथवा सावधानी के साथ मदिरा,मांस, मधु, पाँच उदुम्बर फल छोड़ देना चाहिये।

वसुनंदी आचार्य भी इस सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से निम्न प्रकार से उद्घोष करते हैं :

पंचुदंबर सहियाइं परिहरेइ इय जो सत्त विसणाइं ।
सम्मत्त विसुद्धमई सो दंसण सावयो भणिओ ॥ (205)

जो सम्यग्दर्शन से विशुद्ध बुद्धि जीव इन पाँच उदुम्बर सहित सातों व्यसनों का परित्याग करता है, वह प्रथम प्रतिमाधारी श्रावक कहा गया है।

बुरी आदतें, या दुःख के कारण को व्यसन कहने से केवल व्यसन सात नहीं होते हैं, अपितु अनेक होते हैं। सामान्य से व्यसन को सात भागों में विभक्त किया गया है। यथा – (1) शराब पीना (2) मांस खाना (3) वेश्यागमन (4) परस्त्रीगमन (5) शिकार खेलना (6) चोरी करना (7) जुआ खेलना है।

अष्टावनिष्ट दुस्तर दुरितायतनान्यमुनि परिवर्ज्य।
जिनधर्मदेशनायाः भवंति पात्राणि शुद्धधियः ॥ (74)

(पुरूषार्थ सिद्धयुपाय)

आठ अनिष्ट कठिनता से छूटने वाले और पापों की खान स्वरूप वस्तुओं को छोड़कर ही शुद्ध बुद्धि वाले पुरूष जिन धर्म के उपदेश ग्रहण करने के पात्र होते हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त से यह सिद्ध होता है कि जब तक मानव विवेक पूर्वक दृढ़ संकल्प से अभक्ष भक्षण एवं अनैतिक आचरण से दूर नहीं हो जाता है तब तक वह प्राथमिक श्रेणी का भी धर्मात्मा नहीं बन सकता है। इतना ही नहीं, वह धर्म श्रवण के लिए योग्य पात्र भी नहीं बन सकता है।

महाभारत में वेदव्यास ने भी कहा है :

मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिका ।
जन्मप्रभृति मद्यं च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ॥ (70)

जो धर्मात्मा पुरूष जन्म से ही इस जगत् में शहद, मद्य और मांस का सदा के लिए परित्याग कर देते हैं वे सब के सब मुनि माने गये हैं।

मदावस्था में धर्माधर्मादि का अज्ञान

धर्माधर्मे सुखं दुःखमर्थानर्थ हिताहितम् ।
यदासक्तो न जानाति कथं तच्छलियेद् बुधः॥(8)

अ.ह. आयुर्वेद

जिस मद में फँसा हुआ मनुष्य धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, अर्थ-अनर्थ, हित और अहित को भी नहीं जानता, उस मद का बुद्धिमान कैसे अभ्यास (सदा सेवन) करे ?

मद्यपान से मोहादि

मद्ये मोहो भयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रिताः।
सोन्मादमदमूर्च्छायाः सापस्मारापतानकाः । (9)

यत्रेकः स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधु यत् ।

मद में मोह, भय, शोक, क्रोध, मृत्यु, उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार, अपतानाक ये स्थित हैं। जिस वस्तु में अकेला स्मृति विभ्रंश रहता है, उसी में सब कुछ बुरा ही है। (चूँकि स्मृति के नष्ट होने से सब नष्ट हो जाता है तथा गीता में स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति) और जहाँ इतनी बुराइयाँ हो उसकी कथा ही क्या है ?

मद्य से उत्पन्न रोग

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रमोहो हृदयव्यथा ।
विड् भेदः प्रततं तृष्णाः सौम्याग्नेयो ज्वरोऽरूचि॥ (15)
शिरः पार्श्वास्थिरूकम्पो मर्मभेदस्त्रिकग्रहः ।
उरोविबन्धास्तिमिरं कासः श्वासः प्रजागरः । (16)
स्वेदोऽतिमान्नं विष्टम्भः श्वयथुश्चित्तविभ्रमः ।
प्रलापश्छर्दिरूत्क्लेशो भ्रमो दुःस्वप्नदर्शनम् । (17)

इसमें प्रमोह, हृदय में पीड़ा, अतिसार, निरन्तर प्यास, प्रथम सौम्य ज्वर फिर आग्नेय ज्वर, अरूचि, सिर, पार्श्व और अस्थियों में दर्द, कम्पन, मर्म में पीड़ा, त्रिकग्रह, छाती में रूकावट, तिमिर, कास, श्वास, नींद न आना, स्वेद की अधिकता, विष्टम्भ, शोथ, चित्तविभ्रम, प्रलाप, वमन, जी मिचलाना, चक्कर आना और बुरे स्वप्नों का दिखाई देना ये सामान्य लक्षण हैं।

केवल मद्यपान इस व्यसन में गर्भित नहीं है, इसके साथ-साथ विदेशी ब्रांडी, व्हिस्की, रम, ताड़ी, गांजा, भांग, चाय, कॉफी, चरस, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, गुटखा, पान-पराग आदि-आदि भी मद्य व्यसन के अन्तर्गत होते हैं। उपरोक्त नशीले पदार्थों में अनेक विषाक्त रसायन पदार्थ रहते हैं, जिससे टी.बी., कैंसर, रक्तचाप, दमा, खाँसी, कब्जियत, बदहजमी, सिरदर्द, अल्सर आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। बीड़ी-सिगरेट-जर्दा-तम्बाकू में निकोटिन विष होता है। चाय में कैफीन विष रहता है, मद्य में एल्कोहल विष रहता है। ये विष शरीर को बहुत क्षति पहुँचाते हैं और उनसे केंसर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

उपर्युक्त आहार विहार के त्याग के साथ-साथ विद्यार्थियों को वायुकारक वस्तु यथा-बेसन, बेसन से बनी वस्तु, चना, उड़द की दाल, ग्वार फली (गंवारफली - मनुष्य को जो गंवार-मूर्ख बनाये) आदि का सेवन नहीं करना चाहिये। इससे शरीर में वायु बनती है और शरीर में वायु फैल जाती है जिसे ज्ञानवाही तांत्रिकातंत्री भी प्रभावित होती है। इससे मन्द बुद्धि होती है। मिरची, गरम मसाले, चाय, काफी का अधिक सेवन नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे शरीर एवं मस्तिष्क गरम/उत्तेजित होते जाते हैं। अधिक खट्टा दही, मट्ठा (मही) इमली, अधिक खट्टा फल नहीं खाना चाहिये। क्योंकि इससे ज्ञानवाही तंत्रिकातंत्र कड़क एवं

संकोचित हो जाता है जिससे संवेदनशीलता घट जाती है। "सद्यबुद्धिहरा तुण्डी सद्यबुद्धि करा वचः" अर्थात् तुण्डी (तुन्दरू, टिण्डुरी) बुद्धि को हरती है एवं वच बुद्धि को करता है। तुन्दरू के सेवन से मूत्र निष्काषन भी ठीक से नहीं होता है, मूत्र रुक जाता है। शायद तन्दरू में जो कषायला-चिपचिपा रस है वह रस मल विसर्जन में बाधा डालता हो। शरीर का मल विसर्जन सही रूप से नहीं होने से शरीर की स्वच्छता नहीं होती है। इन्द्रियों के द्वार में रूकावट उत्पन्न हो जाती है, जिससे शरीर एवं इन्द्रियों की सक्रियता कम हो जाती है और शरीर एवं मन का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। ठूँस-ठूँस कर पेट भर के भी भोजन नहीं करना चाहिये, इससे प्रमाद, आलस्य, निद्रा अधिक आती है ज़िससे अध्ययन में बाधा पहुँचती है। अधिक मात्रा में एवं अधिक बार भोजन करने से अधिक समय तो लगता ही है, साथ ही साथ उसे पाचन करने के लिये शारीरिक शक्ति की आवश्यकता अधिक होती है। रक्त संचालन भी पाचनतंत्र की ओर अधिक होता है जिससे मस्तिष्क को अधिक ऊर्जा एवं रक्त प्राप्त नहीं होता है, इसके कारण मस्तिष्क दुर्बल हो जाता है। तेल से तली हुई चीज भी कम सेवन करना चाहिये।

विद्यार्थियों को न्याय से उपार्जित सात्त्विक, शुद्ध, ताजा, मर्यादित, पवित्र, स्वच्छ भोजन करना चाहिये। पौष्टिक भोजन तो करना चाहिये परन्तु अधिक मात्रा में तथा अधिक बार नहीं करना चाहिये। चावल (भात), गेहूँ, दाल (मूंग), हरी सब्जी (परवल, ककड़ी, टींडसी, कच्चा केला, लौकी), फल (पक्का केला, पक्का आम, कच्ची ककड़ी, सेव, अंगूर, चीकू, दाड़िम, मौसमी) गाय, बकरी का ताजा शुद्ध दूध, घी, कच्चा नारियल का पानी, कच्चे नारियल के गूदे से प्राप्त दूध, बादाम, बादाम का दूध, बादाम का हलुआ, मुनक्का, द्राक्ष से युक्त ओटा हुआ दूध पर्याप्त मात्रा में योग्य पद्धति से सेवन करना चाहिये। औषध रूप से बच, शंखपुष्पी, ब्राह्मी सेवन करना चाहिये। सिर की मालिश में गाय का घी (कांस के बर्तन में मथा हुआ अति उत्तम) बादाम का तेल, तिल का तेल, ब्राह्मी आँवला तेल, बनफूल तेल, सिर कल्याण, हिमताज तेल प्रयोग में लाना चाहिये। विशेष ज्ञानके लिये मेरी **'धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान' पुष्प I, II,'आदर्श विचार, विहार आहार' 'व्यसन का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण'** आदि पुस्तकें अवलोकनीय हैं।

शुद्धं सुमधुरं स्निग्धं उदरार्द्ध विवर्जितम् ।
भुज्यते सुरसं प्रीत्या मिताहारमिमं विदुः ॥(21)॥

स्वच्छ मीठे चिकने आधे पेट अर्थात् भर पेट नहीं ऐसे भोजन को योगी सुन्दर रसयुक्त प्रीति से भोजन करें इसको मित (युक्त) आहार कहा है।

लघुपाक प्रियं स्निग्धं यथाधातुप्रपोषणम् ।
मनोभिलषितं योज्यं योगी भोजनमाचरेत् ॥(28)॥

जल्दी पकने वाली तथा मन को प्रिय चिकनी और धातु को बढ़ाने वाली जो मन से अच्छे लगें उनको योगी भोजन में लेवे।

काठिन्यं दुरितं पूतिमुष्णं पर्य्युषितं तथा।
अतिशीतं चातिचोग्रं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत् ॥(29)॥

कठिन चीज, बुरी, पाप पैदा करने वाली चीज, सड़ी बासी तथा बहुत ठंड़ा–बहुत गरम ऐसा भोजन योगी को नहीं सेवन करना चाहिये।

॥ योग्य–विहार (चर्या)

भगवान् महावीर ने गौतम गणधर को सम्बोधित करते हुये कहा था– **'हे! गोयम पमायेण एक समय न मुक्कउ'** अर्थात् हे गौतम! एक समय भी प्रमाद में नहीं जाना चाहिये। क्योंकि **'पमाय एव मरणं तहा अपमाय एव अमय'** अर्थात् प्रमाद ही मृत्यु/विनाश/अवनति का कारण है तथा अप्रमाद ही अमृत/विकास/उन्नति का कारण है। क्योंकि Time is life, if you kill the time, the time kill to you. अर्थात् समय ही जीवन है। यदि आप समय का नाश/दुरुपयोग करते हो तो समय आप का विनाश कर देगा। क्योंकि Time and tide wait for non अर्थात् समय एवं तरंग किसी की अपेक्षा नहीं करते हैं। करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट होने पर पुनः प्राप्त कर सकते हैं परन्तु एक समय नष्ट/विगत होने पर करोड़ों की सम्पत्ति की बात तो दूर रहे सम्पूर्ण विश्व की सम्पत्ति के परिवर्तन से भी पुनः प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसलिए समय का सदुपोयग अतिमूल्यवान वस्तु के सदुपयोग से भी अतिसतर्कता से करना चाहिये। सामान्य व्यक्ति तो कम मूल्यवान रुपये, सोना, रत्नादि की सुरक्षा करता है परन्तु अमूल्य समय का दुरूपयोग करता है। वर्तमान काल के जितने भी महापुरूष हुये हैं वे सब समय का सदुपयोग सावधानी से करते थे। विद्यार्थियों की जीवन चर्या एवं दैनिक–चर्या का संक्षिप्त वर्णन निम्न में कर रहा हूँ।

1. **जीवन–चर्या** :– सम्पूर्ण जीवन का एक महानतम लक्ष्य बनाना चाहिये।

भिन्न–भिन्न विद्यार्थियों के भिन्न–भिन्न लक्ष्य होते हुये भी सब का परम लक्ष्य सुख–शान्ति–समृद्धि को प्राप्त करना है। इस परम लक्ष्य के लिये जो बाधक कारण है उससे दूर रहना चाहिये एवं जो साधक कारक है उसे अपनाना चाहिये। 'क्रिया एवं प्रतिक्रिया' 'साधन एवं साध्य सिद्धान्त' 'कार्य कारण सम्बन्ध' के अनुसार यदि हमें सुख चाहिये तो दूसरों को भी सुख पहुँचाना चाहिये, दूसरों की मंगल–भावना भाना चाहिये। किसी को भी मन–वचन–क्रिया से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। इसको ही केन्द्र करके जीवन की प्रत्येक क्रिया होनी चाहिये। भाव को सरल, शान्त, मृदु, लचीला, उदार रखना चाहिये। व्यवहार नम्र, अनुशासित, समयानुबद्ध होना चाहिये।

विद्यालय को जाते समय

प्रत्येक दिन समय पर विद्यालय में उपस्थित होना चाहिये। दैनिक कालांश की पुस्तकें, नोटबुक, पैन, कम्पास बाक्सादि आवश्यक वस्तु लेकर जाना चाहिये। गृहकार्य अवश्य करके ले जाना चाहिये। प्रार्थना में भी भाग लेना चाहिये। घर से विद्यालय तक पहुँचने के मध्य में भी अनेक विषयों के ऊपर ध्यान देना चाहिये। यदि विद्यालय अधिक दूर नहीं है परन्तु समीप (2–3 कि.मी. तक) है तो पैदल ही जाना चाहिये। क्योंकि पैदल चलने से सम्पूर्ण शरीर का व्यायाम होता है। प्राणवायु पर्याप्त मात्रा से ग्रहण होती है। इससे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य उत्तम होता है। मस्तिष्क के लिए प्राणवायु की आवश्यकता अधिक होती है। पैदल (नग्न पैर) चलने से पैर के नीचे के बिन्दु (Points) दबते हैं जिससे अनेक रोग दूर होते हैं। रास्ते में अपने पार्श्व भाग में जाना चाहिये। दूसरों को बाधा, कष्ट पहुँचाना नहीं चाहिये। गाड़ी में वाहन में चलने वाले पैदल चलने वालों को हीन, दीन या निर्जीव समझते हुए अनैतिक व्यवहार करते हैं। रास्ते में अधिक तेजी से नहीं चलना चाहिये। अनावश्यक ओवरटेक नहीं करना चाहिये। करना ही अत्यन्त आवश्यक है तो समुचित व्यवस्था होने पर ही दूसरों को बिना बाधा पहुँचाते हुए ओवरटक करना चाहिये। रास्ते में समय एवं सुविधा हो तो उत्तम चर्चा अथवा विचार करते हुये यात्रा करना चाहिये। स्कूल पहुँचने के बाद यानवाहन लेकर गये हो तो व्यवस्थित स्थान में रखना चाहिये।

विद्यालय में

विद्यालय में यह कोशिश करना चाहिये कि शिक्षक के वाम–पार्श्व में प्रथम

पंक्ति में बैठने को स्थान मिले। शिक्षक के कक्षा में प्रवेश करते ही नम्रता से खड़े होकर उनका स्वागत करना चाहिये तथा प्रणाम करना चाहिये। विद्यालय में भी जिसके साथ भेंट हो उसका प्रसन्न मुद्रा से स्वागत करना चाहिये तथा प्रणाम करना चाहिये। सबके साथ मृदु एवं नम्र व्यवहार करना चाहिये, शोर–शराबा, उच्छृंखलता, अनुशासन भंग नहीं करना चाहिये। अनावश्यक कक्षा से बाहर नहीं जाना चाहिये। शिक्षक जो पढ़ाते हैं ध्यानपूर्वक सुनना चहिये। जो विषय समझ में नहीं आता हो उसे नम्रता से शिक्षक को अवश्य पूछना चाहिये। विशेष विषय जो शिक्षक के द्वारा बताया जाता है उसे लिखना चाहिये। पुस्तक में जो मुख्य विषय है उसके नीचे रंगीन पैन से रेखांकन करना चाहिये। जो विषय समझ में नहीं आता हो या संशयपूर्ण है उसे प्रश्न चिन्ह (?) से चिन्हित करना चाहिये। उस विषय को शिक्षक से या दूसरों से समझना चाहिये। विषय को जितनी गहराई से सांगोपांग समझेंगे वह विषय उतना ही अधिक स्मरण में रहेगा। इतना ही नहीं जिस विषय को सांगोपांग समझेंगे उस विषय के माध्यम से अन्यान्य विषय को भी समझने के लिये सहायता मिलेगी। इसके साथ–साथ उस विषय सम्बन्धी गुण–दोषों का भी परिज्ञान हो जाता है। इसके माध्यम से हम आगे शोध–बोध–खोज भी करने में भी समर्थ हो जाते हैं।

विज्ञान में सैद्धान्तिक अध्ययन के साथ–साथ प्रायोगिक ज्ञान को भी महत्व देना चाहिये। भूगोल, खगोल के अध्ययन में मानचित्र, ग्लोब आदि का अवश्य अवलम्बन लेना चाहिये। भाषा अध्ययन में शुद्ध उच्चारण एवं लेखन का ध्यान रखना चाहिये। गणित सब विषयों में श्रेष्ठ एवं क्लिष्ट विषय है। गणित के बिना विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का परिज्ञान नहीं हो सकता है। भारतीय धार्मिक ग्रंथों का सूक्ष्म व्यापक वैज्ञानिक परिज्ञान भी बिना गणित से नहीं हो पाता है। लोक–व्यवहार में लेन–देन, व्यापारादि भी गणित के बिना नहीं चलता है।

मनोयोग/ध्यानपूर्वक एवं रूचि तथा महान् उद्देश्य से पढ़ने से विषय समझ में आता है, स्मरण भी रहता है। इसके बिना कितने ही बार पढ़ों तथापि विषय न समझ में आता है न याद रहता है। ध्यानपूर्वक पढ़ने के साथ–साथ मुख्य विषय के नीचे रेखांकन करने से अधिक स्मरण रहता है। इससे भी अधिक स्मरण विषय को स्वयं की भषा में एवं स्वयं की प्रणाली से स्वयं लिखने से रहता है। इससे भी अधिक स्मरण विषय के ऊपर विचार–विमर्श, तर्क–वितर्क करने से रहता

है। अध्ययन करते–करते जिस विषय से मन हट जाता है, रूचि कम हो जाती है, थकान (क्लान्ति) अनुभव होती है तब उस विषय को छोड़कर अन्य रूचिकर विषय पढ़ना चाहिये या स्वस्थ्य मनोरंजन करना चाहिये या थोड़ा घूमना चाहिये अथवा शवासन से थोड़ा विश्राम लेना चाहिए। इसीलिये तो विद्यालय में निश्चित कालांश होता है और अलग–अलग कालांश में अलग–अलग विषय पढ़ाते हैं। मध्य में मध्यान्तर विश्राम का कालांश भी होता है। विद्यालय में मनोरंजन, खेल–कूद की भी व्यवस्था होती है।

मध्यान्तर विश्राम के समय भोजन या अल्पाहार करना है तो हाथ–पैर, मुँह धोकर अच्छी तरह से कुल्ला करके स्वच्छ एवं एकान्त स्थान में करना चाहिये। किसी विद्यार्थी के पास भोजन की व्यवस्था नहीं है तो उसे अपना भोजन देना चाहिये। भोजन स्वयं के घर का बना हुआ, शुद्ध, सात्विक, ताजा, शाकाहार, फलाहार या दुग्धाहार होना चाहिये। भोजन मंत्र बोलकर मौनपूर्वक भोजन करना चाहिये। भोजन के बाद झूठन को साफ कर निश्चित व्यवस्थित स्थान में डालना चाहिये।

विद्यालय के हर संभव प्रत्येक कार्यक्रम में भाग लेना चाहिये। इससे बौद्धिक एवं शारीरिक विकास सन्तुलित होता है। प्रेम, संगठन, समायोजना, सहिष्णुता, देशप्रेम, कार्यक्षमतादि गुणों का विकास होता है। जीवन के प्रायोगिक क्षेत्र के लिये प्रशिक्षण मिलता है। केवल पुस्तकीय ज्ञान से उपर्युक्त गुणों का विकास नहीं हो पाता है।

विद्यालय में भी यथा–योग्य दूसरों की सहायता सेवा करनी चाहिये। गरीब विद्यार्थियों को पुस्तक, नोटबुक, पोषाक, विद्यालय का शुल्क आदि देकर सहायता करनी चाहिये। इसी प्रकार शिक्षकों की यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।

विद्यालय के बाद

विद्यालय से जब घर आते हैं तब पहले सबका यथायोग्य अभिवादन करने के अनन्तर जूते, चप्पल, मोजा उतारकर एवं विद्यालय का परिधान परिवर्तन करके हाथ–पैर, मुँह धोकर कुल्ला करके भोजनादि से निवृत्त होना चाहिए। भाई–बहन, मित्रों से मिलकर मनोरंजन, खेल–कूद, भ्रमणादि करना चाहिये। विशेषतः प्रातःकाल भ्रमण के लिये उपयुक्त समय है। क्योंकि इस समय पर्यावरण शुद्ध रहता है, कोलाहल, यातायात कम रहता है, प्राणवायु पर्याप्त मात्रा में मिलती

है, प्रातःकालीन सूर्य–किरण मृदु/स्निग्ध एवं विटामीन D से युक्त रहती है। भ्रमण से पूर्ण शरीर का व्यायाम हो जाता है, हजम शक्ति बढ़ती है, शरीर फुर्तीला हो जाता है, मानसिक थकान दूर होती है, बोरीयत/अवसाद दूर होता है, नयी चेतना, नयी स्फूर्ति आती है। उतना ही व्यायाम करना चाहिये जिससे अधिक थकान न हो। भोजन करते ही व्यायाम नहीं करना चाहिए।

भ्रमण के बाद थोड़ा विश्राम/शवासन करके हाथ–पैर, मुँह धोकर अध्ययन करना चाहिये। गृहकार्य भी करना चाहिये। स्कूल की पुस्तकों के साथ–साथ धार्मिक, नैतिक, पत्र–पत्रिकायें भी पढ़नी चाहिये। संभव हो तो दूसरे विद्यार्थियों को भी निःशुल्क पढ़ाना चाहिये, सहायता करनी चाहिये।

धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक कार्यक्रम में भी अवश्य ही यथायोग्य भाग लेना चाहिये। इससे नैतिकता, आध्यात्मिकता, सामाजिकता के गुण आते हैं। इसके बिना शिक्षा न पूर्ण हो सकती है न जीवन में सुख, शांति आ सकती है। जो विद्यार्थी इसमें भाग नहीं लेते हैं, वे भले पुस्तकीय कीड़े हो सकते हैं, परन्तु वास्तविक मानव सुसंस्कृत–नागरिक, सामाजिक प्राणी नहीं हो सकते हैं।

॥। योग्य योगासन आदि

मनुष्य में मुख्यतः तीन तत्व हैं यथा (1) शरीर (2) मन एवं इन्द्रियाँ (3) आत्मा। अन्य–अन्य प्रकरण में मन एवं आत्मा को किस प्रकार स्वस्थ रखा जाता है इसके लिए विशेष प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर शरीर–स्वास्थ्य के लिए कुछ प्रकाश डाल रहे हैं। शरीर की रक्षा के लिए हम बाहर से कुछ न कुछ तत्व भोजन, पानी, श्वास के रूप में ग्रहण करते रहते हैं। उसमें से ग्रहण करने योग्य सार तत्व शरीर ग्रहण कर लेता है बाकि अंश मलरूप में शरीर में संचित होता रहता है। उस मल को योग्य समय में योग्य रीति से नहीं निकालने पर शरीर में विभिन्न विपरीत प्रतिक्रिया होती है, जिससे शारीरिक रोग के साथ–साथ मानसिक रोग भी हो जाते हैं, इसलिए योग्य समय में योग्य रीति से शारीरिक मल को निष्कासित कर लेना चाहिये। यदि मलमूत्रादि स्वाभावाकि रूप में नहीं आ रहे हैं तो जबरदस्ती भी लाने का प्रयास नहीं करना चाहिये। विभिन्न मलरोध से जो विभिन्न रोग होते हैं उसका कुछ संक्षिप्त विवरण आयुर्वेद के अनुसार नीचे कर रहा हूँ –

अधोवायु के अवरोध से रोग

अधोवायु को रोकने से गुल्म, उदायवर्त्त, कोष्ठशूल, क्लुम (ग्लानि), वात

(अपान वायु), मूत्र और मल का अवरोध, दृष्टिवध (दृष्टि–दौबल्य) अग्निनाश और हृदय रोग होते हैं।

वातजन्य विकार होने पर स्नेहन तथा स्वेदन विधि करना चाहिए एवं वातनाशक भोजन, किंचित् गर्म जलम का पान, वस्ति–कर्म तथा जो भी वात का अनुलोमन करने में योग्य हों उन सबों का प्रयोग करना उचित है।

मलवेग को रोकने से रोग

मल के वेग को रोकने से पिण्डलियों में ऐंठन, प्रतिश्याव, सिरदर्द, वायु का ऊपर को जाना, परिकर्त्तिका, हृदय का अवरोध, मुख से मल का आना और पूर्वोक्त वातरोध जन्य गुल्म, उदावर्त्त आदि रोग होते हैं।

मूत्र रोकने से रोग

मूत्र के उपस्थित वेग को रोकने से – अंगों का टूटना, पथरी, बस्ति, मेहन(शिश्न) और वृषण में वेदना होती है। वात और मलरोध जन्य रोग भी प्रायः होते हैं अर्थात् कभी नहीं भी होते हैं।

इनकी चिकित्सा–वात, मूत्र और मल के वेगावरोध से उत्पन्न दोषों की चिकित्सा अभ्यंग (तेल मालिस) अवगाहन, स्वेदन और वस्ति (पेट साफ) कर्म है।

डकार रोकने से रोग

उद्गार (ऊर्ध्ववात) को रोकने से – अरूचि, कम्प, हृदय और छाती में रूकावट, आध्यमान, हिक्का और वात होता है, इसमें हिक्का की तरह चिकित्सा करें।

छींक रोकने से रोग

छींक के उपस्थित वेग को रोकने से सिरदर्द, आँख आदि इन्द्रियों में दुर्बलता, मन्यास्तम्भ और अर्द्धित रोग घेर लेता है। चिकित्सा रुकी हुई छींक को प्रवृत्त करने के लिए तीक्ष्ण धूम, तीक्ष्ण घ्राण (नस्य), नावन, सूर्य की ओर देखना ये सब करें, स्नेहन और स्वेदन भी करें।

प्यास रोकने से रोग

प्यास रोकने से मुखशोष, अंगों में शिथिलता, बहरापन, ज्ञान का अभाव, चक्कर आना और हृदय के रोग होते हैं, इसमें सम्पूर्ण शीतल विधि बरतनी चाहिए।

भूख रोकने से रोग

भूख के रोकने से अंगों का टूटना, अरूचि, ग्लानि, कृषता, शूल और चक्कर आना होता है। इसमें लघु स्निग्ध, ऊष्ण और मात्रा में थोड़ा भोजन देना चाहिए।

निद्रा रोकने से रोग

निद्रा के उपस्थित वेग को रोकने से मोह, सिर में भारीपन, आंखों का बोझ, आलस्य, जम्भाईका आना और अंगों का टूटना होता है। इसमें नींद लेना और संवाहन (चंपी) उत्तम है।

खाँसी रोकने से रोग

कासवेग को रोकने से खाँस की अधिकता होती है, श्वास, अरूचि और हृदय रोग होते हैं एवं श्वास और हिक्का होती है, इसमें खासनाशक विधि सम्पूर्णरूप से बरतनी चाहिए।

श्वास रोकने से रोग

श्रमजनित श्वांस को रोके रहने से गुल्म, हृदय के रोग और मूर्च्छा होती है। इस अवस्था में आराम लेना और वातनाशक उपचार करना चाहिए।

जम्भाई रोकने से रोग

जम्भाई को रोकने से छींक को रोकने से होने वाले रोगों के समान रोग होते हैं। इसमें वातनाशक विधि पूर्णतः करनी चाहिए।

आँसू रोकने से रोग

बाष्प (अश्रु) के वेग को रोकने से पीनस, अक्षिरोग, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, अरुचि, भ्रम और गुल्म रोग होते हैं। इसमें नींद लेना, मद्य (आसव, मीठा फलरस) तथा प्रसन्नता पैदा करनी वाली मनोहर कहानियों को सुनना लाभप्रद होता है।

वमन रोकने से रोग

वमन के उपस्थित वेग को रोकने से – विसर्प, कोठ, कुष्ठ, आँख के रोग, कण्डु, पाण्डु, ज्वर, कास, श्वास, जी मिचलाना, व्यंग और श्वयथु होते हैं। व्यंग मुख पर काली झाई या चकत्ते पड़न आदि होता है।

वीर्यस्खलन के वेग रोकने से रोग

शुक्र के उपस्थित वेग को रोकने से – शुक्र का स्रवण, गुह्य वेदना (मेहन तथा वृषणों में दर्द) शोथ, ज्वर, हृदय में पीड़ा, मूत्र का अवरोध अंगों का टूटना, वृद्धि, पथरी और नपुंसकता होती है।

रोकने योग्य वेग

धारयेत्तु सदा वेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च ।
लोभेर्ष्याद्विषमात्सर्यरागादीनां जितेन्द्रियः ॥(24)

धारणीय वेग– इस लोक में और परलोक में हित चाहने वाला मनुष्य जितेन्द्रिय बनकर सदा निम्न वेगों को रोके. लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य, राग आदि। ईर्ष्या दूसरे के उत्कर्ष को न सहना। राग–विषयासक्ति। मात्सर्य – दूसरे के शुभ के साथ द्वेष।

स्मरण शक्तिवर्धक योगासन

उपर्युक्त शारीरिक मल को जब अच्छी तरह से शरीर से निष्कासन नहीं किया जाता है तब वह मल शरीर के विभिन्न अवयव मनोवाही नाड़ियाँ, तंत्रिका–तंत्र, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्म इन्द्रियों को विकृत कर लेता है। इसके कारण शारीरिक स्वास्थ्य तो खराब होता ही है परन्तु ग्रहण शक्ति, स्मरण–शक्ति, मेधा शक्ति को भी विकृत कर लेता है। इसलिये मलमूत्र आदि का विसर्जन प्राकृतिक रूप से यौगिक क्रिया से भी करना चाहिए। प्रातः उठकर जब शौच की बाधा हो तो अवश्य शौच जाकर शारीरिक मल निकाल देना चाहिये। नीम, बबूल आदि दन्तन से मुख शुद्धि करनी चाहिये। जलनेती के लिये पहले नाक जल से साफ करके जलनेती की क्रिया करनी चाहिये। इससे नाक की सफाई होती है। नाक के भीतर स्थित ज्ञानतंन्तु के छोर अधिक कार्यक्षम बनते हैं। जुकाम, सर्दी, साइनस, आधा शीश आदि रोग की चिकित्सा भी हो जाती है। इसी प्रकार वमन धौती भी करनी चाहिये। इससे भी शारीरिक शुद्धता होती है एवं स्मरणशक्ति भी बढ़ती है।

कपाल रन्ध्रशोधन – दाहिने हाथ के अंगूठे के द्वारा प्रतिदिन सो के उठे तब और भोजन के अन्त में और सूर्यास्त के समय में कपाल रंध्र अर्थात् शिर के बीच में जो गढेला है उसे जल से ही साफ करें और इस प्रकार के अभ्यास से भीतर के कफों का दोषनाश हो जाता है और नाड़ियाँ निर्मल हो जाती हैं और दृष्टि (निगाह) दिव्य(साफ) हो जाती है। दोनों हाथों के अंगूठे एवं तर्जनी से कपाल को दबाकर घर्षण करना चाहिये।

स्वच्छ समतल भूमि में समपाद में कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े होकर सिर को आकाश की ओर करके दोनों आँख खोलकर आकाश को देखना चाहिये और अतिजोर–जोर से श्वास क्रिया करनी चाहिये। कुछ समय विश्राम लेकर पुनः उपर्युक्त मुद्रा में आँख बन्द करके ठोड़ी को कण्ठ में लगाकर जोर–जोर से श्वास क्रिया करनी चाहिये। पुनः कुछ विश्राम लेकर उपर्युक्त मुद्रा में ही आँखों को डेढ़ मीटर दूरी पर जमीन में केन्द्रित करके जोर से श्वास क्रिया करनी चाहिये।

कायोत्सर्ग/शवासन – शरीर को पूर्ण शिथिल और तनाव मुक्त करने को कायोत्सर्ग कहते हैं। कायोत्सर्ग खड़े होकर या लेटकर भी किया जाता है। यह आसन योगासन के मध्य-मध्य में अध्ययन करते-करते जब शरीर अथवा मन थक जाता है तब करना चाहिये। इससे शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक तनाव दूर होता है, एकाग्रता बढ़ती है।

पद्मासन तथा ज्ञान मुद्रा – इससे मन की एकाग्रता बढ़ती है, ज्ञान तन्तु सक्रिय होते हैं। पद्मासन और योगमुद्रा से उदर दोष की निवृत्ति, मेरूदण्ड की स्वस्थता, स्मरणशक्ति का विकास तथा मुख एवं मस्तिष्क के स्नायुओं को शक्ति मिलती है।

गोदुहासन – इससे चित्त की स्थिरता, ज्ञान की निर्मलता, अपान वायु की शुद्धि, भावना की विशुद्धि होती है।

सिंहासन से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। स्वर यंत्र सक्रिय बनने से उच्चारण शुद्धि होती है।

वज्रासन यह आसन भोजन के बाद करना चाहिये। इससे पाचन तंत्र उत्तम रहता है, ब्रह्मचर्य की साधना में सहायक होता है, शरीर शक्ति सम्पन्न व तेजस्वी बनता है।

सिद्धासन से काम शक्ति विजय, चित्त स्थिर, वीर्य-शुद्धि तथा शक्ति जागरण होता है।

ताडासन से आलस्य दूर होता है, स्नायु दुर्बलता मिटती है।

गवासन (पंचगासन, ज्ञानासन) से थकान दूर होती है, विनय प्रगट होता है, ज्ञान बढ़ता है, मेरूदण्ड का व्यायाम होता है।

शीर्षासन से मस्तिष्क के विकार दूर होते हैं, स्मरण शक्ति बढ़ती है, दृष्टि-शक्ति बढ़ती है, ग्रंथि-तंत्र स्वस्थ होता है। स्वप्न दोष, धातु दोष, सरदर्द, हर्निया, दमा, मधुमेह में लाभदायक है।

सर्वांगासन से सम्पूर्ण शरीर का व्यायाम होता है। इससे थाइराइड ग्रन्थि स्वस्थ रहती है, मेरूदण्ड की नाडियों के छोरों को पर्याप्त रक्त प्राप्त होता है, यह नाडी तंत्र, पाचनतंत्र के लिये टॉनिक है, इससे नाक-कान के क्रिया-तन्तु सबल होते हैं और अशुद्ध रक्त शुद्ध होता है।

शशांकासन से शीतलता प्राप्त होती है, क्रोध उपशमन होता है, आवेश का

भी उपशमन होता है, मानसिक शान्ति मिलती है, तीव्र रक्तचाप सामान्य बनता है, थकान दूर होती है। इसी आसन में दोनों हथेलियों से दोनों खुली आँखों को बन्द कर के अन्धकार का अनुभव करना चाहिये, इससे आँखों की थकान दूर होती है। आँखों को विश्राम मिलता है। पुनः धीरे से उठना चाहिये। उठते समय आँखों को बन्द कर रखना चाहिये। दोनों हथेलियों को परस्पर रगड़ कर जब हथेलियाँ गरम हो जावे तब बन्द आँखों के ऊपर सहलाना चाहिये। अध्ययन करते-करते जब शरीर, मन एवं चक्षु थक जाते हैं तब इस आसन को करना चाहिये।

प्राणायाम से पर्याप्त प्राणवायु मिलती है, अशुद्ध वायु का निष्कासन हो जाता है। इससे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

ध्यान से मन शान्त हो जाता है। इससे शारीरिक एवं मानसिक रोग दूर होते हैं, ज्ञान बढ़ता है, ज्ञान में शुद्धता आती है।

बुद्धिवृद्धि अर्हमंत्र –

ॐ णमो अरहंताणं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा।

विधि– इस मंत्र से मालकांगनी के तेल को अभिमंत्रित कर प्रतिदिन दस बूँद बताशे में डालकर खायें। ऊपर से दूध-खीर का भोजन करे, पानी अल्प लें, इससे बुद्धि वृद्धि होती है।

सुन्दर भाषण देने का मंत्र

ॐ णमो बोहिदयाणं जीवदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, अरहंताणं णमो भगवइए, देवयाए सव्व सुयणायाए वारसंग जणणी ए अरहंत सिरिए स्वीं क्ष्वीं स्वाहा।

विधि – 10,000 जाप कर पहले मंत्र सिद्ध कर ले फिर व्याख्यान में जाने से पहले एक बार पढ़ ले फिर व्याख्यान दें। अत्यन्त सफलता होगी व वाक्सिद्धि होगी। व्याख्यान में जाने से पहले एक माला का उपरोक्त मंत्र का पाठ करें।

वाक्सिद्धि मंत्र –

ॐ णमो अरहंताम धम्मणायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंग चक्कवट्टीणं मम परमैश्वर्ये कुरू कुरू ह्री हंसः स्वाहा।

विधि – पूर्व की ओर मुँह करके सफेद आसन, सफेद माला व सफेद वस्त्र से शुभ मुहूर्त में जाप शुरू करें। मस्तक पर बायाँ हाथ रखकर एक लाख जाप करें। फिर रोज एक माला का जाप करें तो वाक् सिद्ध होगी।

विद्या प्राप्ति मंत्र

ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं वद वद वाग्वादिनिभ्यो नमः।

विधि – कुंकुम कपूर मिलाकर सूर्य ग्रहण में जिह्वा के ऊपर इस मंत्र को लिखने से देवी संतुष्ट होती है।

बुद्धि निर्मल मंत्र –

ऊँ णमो सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं मम नाणरसयं कुरू ह्रीं नमः।

विधि – प्रतिदिन उपरोक्त मंत्र की एक माला का जाप करते रहें तो बुद्धि निर्मल हो – दूसरे के मनोभाव जानने की गति प्राप्त हो।

श्री सरस्वती देवी का मंत्र –

ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः।

विधि– यह सरस्वती का सिद्ध मंत्र है। इस मंत्र का शुभ मुहूर्त में पूर्व की ओर मुँह करके जाप करें। सफेद वस्त्र, सफेद आसन तथा सफेद माला का प्रयोग करें। 11,000 जाप करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है। इस मंत्र से ब्राह्मी घृत अभिमंत्रित कर खायें तो वाणी में सरस्वती विराजमान होगी।

सुन्दर भाषण देने का मंत्र

ओं ह्रीं श्री कीर्ति कौमुदी वागेश्वरी प्रसन्न वर दे कीर्ति मुख मन्दिरे स्वाहा॥

विधि – प्रतिदिन एक माला फेरें। व्याख्यान में जाने से पहले एक बार पढ़ लें फिर व्याख्यान दें, अत्यन्त सफलता मिलेगी।

उपर्युक्त योगासन, प्राणायाम, मंत्र सिद्धि योग गुरू के परामर्श से प्रशिक्षण लेकर ही करना चाहिये। ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाने के भय से यहाँ विस्तार से वर्णन नहीं किया है। मंत्र के लिये मेरा **'मंत्र विज्ञान'** अवलोकनीय है। ध्यान के लिये मेरा **'ध्यानका धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण'** पठनीय है। योगासन एवं प्राणायाम सम्बन्धी पुस्तक लिखने का विचार है।

उत्तर या पूर्वाभिमुख होकर अध्ययन करना चाहिये। शिक्षक का मुख उत्तर या पूर्व में हो तो उनके सम्मुख बैठकर अध्ययन कर सकते हैं। तीव्र या मन्द प्रकाश में नहीं पढ़ना चाहिये। प्रकाश–आगमन की दिशा वामपार्श्व से होना चाहिये। अध्ययन करते करते मध्य में आँखों को कुछ समय (5–10 सैकण्ड) तक दबाकर बन्द करना चाहिये। अन्त में स्नायुओं को शिथिल छोड़ दीजिए और आँखों को यथासंभव ढीला छोड़ दीजिए। इस प्रकार दस बार कीजिये। अनन्त नीलाकाश

को तथा हरियाली को देखने से दृष्टि–शक्ति बढ़ती है, भावना विस्तृत होती है, मन शान्त होता है। दीपक की शिखा या एक बिन्दु को एकटक देखने से मन एकाग्र होता है, आँख के रोग दूर होते हैं, अध्ययन के मध्य–मध्य में दोनों हथेलियों को रगड़कर जब हथेलिया गरम हो जावें तब आँखों को बन्द करके स्पर्श करना चाहिये। इससे आँखों की थकान दूर होती है, दृष्टि शक्ति बढ़ती है।

सिर में सोने के पहले या स्नान के पहले गाय–घी, बादाम का तेल, या तिल के तेल की मालिश करनी चाहिये। सिर की मालिश अंगुलियों के अग्रभाग से करनी चाहिये। सिर के साथ–साथ आँख, कान और पूर्ण मुख की भी मालिश करनी चाहिये। कानों को मरोड़ना, खींचना चाहिये। हथेलियों एवं पैर के तलवों में भी मालिश करनी चाहिये। इससे शरीर के बिन्दुओं (Points) के ऊपर दबाव पड़ता है। पूरे शरीर में भी तेल की मालिश करनी चाहिये। इससे इन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं, मस्तिष्क ठंडा एवं स्वस्थ रहता है, स्मरण शक्ति बढ़ती है, शरीर सबल होता है, थकान दूर होती हैं। सिर की सफाई कास्टिक–सोडा, चर्बी मिश्रित साबुन, शेम्पू से नहीं करनी चाहिये। इससे हिंसा के दोष के साथ–साथ शरीर की तैल ग्रन्थियाँ भी प्रभावित होती हैं। सिर का स्नायु–तन्त्र रूखा हो जाता है, सिर दर्द होता है, स्मरण–शक्ति घटती है। सिर की सफाई कभी भी गरम पानी से नहीं करनी चाहिये। सिर की सफाई मुलतानी मिट्टी, शिकाकाई, आँवला, बेसनादि से करना चाहिये। सिर को अधिक समय रूखा–सूखा नहीं रखना चाहिये।

तेल घृताभ्यंग (मालिश) गुण –

तैलाभ्यंग श्लेष्मवातप्रणाशी।
पित्तं रक्तं नाशयेद्वा घृतस्य॥
देहं सर्व तर्पयेद्रोमकूपै -
र्वैवर्ण्यादिख्यातरोगापकर्षी ॥5॥

तेल मालिश करना यह कफ और वात को नाश करता है। घी के मालिश करने से रक्त पित्त दूर हो जाता है। रोमकूपों से प्रवेश होकर यह सर्वदेह को शान्ति पहुँचाता है और वैवर्ण्यादि प्रसिद्ध त्वचागत रोगों से दूर करता है।

शरीर पर तेल मर्दन से लाभ –

अभ्यंगेमाचरेन्नित्यं सर्वेष्वगेंषु पुष्टिदम् ॥54॥
शिरः श्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्॥

सार्षपं गन्ध तैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् ॥55॥
अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन।
अभ्यगोंवात कफ हच्छ्रमशान्तिबलं-सुखम् ॥56॥
निद्रावर्णमृदुत्वायुः कुरुते दृष्टिपुष्टी कृत्।
अभ्यंगः शीलितो मूर्ध्नि सकलेन्द्रिय तर्पणः॥57॥
दृष्टिपुष्टिकरो हन्ति शिरोभूमिगतान्गदान्।
केशानां बहुतां दार्ढ्यं मृदुता दीर्घतां तथा।
कृष्णतां कुरूते कुर्याच्छिरसः पूर्णतामपि॥58॥

बदन पर तेल मर्दन करने से सर्व के शरीर को बल प्राप्त होता है इसलिए हमेशा तेल लगाने से लाभ होता है, इसमें विशेषतया सिर, कर्ण और पाद पर तेल मर्दन से लाभ होता है। सरसों का तेल, सुगन्धित तेल, सुबासित फूलों से सुगन्धित किया हुआ तेल तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों से बना हुआ तेल भी लाभदायक होता है। तेल मर्दन से कफ, वात और श्रम का परिहार होता है तथा सुख, शान्ति और बल बढ़ता है। तेल मर्दन से निद्रा अच्छी प्रकार से आती है, शरीर का वर्ण अच्छा होता है और त्वचा कोमल होती है। दृष्टि–ज्योति अच्छी होती है, शरीर स्वस्थ एवं पुष्ट होता है तथा आयु बढ़ती है। सिर पर तेल मालिश करने से मस्तिष्क बलवान एवं सिर के बाल मजबूत, चिकने तथा घने होते हैं। सिर पर तेल मालिश सभी इन्द्रियों को समाधानकारक है एवं दिमाग के रोगों का नाशक है तथा छोटे बच्चों के सिर को पूर्ण विकास प्रदान करता है।

पाँव में तेल मर्दन से लाभ

पदभ्यांगस्तु सुस्थैर्यनिद्रा दृष्टि प्रसादकृत्।
पाद सुप्ति भ्रमस्तम्भसंकोचस्फुटन प्रणुत् ॥61॥

पाद पर तेल मर्दन से पाद शक्तिशाली होते हैं, नींद अच्छी आती है, दृष्टि को प्रसन्नता प्राप्त होती है, पाददाद, पादशूल, पादबधिरता आदि सभी पाद विकार नष्ट होते हैं।

सिर में तेल मर्दन से लाभ

मूर्ध्नोभ्यंगात्कर्णयोः शीतमाहुः कर्णाभ्यंगात्पादयोरेवमेव।
पादाभ्यंगो नेत्ररोगाह्लरेच्च नेत्राभ्यंगाद्दन्तरोगश्च नश्येत्॥62॥

व्यायामक्षुण्णवपुषं पद्भ्यां संमर्दितं तथा।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः ॥63॥

सिर पर तेल मर्दन करने से सिर के सभी रोग नष्ट होते हैं – मन शांतिमय बन जाता है, प्रसन्नता बढ़कर उत्साह आता है और बाल अच्छे होते हैं। सिर पर तेल मर्दन से भी अच्छा कानों में तेल डालना एवं कान में तेल डालने से अच्छा पाद में तेल मर्दन करना है। पैर तलों में तेल के मर्दन से नेत्र के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। आँख में तेल डालने से दाँत के सभी रोगों का नाश होता है, व्यायाम आदि अतिकष्ट कर कार्य से जिसका शरीर थक गया है उसके पाद में तल मर्दन से गरूड पक्षी को देखकर जिस प्रकार सर्प दूर भागते हैं उसी प्रकार व्यायाम से थके व्यक्ति के तेल मर्दन के कारण सभी रोग दूर भागते हैं।

व्यायाम के गुण

दीप्ताग्नित्वं व्याधिनिर्मुक्तगात्रं ।
निद्रा तंद्रास्थौल्यनिर्नाशनं च॥
कुर्यात्कांति पुष्टिमारोग्यमायु।
व्यायामोऽयं यौवनं देहदार्ढ्यम्॥7॥

प्रतिदिन मनुष्य को व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम से अग्नि तेज होती है। शरीर के रोग दूर होते है। निद्रा, आलस्य, स्थूलता आदि शरीर दोष दूर होकर शरीर में कांति, पुष्टि, स्वास्थ्य और दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। विशेष क्या, यह व्यायाम यौवन को कायम रखता है और शरीर को मजबूत करता है।

15- योग्य गुरु (शिक्षक)

शिक्षा विज्ञान में मुख्य चार तत्व होते हैं। यथा शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षाफल। जिसके द्वारा मनुष्य सुसंस्कृत, सुसभ्य, सुसंस्कारित बनता है उसे शिक्षा कहते हैं। जिसके द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है उसे शिक्षक कहते हैं। जो शिक्षा प्राप्त करता है उसे शिक्षार्थी या विद्यार्थी कहते हैं। शिक्षा का फल है आत्मा में निहीत अनन्त शक्तियों का प्रकटीकरण यथा ज्ञान प्राप्ति, विनम्रता, समायोजना, सदाचार, स्वावलम्बन, आदि। इस प्रकरण में हम गुरु अर्थात् शिक्षक के बारे में विचार विमर्श करेंगे। प्राचीन काल में शिक्षकों को विशेषतः गुरु नाम से ही सम्बोधित

किया जाता था। गुरु की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि –

'गु' अन्धकारस्तु 'रु' तस्य निरोधकम् ।
अन्धकारः निरोधत्वात् गुरुः इत्यभिधीयते ॥

गुरु = गु – अन्धकार, रु – प्रकाश। जो अज्ञान रूपी अन्धकार को हटाकर प्रकाश में ला दे वही तो गुरु है। वही तारण–तरण है। अपने आप भी तिरते हैं दूसरों को भी तिराते हैं। गुरु गुणों से भारी यानि जिसमें गुण भरे हों उसे गुरु कहते हैं। जो गुणों से खाली है वह गुरु नहीं है।

अज्ञान महान् अंधकार है। भौतिक अन्धकार में केवल हमें भौतिक वस्तु चक्षु से नहीं दिखाई देती है परन्तु अज्ञान रूपी महान् अन्धकार में व्यक्ति सूर्य के प्रकाश में भी केवल चक्षु से ही नहीं अन्य चारों ज्ञानेन्द्रियों से एवं मन से भी सत्यस्वरूप को, वस्तु स्वरूप को, कुछ नहीं देख सकता है, कुछ नहीं जान सकता है। इसलिए अज्ञान को महातिमिर, महान्धकार कहा गया है और गुरु ज्ञान रूपी शलाका से उस अन्धकार को दूर करता है।

''अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अज्ञान रूपी अन्धकार से आछन्न विवेक रूपी चक्षु को जो ज्ञान रूपी शलाका से उद्घाटित करता है उसे मेरा नमस्कार हो।

भारतीय परम्परा में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। भारतीय परम्परा में कुछ लोग मूर्ति पूजा को मानते हैं तो कुछ लोग मूर्ति पूजा को नहीं मानते हैं, कुछ लोग ईश्वर को विश्व का कर्त्ता मानते हैं तो कुछ ईश्वर को विश्व का कर्त्ता नहीं मानते हैं, कुछ आत्मा को मानते हैं तो कुछ लोग आत्मा को नहीं मानते हैं परन्तु गुरु को सब लोगों ने किसी न किसी रूप में अवश्य माना है। धार्मिक एवं दार्शनिक सम्प्रदाय में गुरु का महत्व तो है ही लौकिक कार्य में भी गुरु का महत्व है। जो दर्जी का कार्य जिससे सीखता है वह उसको गुरु मानता है। जो जिससे ड्रायविंग का कार्य सीखता है उसे वह गुरु मानता है। इसी प्रकार संगीत, नृत्य, चित्र, शिल्प, पाकशास्त्र आदि जिससे सीखते हैं उसे गुरु (उस्ताद) मानते हैं। भारतीय परम्परा में गुरु के लिए एक श्लोक बोलते हैं जो निम्न है –

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवः महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परमब्रह्म तस्मैः श्री गुरवे नमः॥

अर्थात्– गुरुब्रह्मा है, गुरु विष्णु है, गुरु महेश्वर है, गुरु साक्षत् परम ब्रह्म है इसलिए गुरु को नमस्कार है। गुरु शिष्य का निर्माण करता है इसलिए गुरु ब्रह्मा है, शिष्य का नैतिक एवं शैक्षणिक पोषण गुरु करता है, इसलिए गुरु विष्णु है और गुरु शिष्य में स्थित अज्ञान, प्रमाद, अनुशासन–विहीनता, जड़ता आदि को दूर करता है इसलिए गुरु महेश्वर है। गुरु प्रत्यक्षरुप से हमें परम ब्रह्म का स्वरुप बताते हैं और वे स्वयं परम ब्रह्म के बारे में अनुसंधान, शोध, बोध एवं उपलब्धि के लिए प्रयासरत रहते हैं तो कुछ आत्मा से परमात्मा स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं इसलिए साक्षात् परम ब्रह्म हैं। इसलिये कवि ने कहा है –

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागुँ पाय।
बलिहारी गुरु आपकी गोविन्द दियो बताय ॥

गुरु हमें सत्य स्वरुप का, वस्तु का परिज्ञान देते हैं इसलिए भगवान् से पहले गुरु को नमस्कार किया गया है। क्योंकि गुरु के उपदेश एवं मार्गदर्शन से भगवान् का ज्ञान होता है एवं उनका साक्षात्कार होता है। जैन धर्म के अनुसार जीव को प्रथम बार जो सम्यक् दर्शन होता है वह सम्यक् दर्शन गुरु के उपदेश बिना नहीं होता है। जो तीर्थंकर भी बने हैं उन्होंने भी पहले कभी न कभी गुरु के उपदेश से सम्यक् दर्शन को प्राप्त किया है। बिना सम्यक् दर्शन, ज्ञान सम्यक् ज्ञान नहीं होता है एवं चारित्र, सम्यक् चरित्र नहीं होता है। तीर्थंकर भी जब दीक्षा लेते हैं तब सिद्ध भगवान का स्मरण करके उन्हें गुरु रूप में स्वीकार करके ''नमः सिद्धेभ्यः'' बोल करके दीक्षा लेते हैं। इससे गुरु का महत्व कितना है परिज्ञान हो जाता है। जैन धर्म में अरिहन्त भी गुरु है तो सिद्ध भी गुरु है आचार्य, उपाध्याय, साधु भी गुरु हैं। इन्हें पंच गुरु या पंचपरमेष्ठी कहते हैं। प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रांति हुई है, हो रही है और होगी उसका मूल कारण गुरु ही है। गुरु एक क्रांतिकारी, सत्य–शोधक, नवीन–नवीन तथ्य के उन्नायक महापुरुष होते हैं। गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता। अलेक्जेंडर (सिकन्दर) महान् बना अरस्तु के कारण, चन्द्रगुप्त मौर्य दिग्विजयी बना गुरु कौटिल्य चाणक्य के कारण, शिवाजी, छत्रपति बना गुरु समर्थ रामदास के कारण, मोहनदास महात्मा

गाँधी बने राचचन्द्र जैन के कारण। इस प्रकार ऐतिहासिक काल के पहले ही राजा, महाराजा, सम्राट भी गुरुओं के चरण के सानिध्य में जाकर ज्ञान–विज्ञान, आत्मविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्धविद्या, कला–कौशल, गुरुओं से ग्रहण करते आ रहे हैं।

'गुरु विना सर्वे भवन्ति पशुभिः सन्निभः' गुरु के बिना मनुष्य पशु के सदृश्य हैं। पशुओं के कोई गुरु नहीं होते हैं इसलिये पशुओं की उन्नति नहीं होती है। इसी ही प्रकार मनुष्य समाज में गुरु नहीं होते तो मनुष्य समाज भी पशुवत् हो जाता।

''गुरु विना कौन दिखाये वाट, अवगड डोंगर घाट।''

गुरु के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा ? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुरुह भयंकर जंगल घाटी के समान है। उसको पार करने के लिये गुरू रूपी मार्ग दर्शक की आवश्यकता होती है।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः॥(5)

आत्मानुशासनम्

जो त्रिकालवर्ती पदार्थों को विषय करने वाली प्रज्ञा से सहित है, समस्त शास्त्रों के रहस्य को जान चुका है, लोक व्यवहार से परिचित है, अर्थ लाभ और पूजा–प्रतिष्ठा आदि की इच्छा से रहित है, नवीन/नवीन कल्पना की शक्ति रूप अथवा शीघ्र उत्तर देने की योग्यता रूप उत्कृष्ट प्रतिभा से सम्पन्न है, शान्त है, प्रश्न करने के पूर्व में ही वैसे प्रश्न के उपस्थित होने की सम्भावना से उसके उत्तर को देख चुका है, प्रायः अनेक प्रकार के प्रश्नों के उपस्थित होने पर उनको सहन करने वाला है अर्थात् न तो उनसे घबराता है और न उत्तेजित ही होता है, श्रोताओं के ऊपर प्रभाव डालने वाला है, उनके (श्रोताओं के) मन को आकर्षित करने वाला अथवा उनके मनोगत भाव को जानने वाला है, तथा उत्तमोत्तम अनेक गुणों का स्थानभूत हैं; ऐसा संघ का स्वामी आचार्य दूसरों की निन्दा न करके स्पष्ट एवं मधुर शब्दों में धर्मोपदेश देने का अधिकारी होता है।

श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने
परिणतिरुद्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ।
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम्।(6)

जिसके परिपूर्ण श्रुत है अर्थात् जो समस्त सिद्धान्त का जानकार है; जिसका चरित्र अथवा मन, वचन व कार्य की प्रवृति पवित्र है; जो दूसरों को प्रतिबोधित करने में प्रवीण है, मोक्षमार्ग के प्रचार रूप समीचीन कार्य में अतिशय प्रयत्नशील है, जिसकी अन्य विद्वान स्तुति करते हैं तथा जो स्वयं भी विशिष्ट विद्वानों की प्रशंसा एवं उन्हें नमस्कार आदि करता है, जो अभिमान से रहित है, लोक और लोक मर्यादा का जानकार है, सरल परिणामी है, इस लोक सम्बन्धी इच्छाओं से रहित है, तथा जिस में और भी आचार्व पद के योग्य गुण विद्यमान है; वही हेयोपादेय– विवेकज्ञान के अभिलाषी शिष्यों का गुरु हो सकता है।

उपर्युक्त दोनों श्लोक में गुरु का बहुत ही स्पष्ट एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। शिक्षा देने के लिए वही गुरु योग्य है जो सभी विषयों का विशेष ज्ञान रखता हो, जो सांगोपांग तलस्पर्शी ज्ञान नहीं रखता हो तो वह विषय का प्रतिपादन, कथन, विश्लेषण समुचित रीति से नहीं कर सकता है। जो प्राचीन ज्ञान के साथ–साथ नूतन–नूतन आधुनिक ज्ञान से भी परिचित होगा वह विषय का प्रतिपादन सही रूप से कर सकता है। इसलिए प्रत्येक शिक्षक में अध्ययनशील, शोध–बुद्धि, नवीन ज्ञान आदि गुण होना अनिवार्य हैं। इसमें योग्य शिक्षक जीवन भर विद्यार्थी रहेगा। जो विद्यार्थी रहेगा वही योग्य शिक्षक बन सकेगा। क्योंकि सरस्वती माता के ज्ञानरूपी भण्डार में नित्य प्रति नवीन–नवीन सिद्धान्त रूपी, खोज शोध रूपी रत्न भरते रहते हैं। कुछ शिक्षक येन–केन प्रकारेण से उत्तीर्णता का प्रमाणपत्र प्राप्त करके अध्ययन की इतिश्री मान लेते हैं। ऐसे शिक्षक कभी भी विद्यार्थियों की जिज्ञासा एवं शंकाओं का समाधान नहीं कर सकता है। ऐसे कुछ शिक्षक रहते हैं जो उस–उस कक्षा के सृजनशील विद्यार्थी की बुद्धि–लब्धि से भी कम बुद्धिलब्धि वाले रहते हैं। ऐसे शिक्षक तो विद्यार्थियों को ठीक से पढ़ा नहीं पाते हैं परन्तु साथ–साथ विद्यार्थी जब प्रश्न करते हैं तब वे स्वयं की पोल खुल नहीं जावे, विद्यार्थियों के सामने अपमान न होवे इसलिए विद्यार्थियों को डाँटकर चुप करा

देते हैं, बैठा देते हैं। इसलिए उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि – शीघ्र उत्तर देने की प्रतिभा से सम्पन्न होना और प्रश्न करने के पूर्व ही इंगित या भाव से प्रश्नकर्त्ता के मनोभाव को समझकर उसका उत्तर देने वाला गुरु होना चाहिये। इससे यह भी सिद्ध होता है कि गुरु को शिक्षा मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान का भी ज्ञान होना चाहिये। इसके साथ भी यह कहा गया कि प्रश्नों के प्रहार को सहन करने वाला होना चाहिये। क्योंकि यह मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि व्यक्ति की कमी के ऊपर जब चोट पड़ती है तो वह तिलमिला उठता है। जिस प्रकार घायल अंग में सामान्य चोट से भी व्यक्ति तिलमिला उठता है। जब तक विद्यार्थी की शंका का समाधान नहीं हो सकता है तब तक विद्यार्थी को विषय समझ में नहीं आता है और याद भी नहीं रहता है। इससे विद्यार्थी बौद्धिक दृष्टि से पीछे रह जाता है और असंतुष्टि का भाव उत्पन्न हो जाता है। शिक्षकों में बौद्धिक योग्यता के साथ–साथ नैतिक एवं चारित्रिक योग्यता भी होनी चाहिये। बच्चों का मन कोमल एवं संवेदनशील होने के कारण यदि शिक्षकों का व्यवहार उनके प्रति कठोर, क्रूर, कर्कश, अनुदार, आत्मीयता से रहित होगा तो विद्यार्थी उसके प्रति भावात्मक रूप से आकर्षण के विपरीत विकर्षित हो जायेंगे। जब भावात्मक रूप से शिक्षक से घृणा करेंगे, भयभीत होंगे तो शिक्षक जो कुछ पढ़ायेगा उसे भी आत्मीयता से न सुनेंगे न समझेंगे। शंका होने पर भी समझ में नहीं आने पर भी शिक्षक को प्रश्न नहीं करेंगे। इसलिये शिक्षक को विद्यार्थियों के मन को आकर्षित करने वाला तथा उनके मन को जानने वाला भी होना चाहिये। स्वभाव में शान्त, प्रेमालु, सहृदय, कोमल, सरल, क्षमावान, परोपकारी, निंदा भाव से रहित, सच्चरित्र आदि गुण से युक्त होना चाहिये। यदि शिक्षक का व्यक्तित्व अच्छा नहीं है तो उसकी बौद्धिक क्षमता अच्छी होने पर भी विद्यार्थी के लिए वह आदर्श नहीं बन पायेगा। क्योंकि चरित्र या व्यक्तित्व मूक मुखरित भाषा है। अर्थात् चरित्र बिना कहे ही अधिक बोलता है।

प्रकृति के शिक्षक

सीखो (कविता)

फूलों से नित हँसना सीखो, भौरों से नित गाना।
तरू की झुकी डालियों से नित, सीखो शीश झुकाना।(1)

सीख हवा के झोंकों से लो, कोमल भाव बहाना।
दूध तथा पानी से सीखो, मिलना और मिलाना। (2)
सूरज की किरणों से सीखो, जगना और जगाना।
लता और पेड़ों से सीखो, सबको गले लगाना। (3)
मछली से सीखो स्वदेश के, लिए तड़पकर मरना।
पतझड़ के पेड़ों से सीखो, दुख में धीरज धरना। (4)
दीपक से सीखो जितना, हो सके अंधेरा हरना।
पृथ्वी से सीखो प्राणी की, सच्ची सेवा करना।(5)
जलधारा से सीखो आगे, जीवन–पथ में बढ़ना।
और धुएँ से सीखो हरदम, ऊँचे ही पर चढ़ना। (6)

(श्री नाथ सिंह)

16- कुशिक्षा - शिक्षार्थी एवं शिक्षक

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्ति परेषां परपीड़नाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

अपवित्र विचार वाला दुर्जन विद्या को प्राप्त करके वाद–विवाद कलह करता है, धन को प्राप्त करके, भोग–राग, दिखावा, अहंकार से मस्त हो जाता है, शक्ति प्राप्त करके दूसरों को सताता है। पवित्र विचार वाला सज्जन इससे विपरीत विद्या से स्व–पर के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करके ज्ञानरूपी प्रकाश को प्रसारित करता है, धन प्राप्त करके योग्य क्षेत्र में योग्य व्यक्ति को दान देता है तथा शक्ति से दूसरों की रक्षा करता है।

वस्तु का सदुपयोग या दुरुपयोग उसको प्रयोग करने की भावना एवं पद्धति पर निर्भर करता है। जिस पर सुरक्षित रूप से अग्नि का प्रयोग करके भोजन बनाना, गाड़ी चलाना, कारखाना चलाना सदुपयोग है तो उसके द्वारा स्वयं को दूसरों को और उपयोगी चीजों को जलाना दुरुपयोग है । इसी प्रकार ज्ञान, विद्या का शिक्षा का सदुपयोग भी होता है और दुरूपयोग भी होता है। जो विद्यार्थी शिक्षा का एवं गुरु का दुरुपयोग करता है वह अयोग्य विद्यार्थी या कुशिष्य है। जो शिक्षक शिक्षा का एवं विद्यार्थियों का दुरुपयोग करता है वह कुशिक्षक या कुगुरु है। जिस

शिक्षा से शिक्षार्थी, शिक्षक एवं दूसरों पर कुप्रभाव पड़ता है उसे कुशिक्षा कहते हैं। जिस प्रकार कुम्हार योग्य मिट्टी से योग्य पद्धति से अच्छे–अच्छे पात्र बनाता है, बर्तन बनाता है, उसी प्रकार योग्य शिष्य को योग्य गुरु योग्य शिक्षा से योग्य विद्यार्थि बनता है, अयोग्य मिट्टी को योग्य कुम्हार भी योग्य पद्धति से योग्य बर्तन/पात्र नहीं बना सकता है। इसी प्रकार अयोग्य शिष्य को योग्य गुरु भी योग्य विद्यार्थी नहीं बना सकता है। इतना ही नहीं, अच्छी, मिट्टी भी है और अच्छा कुम्हार भी है और योग्य पद्धति नहीं है तो योग्य पात्र नहीं बनेंगे। इसलिये चाणक्य ने कहा है – जिस प्रकार अंधा दर्पण के माध्यम से भी अपना मुँह नहीं देख पाता है, अंगार को दूध से सौ बार धोने पर भी वह सफेद नहीं हो जाता है, कौआ को कितना भी पढ़ाने पर भी वह कोयल और तोते के समान नहीं बोल सकता है, उसी प्रकार अत्यन्य अयोग्य विद्यार्थी को कितना भी पढ़ाने पर योग्य शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिये कहा है –

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ॥ (420)

मूर्खों को दिया गया उपदेश उनके क्रोध को बढ़ाने के लिए ही होता है, न कि शान्ति के लिये। जिस प्रकार सर्पों को दूध पिलाने से उनके विष का ही वर्धन होता है। अतएव कहा है **'उपदेशो न दातव्यो यादृशो तादृशी जनः।'** जैसे–तैसे व्यक्ति को उपदेश नहीं देना चाहिये। इसलिये ज्ञानंदान सत् पात्र / योग्य पात्र / योग्य शिष्य / योग्य विद्यार्थी को ही देना चाहिये। तब उपदेश कार्यकारी होता है कहा है –

सतगुरु देय जगाय, मोहनीन्द जब उपशमै।
तब कछु बने उपाय, कर्म चोर आदत रुकै॥

इसी प्रकार योग्य विद्यार्थी के लिये योग्य शिक्षक चाहिये। जिस प्रकार योग्य मिट्टी कुशल कुम्हार के बिना योग्य पात्र के रूप में नहीं बन सकती है, अच्छी शिला भी योग्य शिल्पी के बिना योग्य मूर्ति के रूप में परिवर्तित नहीं हो सकती है, उसी प्रकार योग्य शिष्य और योग्य विद्यार्थी होते हुए भी योग्य शिक्षा पद्धति नहीं है तो भी शिक्षा का लाभ विशेष नहीं हो सकता है।

अथवा जिस प्रकार अच्छे घोड़े, हाथी को अच्छा प्रशिक्षण न मिलने पर वे योग्य कार्य नहीं कर पाते हैं, अथवा जिस प्रकार खदान के मल से युक्त हीरे को योग्य पद्धति से योग्य रीति से नहीं तराशा जाता है तब तक उसका मूल्य भी अधिक नहीं होता है।

पौष्टिक तत्व से भरपूर फलादि भी जब सड़ जाते हैं तो विषाक्त हो जाते हैं। ऐसे फलादि के भक्षण से विभिन्न रोग भी हो जाते हैं और मृत्यु भी हो सकती है। इसी प्रकार जब शिक्षा और शिक्षक में या विद्यार्थी में विकार उत्पन्न होता है या दुरुपयोग किया जाता है तो उसका प्रतिफल भयावह होता है। जिस प्रकार रावण के पास विद्या, बुद्धि, सत्ता होते हुए भी उसका उसने दुरुपयोग किया जिससे स्वनाश के साथ–साथ लंका के नाश का भी कारण बना। जिस गुरु, जिस वंश, जिस देश में पाण्डवों का सम्बंन्ध रहा कौरवों का भी उनसे रहा। तथापि पाण्डवों ने विद्यादि का सदुपयोग करके यश, राज्य तथा उत्तम गति को प्राप्त किया परन्तु कौरवों ने इसका दुरुपयोग करके अयश, मृत्यु तथा दुर्गति को प्राप्त किया। इसी प्रकार आसुरी प्रवृति वाले व्यक्तियों में भी बुद्धि, विद्या, सत्ता, होती है परन्तु उसका दुरुपयोग करके पर को कष्ट पहुँचाते हैं। आईन्स्टीन तथा उनके सहयोगी ने अणु अस्त्र का आविष्कार जन कल्याण के लिये किया था परंतु अमेरिका ने द्वितीय विश्व युद्ध के समय हिरोशिमा और नागासाकी के ऊपर उसे डालकर लाखों व्यक्ति एवं करोड़ों की सम्पति को नष्ट किया। प्राचीन विभिन्न साहित्यों के परिज्ञान से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि अधिकांशतः अधिकांश व्यक्ति विद्या, बुद्धि, सम्पति, सत्ता का दुरुपयोग ही करते हैं। ऊपर मैंने कुछ व्यक्तियों का उदाहरण दिया था कि शिक्षादि का दुरुपयोग किस प्रकार से करते हैं। अंग्रेजी जाति जब सुशिक्षित, समृद्ध, शक्तिशाली थी तब कूटनीति से धर्म प्रचार के बहाने से या व्यापार फैलाने की दृष्टि से दूसरे देशों को अपना उपनिवेश बनाते थे, परतंत्र करते थे, शोषण करते थे। उसी प्रकार गोरी जाति (गोरी चमड़ी वाले) ने काली जाति (काली चमड़ी वाले) को जो कुछ बौद्धिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं होने के कारण उन्हें खूब शोषण किया, उन्हें दास बनाया, उनको पराधीन किया, उनकी हत्या की। इसी प्रकार जब जो राज्य या राष्ट्र शिक्षादि से सम्पन्न रहा तब उसने दूसरों को लूटा, खसोटा, पराधीन किया, इसलिए विवेकवान को शिक्षा का सदुपयोग एवं दुरुपयोग दोनों को लक्ष्य में रखकर कार्य करना चाहिए। इस

अध्याय में ज्ञान विपरीत क्यों होता है, विद्यार्थी शिक्षा का एवं गुरु का दुरुपयोग क्यों करता है उसका सविस्तार वर्णन करके शिक्षा के दुष्प्रभाव से विश्व को सतर्क करना चाहता हूँ, बचाना चाहता हूँ।

शिशु के लिये दण्ड

एक समय की बात है नन्दरानी यशोदाजी ने घर की दासियों को तो दूसरे कामों में लगा दिया और स्वयं (अपने लाला को मलाई खिलाने के लिये) दही मथने लगी। वेदव्यास ने कहा– मैंने तुमसे अब तक श्रीकृष्ण की जिन–जिन बाल–लीलाओं का वर्णन किया है, दधि–मन्थन के समय वे उन सबका स्मरण करती और गाती भी जाती थी। उसी समय श्रीकृष्ण स्तन पीने के लिये दही मथती हुई अपनी माता के पास आये। उन्होने अपना माता के हृदय में प्रेम और आनन्द और भी बढ़ाते हुए दही की मथानी पकड़ ली तथा उन्हें मथने से रोक दिया। श्रीकृष्ण माता यशोदा की गोद में चढ़ गये। वात्सल्य स्नेह की अधिकता से उनके स्तनों से दूध स्वयं ही झर रहा था वे उन्हें पिलाने लगी और मन्द–मन्द मुस्कान से युक्त उनका मुख देखने लगी। इतने में ही दूसरी ओर अँगीठी पर रखे हुए दूध में उफान आया। उसे देखकर यशोदा जी उन्हें अतृप्त ही छोड़कर जल्दी से दूध उतारने के लिये चली गयीं। इससे श्रीकृष्ण को कुछ क्रोध आ गया। उनके लाल–लाल होठ फड़कने लगे। उन्हें दाँतों से दबाकर श्रीकृष्ण ने पास ही पड़े हुए लोढे से दही का मटका फोड़ डाला, बनावटी आँसु आँखों में भर लिये और दूसरे घर में जाकर अकेले में मलाई खाने लगे। यशोदा जी औंटे हुए दूध को उतारकर फिर मथने के घर में चली आयीं। यहाँ देखती हैं तो दही का मटका (कमोरा) टुकड़ें–टुकड़ें हो गया है। वे समझ गयी कि वह सब मेरे लाल की ही करतूत है। साथ ही उन्हे वहाँ न देखकर यशोदा माता हँसने लगी। इधर–उधर ढूँढने पर पता चला कि श्रीकृष्ण एक उलटे हुए ऊखल पर खडे हैं और छींके पर का मक्खन ले–लेकर बंदरों को खू–लुटा रहे हैं। उन्हें यह भी डर है कि कहीं मेरी चोरी खुल न जाय। इसलिए चौकन्ने होकर चारों ओर ताकते जाते हैं। यह देखकर यशोदा रानी पीछे से धीरे–धीरे उनके पास जा पहुँची। श्रीकृष्ण ने देखा कि मेरी माँ हाथ में छड़ी लिये मेरी ही ओर आ रही है तब वह झट से ओखली पर से कूद पड़े और डरे हुए की भाँति भागे। जब इस प्रकार माता यशोदा श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ने लगीं, तब कुछ ही देर में बड़े–बड़े एवं हिलते हुए नितम्बों के कारण

उनकी चाल धीमी पड़ गयी। वेग से दौड़ने के कारण चोटी की गाँठ ढीली पड़ गयी। वे ज्यों–ज्यों आगे बढ़ती पीछे–पीछे चोटी में गुँथे हुए फूल गिरते जाते। इस प्रकार सुन्दरी यशोदा ज्यों–त्यों करके उन्हें पकड़ सकीं। श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर वे उन्हें डराने–धमकाने लगी। उस समय श्रीकृष्ण की झाँकी बड़ी विलक्षण हो रही थी। अपराध तो किया ही था, इसलिए रुलाई रोकने पर भी न रुकती थी।

हाथों से आँखे मल रहे थे, इसलिए मुँह पर काजल की स्याही फैल गयी थी। पिटने के भय से आँखे ऊपर की ओर उठ गयी थी, उनसे व्याकुलता सूचित होती थी। जब यशोदा जी ने देखा कि लल्ला बहुत डर गया है, तब उनके हृदय में वात्सल्य स्नेह उमड़ आया। उन्होंने छड़ी फेंक दी। इसके बाद सोचा कि इसको एक बार रस्सी से बाँध देना चाहिए नहीं तो यह कहीं भाग जायेगा। जब माता यशोदा अपने ऊधमी और नटखट लड़के को रस्सी से बाँधने लगीं, तब वह दो अंगुल छोटी पड़ गयी। तब उन्होंने दूसरी रस्सी लाकर उसमें जोड़ी। अब वह भी छोटी हो गयी, तब उन्होंने दूसरी रस्सी, लाकर उसमें जोड़ी। अब वह भी छोटी हो गयी, तब उसके साथ और जोड़ी। इस प्रकार वे ज्यों–ज्यों रस्सी लाती और जोड़ती गयीं, त्यों–त्यों जुड़ने पर भी वे सब दो–दो अंगुल छोटी पड़ती गयीं। यशोदा रानी ने घर की सारी रस्सियाँ जोड़ डाली, फिर भी वे नारायण श्रीकृष्ण को न बाँध सकीं। उनकी असफलता पर देखने वाली गोपियाँ मुस्करानें लगी और वे स्वयं भी मुस्कराती हुई आश्चर्य चकित हो गयी। नारायण श्रीकृष्ण ने देखा कि मेरी माँ का शरीर पसीने से लथपथ हो गया है चोटी से गुँथी हुई मालाएँ गिर गयी हैं और वे बहुत थक भी गयी है : तब कृपा करके वे स्वयं ही अपनी माँ के बंधन में बँध गये।

उपर्युक्त उदाहरण से बाल मनोविज्ञान के अनेक पहलू उजागर हो जाते हैं। बाल्यावस्था में स्वाभाविक रूप में बच्चे नटखट, शरारती होते हैं। यह होना भी स्वाभाविक है एवं उचित भी है क्योंकि बाल्यकाल में शरीर के अंगोपांग सक्रिय होते हैं। रक्त संचार तीव्रता से होता है जिसके कारण वे एक स्थान में शान्ति से नहीं बैठ पाते हैं और चुप भी नहीं रह पाते हैं। नटखट से उन्हें आनन्दानुभव होता हैं, मनोरंजन होता है, शारीरिक व्यायाम होता है, मानसिक विकास होता है। खेल–खेल से वह बहुत कुछ सीखते हैं और भावी जीवन को सूचित करते

हैं। उपर्युक्त उदाहरण में यह कहा गया है कि जब यशोदा माता दही मथ रही थी तब कृष्ण आकर यशोदा की गोद में चढ़ गये और स्नेह से यशोदा के स्तनों से दूध झरने लगा। इससे सिद्ध होता है कि बच्चों को माता के दूध की आवश्यकता अधिक होती हैं। माता के दूध में बच्चों के लिए सम्पूर्ण पोषक तत्व होते हैं। संतान के प्रति वात्सल्य भाव होने से माता के शरीर में (स्तन) में दूध की मात्रा अधिक निर्माण होती हैं। यशोदा का वात्सल्य भाव कृष्ण के प्रति अधिक होने के कारण उसके स्तन से दूध झरने लगा। कृष्ण को यशोदा दूध पिलाते–पिलाते प्रसन्न हो रही थी, मुस्करा रही थी। इससे सिद्ध होता है कि बच्चों का पालन–पोषण प्रेम से करना चाहिए। यदि माता प्रेम से दूध पिलाती है तो बच्चों का विकास संतुलित होता है प्ररन्तु यदि क्रोध आदि भावना से युक्त होकर दूध पिलाती है तो दूध में विषाक्त तत्व का संचार हो जाता है। जिससे बच्चों के शारीरिक, मानसिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त उदाहरण में यह भी कहा गया हैं कि जब अँगीठी पर रखे हुए दूध में उफान आया तब यशोदा कृष्ण को अतृप्त छोड़कर दूध उतारने के लिए चली गई। इससे कृष्ण को कुछ क्रोध आया और लोढ़े से दही का मटका फोड़ डाला। बनावटी आँसू आँखों में भर लिये और दूसरे घर में जाकर मलाई खाने लगे। जब यशोदा को उपर्युक्त करतूत समझ में आयी तब छड़ी लेकर कृष्ण को डराने, धमकाने लगी। जब कृष्ण इससे व्याकुलित हो उठा तब यशोदा के हृदय में वात्सल्य–स्नेह उमड़ पडा। इसलिए उन्होंने छड़ी फेंक दी एवं कृष्ण को रस्सी से बांधने लगी परन्तु रस्सी छोटी पड़ गई। अनेक रस्सी जोड़ने पर भी वह रस्सी छोटी ही पड़ जाती थी। तब कृष्ण देखते है कि माँ इस काम में बहुत परेशान हो गई है तब स्वयं अपनी माँ के बंधन में बंध गये। इससे अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के ऊपर प्रकाश पड़ता है। वह यह है कि जो बच्चे किसी कार्य में अतृप्त होते हैं या माता से वियोग होता है तब वे अपनी अभिव्यक्ति रोने के माध्यम से करते हैं क्योंकि बच्चे स्पष्ट भाषा में नहीं बोल पाते हैं इसलिए वे रोने रूपी भाषा में अभिव्यक्ति करते हैं। इसलिए बच्चों की विभिन्न परिस्थितियों में रोने की ध्वनि अलग–अलग होती हैं। तब माता रोने के माध्यम से बच्चों के मनोभाव को समझ लेती हैं। इतना ही नहीं कभी–कभी अतृप्त बच्चे क्रोध भी करते हैं, शरारत भी करते हैं, तोड़–फोड़ भी करते हैं। उपर्युक्त मानसिक परिस्थितियों का अध्ययन

करना उनके अभिभावक और गुरु का कर्त्तव्य होता है। यदि मानसिक परिस्थितियों का अध्ययन न करके इनका समुचित समाधान नहीं किया जायेगा तो बच्चों में हीन भावना, कायरता, डर या उत्श्रृंखलादि प्रवृत्तियाँ घर कर लेती हैं। बच्चों को प्रेम के साथ–साथ समुचित अनुशासन भी चाहिये। अनुशासन के बिना बच्चे उत्श्रृंखल, उदण्ड़, ढीठ, कुसाहसी बन जाते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण में कहा गया है कि जब तक कृष्ण स्वेच्छा से यशोदा के बंधन में न आए तब–तक यशोदा कृष्ण को बांधने में असमर्थ रही। जब कृष्ण स्वेच्छा से बन्धन में आये तब यशोदा बाँधने के लिए समर्थ हुई। इससे सिद्ध होता है कि जब बच्चे हृदय से स्वेच्छा से सुधरना नहीं चाहते हैं, शिक्षा प्राप्त करना नहीं चाहते हैं तब तक अभिभावक या गुरु भी उसे नहीं सुधार सकते हैं। जब शिष्य या शिशु अन्तरंग में स्वयं सुधरना चाहेगा, शिक्षा प्राप्त करना चाहेगा, आगे बढ़ना चाहेगा तब जाकर गुरु की शिक्षा उसके लिए मार्ग प्रदर्शन करेगी। अन्यथा नहीं कर सकती है। कहा भी है–

सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमे ।
तब कुछ बने उपाय, कर्म चोर आवत रुके॥

इसीलिए बच्चों की अनर्गल प्रवृत्तियों को भी रोकना चाहिये परन्तु उनकी भावनाओं का दमन नहीं करना चाहिए। शैशव अवस्था में शरीर से, मन से एवं भावना से कोमल होती है। इसीलिए उनकी प्रकृति, प्रवृत्ति एवं परिस्थिति को देखकर उन्हें शिक्षा–दीक्षा देनी चाहिए एवं उन्हें अनुशासित करना चाहिए। इसलिए कहा हैं **''मर्दनं गुण वर्धनम्''** अर्थात् मर्दन करने से गुण में वर्धन होता है। जिस प्रकार स्वर्ण पाषाण को अग्नि से तपाने से उसमें स्थित कालिमा अथवा गन्दगी दूर हो जाती है एवं सुवर्ण कनक बन जाता है, औषधि को भावना देने पर उसमें औषधीय गुण अधिक हो जाता हैं, मिट्टी को रौंद कर घड़ा बना कर तपाने पर उस में जल धारण करने कि क्षमता आ जाती है, उसी प्रकार शिशु को विद्यार्थियों को समुचित अनुशासन करने पर उन में गुण प्रकट होते हैं।

योग्य – सुसंस्कृत वीरांगना माता जीजाबाई के कारण ही एक दुबला–पतला सामान्य सामंत का लड़का आगे जाकर छत्रपति शिवाजी बना। जीजाबाई बाल्यावस्था में शिवाजी को प्रेरणा देती थी, अरे शिवा! यदि तुमको महान बनना

है, एवं भारत माता, नारी जाति, स्व-संस्कृति, सभ्यता, धर्म की रक्षा करनी है तो तेरे लिये, सोने के लिए पलंग नहीं, खाने के लिये सोने की थाली नहीं परन्तु कठोर साधना रूपी जीवन जीना पड़ेगा। यदि तुमको अपनी संस्कृति, नारी-जाति आदि की रक्षा की परवाह नहीं है तो सोने के लिये पलंग है तथा खाने के लिए सोने की थाली है। समर्थ गुरु रामदास की प्रेरणा से शिवाजी एक धीर, वीर, गम्भीर, देशभक्त, स्वाधीनता प्रेमी राजा बना, जो आज भारतीय इतिहास में अमर है। यहाँ तक कि महाराष्ट्र में आज शिवाजी को शिव का अवतार मानकर पूजा करते हैं। उपरोक्त ऐतिहासिक घटना से यह सिद्ध होता है कि मोह से ग्रसित होकर बच्चों का लालन-पालन नहीं करना चाहिए किन्तु उन्हें महान बनाने के उददेश्य से करना चाहिए।

नीतिकारों ने कहा भी है –

लालनात् बहवो दोषास्ताडनाद्बहवो गुणाः ।
तस्मात् पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्।

मोह-युक्त होकर लालन करने से बहुत दोष उत्पनन होते हैं। दुर्गुण को नष्ट करने के लिये एवं उचित मार्ग में लगाने के लिये ताड़न करने से अनेक गुण उत्पन्न होते हैं। इसीलिए शिष्य और पुत्र को ताड़न करना चाहिए, लालन नहीं करना चाहिए।

लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ॥

शैशव अवस्था में बच्चे अधिक संवेदनशील, निःसहाय दुर्बल होने के कारण 5 वर्ष तक उनका लालन पालन करना चाहिए। शैशव अवस्था में ताड़न, भर्त्सना करने से बच्चों में कुण्ठित-भाव, तनाव, हीनता, डर आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए अधिक शैशवदशा में प्यार-दुलार, लालन-पालन करना चाहिए। पाँच वर्ष के बाद बच्चों के मन, इन्द्रिय, शरीर कुछ परिपक्व होते जाते हैं। इसलिए उस अवस्था में योग्य शिक्षा-दीक्षा-संस्कार देने के लिए कठोर अनुशासन करना चाहिए। किशोर अवस्था से जब बच्चे युवक अवस्था में पर्दापण करते है, तब उन में कुछ आत्मा गौरव-स्वाभिमान जग जाता है। इसके साथ-साथ बाल्यावस्था की सरलता, ऋजुता, ग्रहण-शक्ति, स्मरण-शक्ति, कुछ मंद होने की संभावना होती है। इसलिए पहले जिनको सुसंस्कार नहीं मिला है, उन्हें इस अवस्था में

अनुशासित करने पर वे सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाते हैं। इसलिए इस अवस्था के बच्चों से प्यार/मित्रभाव से काम लेना चाहिए।

17- परस्पर सहयोग का नाम है समाज/संगठन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही रहकर उन्नति कर सकता है। प्राचीन काल में भोगभूमि में जो मनुष्य थे वे शक्ति सम्पन्न, निरोगी, भद्र होते हुए भी संगठन के अभाव से तब परिवार, समाज, राष्ट्र आदि का निर्माण नहीं हुआ था। इसलिए वे स्व पुरुषार्थ से गृह, ग्राम, नगर राष्ट्र का निर्माण नहीं कर पाये थे। कालक्रम से भोग भूमि के अवसान के बाद कर्म-भूमि प्रारम्भ होने से पहले जो सहज-सुलभ, प्राकृतिक रूप से जीवन-यापन की सामग्रियाँ उपलब्ध थी वे कम होने लगी। उस परिस्थिति में संगठित होकर जीवन-यापन की सामग्रियाँ जुटाने में समर्थ हुए इससे परिवार, समाज, नगर, राष्ट्र का निर्माण हुआ। इसके बाद ही मनुष्य विभिन्न क्षेत्र में सक्षम हुआ। इससे सिद्ध होता है कि उन्नत जीवन-यापन के लिए संगठन का महत्वपूर्ण भोग दान है।

बालक जब माता के गर्भ से जन्म लेता है उस समय वह निःसहाय रहता है। तब वह निःसहाय अवस्था में स्वयं की सुरक्षा, वृद्धि एवं पालन पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर करता है। इसी प्रकार विद्या अध्ययन के लिए गुरूजी आदि की आवश्यकता अनिवार्य है। वह वस्त्र के लिए बुनकर जुलाहा, फर्नीचर के लिए बढ़ई, बाल बनाने के लिए नापित (नाई), अनाज के लिए कृषक, कपड़ा स्वच्छ करने के लिए धोबी आदि की सहायता लेता है। इसलिए मनुष्य स्वाभाविक रूप से समाज से जुड़ा हुआ एक अभिन्न अंग है। अतः समिष्टि के अभाव में व्यक्ति विशेष उन्नतिशील नहीं हो सकता है। इतना ही नहीं वह जब मरता है, तब उसकी अर्थी को श्मशान में ले जाने के लिए संगठन की आवश्यकता होती है। इसलिए तो महान् दार्शनिक अरस्तु ने कहा था। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं।

देश, राष्ट्र, समाज, धर्म की भी स्थिति, समृद्धि परस्पर के संगठन से ही सम्भव है। इसलिए तो जैनाचार्य श्री सोमदेव सूरि ने नीतिवाक्यामृत में देश के गुण में प्रधान एवं प्रथम गुण का वर्णन करते हुए कहा है– **अन्योऽन्यरक्षकः** अर्थात् देश में परस्पर की सेवा करने वाले हों। देश में संगठित रूप से प्रजा-प्रजा की, प्रजा-राजा की, राजा-प्रजा की रक्षा करते हुए वास करते हैं, वह देश स्वातंत्र्य सुदृढ़ एवं उन्नत हो सकता है।

प्रत्येक धर्म में भी संगठन का महत्व स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। जैन धर्म के प्रत्येक तीर्थंकर जैन शासन का प्रवर्तन करने के लिए सर्वप्रथम मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका रूपी चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं। इसी प्रकार गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म के प्रवर्तन के लिए संघ की स्थापना की थी। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म के मंगल पाठ में **''संघम् शरणं गच्छामि''** मैं संघ की शरण को प्राप्त करता हूँ कहा है। इसी प्रकार ईसा मसीह कुछ धर्मानुयायियों की सहायता से धर्म प्रचार में समर्थ हुए। वर्तमान काल में संगठित रूप से धर्म–प्रचार ईसाई धर्म में होता है इसलिए ईसाई धर्म आज दुनियाँ में दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। पैगम्बर मोहम्मद भी अपने कुछ अनुयायियों को संगठित करके अपना धर्म प्रचार करने में समर्थ रहे वर्तमान मुस्लिमों का भाई चारा एवं संगठन सर्व प्रसिद्ध है। केवल संगठन–संगठन चिल्लाने से संगठन नहीं हो सकता है। संगठन के कुछ मूलभूत सूत्र निम्न प्रकार है–

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ सदाममात्मा विदधातु देव॥

हे भगवान! मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रहे गुणजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिए करुणा भाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा सदा माध्यस्थभाव (साम्यभाव) रहे।

राजनीति की अंमूल्य कृति नीति वाक्यामृत में सोम देव सूरि ने कहा है –

आत्मवत्परत्र कुशल वृत्ति चिन्तनं शक्तिस्त्याग तपसी च धर्मोधिगमोपायाः॥

अपने ही समान दूसरे प्राणियों का हित (कल्याण) चिंतन करना, शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना और तपश्चरण करना ये धर्म प्राप्ति के उपाय हैं।

''सर्व सत्वेषु हि समता सर्वाचरणानं परमं चरणम् ॥''

समस्त प्राणियों में समता भाव रखना अर्थात् उनकी रक्षा करना सभी सत्कर्त्तव्यों में सर्वोत्तम कर्तव्य है।

''सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु -सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्॥''

सम्पूर्ण जीव जगत सुखी, निरोगी, भद्र, निरोगी, विनयी, सदाचारी रहे। कोई भी कभी भी थोड़े से भी दुःख को प्राप्त न करे

शिवमस्तु सर्वजगतः परहित निरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषा प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, जीव समूह पर–हित में निरत रहे, सम्पूर्ण दोष विनाश को प्राप्त हो जावे, लोक में सदा, सम्पूर्ण प्रकार से सुखी रहें।

मा कार्षीत् कोपि पापानि मा च भूत् कोपि दुःखितः।
मुच्यतां जगदप्येषां मतिमैत्री निगद्यते ॥

कोई भी पाप कार्य को न करें, कोई भी दुःखी न रहे, सम्पूर्ण जगत् दुःख, कष्ट, वैरत्व से रहित हो जाय, इस प्रकार की भावना को मैत्री भावना कहते है।

कायेन, मनसा वाचा सर्वेष्यपि च देहिषु ।
अदुःख जननी वृत्ति मैत्री, मैत्री विदां मता॥

काय, मन वचन से सम्पूर्ण जीवों के प्रति ऐसा व्यवहार करना जिससे दूसरों को कष्ट न पहुँचे इसी प्रकार के व्यवहार को मैत्री व्यवहार कहते हैं।

अतः परस्पर को सहयोग करते हुए सौहार्द से सहनिवास करना समाज है। ताने–बाने रूप से सम्बन्धित धागों का समूह जैसे वस्त्र है, न कि अव्यवस्थित धागों का ढेर, वैसा ही परस्पर उपकार करते हुए सहवास करने वाले जीव समूह को समाज कहते हैं न कि परस्पर असहयोग करने वाले जीवों की भीड़।

18- धनार्जन में भी धर्म चाहिए

प्रतिष्ठान (दूकान) अथवा व्यापार क्षेत्र, जीवनयापन का स्थान है, न कि वध स्थान।

जनता की सेवा का आलय है – कार्यालय (ऑफिस) और कार्यकर्त्ता जन सेवक न कि ऑफिस अफीम की गोली और जनसेवक जनशोषक/नौकरशाही।

धर्म केवल धर्मस्थल, धर्म–चर्चा, धार्मिक पर्व, धार्मिक ग्रन्थों का ही विषय नहीं है बल्कि धर्म तो सदा, सर्वदा आचरण का विषय है। जिस प्रकार जीवन जीने के लिए श्वासोच्छ्वास चाहिए उसी प्रकार जीवन्त धर्म को जीवन में धारण करने के लिए धर्म का आचरण भजनालय (धर्म स्थल) से लेकर भोजनालय, धर्मशाला से लेकर कार्यशाला (कार्यालय, ऑफिस) जिनागम से लेकर अर्थागम (धन उपार्जन के मार्ग) ऋषि से लेकर कृषि तक में होना चाहिए। धनार्जन भी

धर्म के अनुसार होना चाहिए। कहा भी है– ''न्यायोपात्तधनो यजन्'' अर्थात् न्याय से धनार्जन करना चाहिए । यदि धनार्जन के लिए धर्म का मार्ग छोड़ दिया जाता है तब उसमें अनर्गल रूप में अत्यधिक रूप में अनेक पापों का अवगमन हो जाता है। स्वयमेव परिग्रह, धन की इच्छा, आकांक्षा, तृष्णा परिग्रह पाप है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा भी है –

मूर्च्छा परिग्रह । (17)

मूर्च्छा परिग्रह है।

बाह्याभ्यन्तर उपाधि (परिग्रह) के रक्षण आदि के व्यापार को मूर्च्छा कहते हैं। गाय, भैंस, मणि, मुक्ता आदि चेतन–अचेतन बाह्य परिग्रह के और रागद्वेषादि अभ्यन्तर परिग्रह के संरक्षण, अर्जन, संस्कार आदि लक्षण व्यापार को मूर्च्छा कहते हैं।

इस धनार्जन के लिये झूठ बोलते है, मायाचारी करते है और दोनों स्वयंमेव पाप है, हिंसा है। यथा–

असदभिधानमनृतम् । (14)

असत् बोलना अनृत है।

माया तैर्यग्योनस्य । (16)

माया तिर्यंचायु का आस्रव है।

शील रहित होना, व्रतरहित होना, मिथ्यात्व धारण करना, दूसरों को ठगना, मिथ्यात्व से सहित अधर्मों का उपदेश देना, कृत्रिम अगुरू कपूर और केशर का बनाना, झूठे नापतौल के बाँट–तराजू तथा कूट आदि का चलाना, नकली सुवर्ण तथा मोती आदि का बनाना, वर्ण, गन्ध, रस आदि को बदलकर अन्य रूप देना, छाछ, दूध तथा घी आदि में अन्य पदार्थों का मिलाना, वाणी तथा क्रिया द्वारा दूसरों की विषय अभिलाषा को उत्पन्न करना, कापोत और नील लेश्या से युक्त होना, तीव्र आर्तध्यान करना और मायाचार करना ये सब तिर्यंच आयु के आस्रव के हेतु जानना चाहिए।

स्तेनप्रयोगतदाहवादान विरूद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मान प्रतिरूपक व्यवहारः।

स्तेनप्रयोग, स्तेनआहतादान, विरूद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिक मनोन्मान और प्रतिरूपकव्यवहार ये अचौर्य अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

स्तेनप्रयोग – चोर को चौर्य कर्म में स्वयं प्रयुक्त करना स्तेनप्रयोग है। अर्थात्–

चोरी करने वालें को स्वयं प्रयोग (उपाय) बतलाना व दूसरे के द्वारा उसको चोरी में प्रयुक्त–प्रवृत्त कराना और उस चोरी की वा चोर की मन से प्रशंसा करना, चोरी करना अच्छा मानना ये सब स्तेनप्रयोग है, ऐसा जानना चाहिए।

तदाहृतादान – चोर के द्वारा लाये गये द्रव्य को ग्रहण करना तदाहृतादान है। अपने द्वारा जिसके उपाय नहीं बताये गये हैं और न जिसकी अनुमोदन ही की है ऐसे चोर के, चोरी करके लाए हुए द्रव्य को खरीदना तदाहृतादान है; ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न – तदाहृतादान में क्या दोष है?

उत्तर – चोरी का माल खरीदने (तदाहृतादान) से, पर–पीड़ा, राज भय आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। इसके विरुद्ध राज्यातिक्रमण आदि भी जानना चाहिए। अर्थात् राज्य के विरूद्ध कार्य करने पर भी पर–पीडा, राजभय आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं।

विरूद्धराज्यातिक्रम – उचित न्याय से अधिक भाग को ग्रहण करना अतिक्रम है। उचित न्यायभाग से अधिक भाग दूसरे उपाय से ग्रहण करना अतिक्रम कहलाता है। विरुद्धराज्य (राज्य के नियम विरुद्ध) राज्य परिवर्तन के समय अल्प मूल्य वाली वस्तुओं को अधिक मूल्य की बताना। अर्थात् अल्प मूल्य प्राप्त वस्तु को महामूल्य में देने का प्रयत्न करना विरूद्धराज्यातिक्रम है।

हीनाधिकमानोन्मान – क्रय–विक्रय प्रयोग में कूटप्रस्थ, तराजू को हीनाधिक रखना हीनाधिकमानोन्मान है। प्रस्थादि मान कहलाता है और तराजू आदि उन्मान। दूसरे को देते समय कम बाँटों (कम वाले बाँटो) से देना और लेते समय अधिक वजन वाले बाँटो का प्रयोग करना हीनाधिकमानोन्मान कहलाता है।

प्रतिरूपक व्यवहार – कृत्रिम सुवर्ण आदि बनाना प्रतिरूपक व्यवहार है। कृत्रिम सुवर्ण आदि के द्वारा वञ्चनापूर्वक व्यवहार करना अर्थात् कृत्रिम वस्तुओं को असली वस्तु में मिलाकर दूसरों को ठगना प्रतिरूपक व्यवहार कहलाता है। ये अदन्तादान विरति के पाँच अतिचार हैं।

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः।(26)

मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमंत्र भेद ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

मिथ्योपदेश – मिथ्या, अन्य परिवर्तन या यथार्थ क्रियाओं का छिपाना

मिथ्योपदेश है। अभ्युदय और निःश्रेयसार्थक क्रियाओं में अन्यथा प्रवृत्ति करा देना या उनके प्रति उल्टी बात कहना मिथ्योपदेश कहलाता है।

रहोभ्याख्यान – संवृत्त (गुप्त) का प्रकाशन रहोभ्याख्यान है। स्त्री–पुरूषों के द्वारा एकान्त में किये गये रहस्य (संकेत, बातचीत आदि) का उद्‌घाटन करना रहोभ्याख्यान है ऐसा जानना चाहिये ।

कूटलेखक्रिया – परप्रयोग से अनुक्त पद्धतिकर्म कूटलेखक्रिया है। किसी के नहीं कहने पर भी किसी दूसरे की प्रेरणा से यह कहना कि– 'उसने ऐसा कहा है या ऐसा अनुष्ठान किया है' इस प्रकार वञ्चन के निमित्त (ठगने के लिए) लेख लिखना कूटलेखक्रिया है। अर्थात् दो नम्बर की बही–खाता लिखना आदि।

न्यासापहार– हिरण्य आदि निक्षेफ में अल्पसंख्या का अनुज्ञा वचन न्यासापहार है। सुवर्ण आदि गहना रखने वाले द्वारा भूल से अल्पशः (कम) माँगने पर जानते हुए भी 'जो तुम माँगते हो ले जाओ' इस प्रकार अनुज्ञा वचन कहना, उसका कम देना न्यासापाहार नामक अतिचार कहलाता है।

साकारमन्त्रभेद – प्रयोजन आदि के द्वारा पर के गुप्त अभिप्राय का प्रकाशन सकारमन्त्रभेद है। प्रयोजन, प्रकरण, अङ्गविकार अथवा भूक्षेप आदि के द्वारा दूसरे के अभिप्राय को जानकर ईर्ष्यावश उसे प्रकट कर देना साकारमन्त्रभेद है। ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

स्वयंमेव परिग्रह एक बहुत बड़ा पाप है और उस परिग्रह के निमित्त से झूठ बोलना, मायाचारी करना, ठगना, चोरी का माल लेना व देना आदि पाप भी किये जाते हैं। इतना ही नहीं परिग्रह के कारण एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों तक की हिंसा हो जाती है व की भी जाती है। इसलिए परिग्रह संचय में पाँचों पाप हो जाते हैं। इतना ही नहीं, परिग्रह के कारण जीव क्रोध भी करता है, परिग्रहरूपी पाप बढ़ने पर अर्थात् धन बढ़ने पर उस पाप के लिए (धन के लिए) घमण्ड भी करता है, उसकी सुरक्षा के लिये मायाचारी भी करता है, परिग्रह अर्जन करने के लिये लोभ करता है और परिग्रह बढ़ जाने पर लोभ और भी बढ़ जाता है। इसलिए जैन धर्म में नरक गति के लिये परिग्रह को मुख्य कारण बताया गया है। यथा –

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकास्यायुषः । (15)

बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह वाले का भाव नरकायु का कारण आस्रव है।

प्राणियों को दुख पहुँचाने वाली प्रवृत्ति करना आरम्भ है। यह वस्तु मेरी है इस प्रकार का संकल्प रखना परिग्रह है। जिसके बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह हो वह बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह वाला कहलाता है और उसका भाव बह्वारम्भ परिग्रहत्व है। हिंसा आदि क्रूर कार्यों में निरन्तर प्रवृत्ति, दूसरे के धन का अपहरण, इन्द्रियों के विषयों में अत्यन्त आसक्ति तथा मरने के समय कृष्ण लेश्या और रौद्रध्यान आदि का होना नरकायु के आस्रव हैं।

''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' अर्थात् परस्पर सहायता करना यह जीवों का उपकार है। कृषक खाद्य–वस्तु देकर तो श्रमिक श्रम देकर तो बुद्धिजीवी बुद्धि से दूसरों को सहायता पहुँचाते हैं तो दूसरों से भी वे धन, व्यवस्था, उपकरणादि रूप से सहायता प्राप्त करते हैं। इतना ही नहीं, प्रकृति के समस्त जीव, जन्तु, पदार्थ भी परस्पर उपकार करके ही सहावस्थान करते हैं। जैसा कि वृक्षसे फल, लकड़ी, प्राणवायु, बीज आदि प्राप्त होता है, गाय आदि दुधारू–पशु से दूध प्राप्त होता है। इस सहयोग, आदान–प्रदान के कारण व्यवस्था सुचारु–रूप से चलती है। जैसा कि गाय को तो उचित रूप से भोजनादि देकर उससे उचित रूप से दूध प्राप्त करना योग्य है। परन्तु भोजनादि न देकर उससे अधिक दूध शोषण करना अयोग्य हैं वैसा ही धमार्जन में भी होना चाहिए।

व्यापारियों का कर्तव्य है कि उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति करके उपभोक्ताओं से उचित पारिश्रमिक रूप से उस वस्तुओं के मूल्य से कुछ अधिक मूल्य ले न कि शोषण, मिलावट नकली वस्तु रूप से । इसी प्रकार सरकारी कर्मचारी प्राइवेट कर्मचारी, से लेकर न्यायधीश, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तक सब लोक सेवक हैं। वे अपने–अपने कार्यक्षेत्र में लोगों की सेवा करके उसके परिवर्तन में पारिश्रमिक रूप से धन प्राप्त करना न्यायोचित है। परन्तु रिश्वत/घूस लेकर कार्य करना महान्–अन्याय है, पाप है, भ्रष्टाचार है। इस से कार्यों में व्यवधान होता है, प्रामाणिकता घटती है, कर्तव्यनिष्ठा नष्ट होती है, राष्ट्र का पतन होता हैं, खाद्यवस्तु के मिलावट से जनता के स्वास्थ्य नष्ट के साथ–साथ अनकों की मृत्यु तक हो जाती है। वर्तमान में प्रायः दिखाई देता है कि अनेक लोग अनैतिक व्यापार, हिंसात्मक व्यापार, निषिद्ध व्यापार आदि करके धन कमाते हैं और उससे दानादि करके धर्म करना चाहते हैं। जैसे–कुछ व्यक्ति स्वयं तो शराब नहीं पीते किन्तु शराब की फैक्ट्रियाँ, दुकाने चलाते हैं। कुछ व्यक्ति स्वयं तो बीड़ी नहीं पीते

परन्तु बीड़ी की फैक्ट्री में बीड़ी बनवाते हैं व दुकान पर बेचते हैं। कुछ व्यक्ति खुद तो माँस नहीं खाते किन्तु डालडा में चर्बी मिलाकर दूसरों को खिलाते हैं। कुछ व्यक्ति स्वयं चर्म निर्मित वस्तुओं का प्रयोग नहीं करते परन्तु चर्म की विभिन्न सामग्रियाँ यथा – जूते, चप्पल, बेल्ट, सूटकेस, मनीबैग आदि का निर्माण करके विक्रय करते हैं। वे सोचते हैं कि हम तो स्वयं नहीं खाते, प्रयोग में नहीं लाते, हम तो केवल धन कमाने के लिए, व्यापार रूप में प्रयोग लाते हैं इसमें हमारा क्या दोष? परन्तु उन्हें जान लेना चाहिए कि केवल पाप कृत रूप में नहीं होता हैं परन्तु पाप मनसा, वचसा, कर्मणा, कृत, कारित, अनुमोदना से भी होता है। उनकी सोच ऐसी है कि हम विष पीते नहीं, पिलाते हैं। विष पीने से तो स्वयं की एक ही हत्या होती है किन्तु विष पिलाने से अनेक व्यक्तियों की हत्या होती है। इसी प्रकार माँस खाने से, बीड़ी, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करने से तो स्वयं पाप कमाता है परन्तु इसके उत्पादन एवं विक्रय से तो स्वयं भी पाप कमाता है एवं दूसरों से भी पाप करवाता है, हिंसा करवाता है। इन हिंसात्मक व्यापारों से हिंसा के साथ–साथ पर्यावरण भी दूषित हो जाता है। विश्व में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हिंसा व अत्याचार को प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए उपर्युक्त निषिद्ध व्यापार जो करता है वह कभी धार्मिक नहीं हो सकता।

19- गुरु की सेवा : जीवन्त भगवान की सेवा

धर्म की साक्षात् जीवन्त मूर्ति स्वरूप, अन्तरंग–बहिरंग ग्रन्थियों से विमुक्त, सांसारिक पापात्मक कार्य के जो त्यागी है वे गुरु हैं। उनकी सेवा, विनय आदि करना गुरूपास्ति है। गुरु के बिना धर्म का यथार्थ प्रतिपादन संरक्षण, संवर्धन नहीं हो सकता है इसलिये गुरु के बिना धर्म भी स्थिर नहीं रह सकता है। धर्म बिना सुख नहीं है। इसलिये सुख के लिये गुरुओं की सेवा नित्य करना चाहिये।

गुरु सेवा का फल–

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेभोगो दानादुपासनात्पूजा ।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपो निधिषु

(श्रावकाचार – समन्तभद्राचार्य)

गुरुओं को प्रणाम करने से उत्तम गोत्र की प्राप्ति होती है, दान देने से उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति होती है। उपासना करने से स्वयं की पूजा होती है, भक्ति करने

से काम देव सदृश्य लावण्य युक्त सुन्दर शरीर की प्राप्ति होती है, स्तवन करने से कीर्ति दशों दिशाओ में फैलती हैं। कवि ने कहा है –

गुरु गोविन्द दोनों खडे काके लागु पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय॥
गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं तथा देन्यं सर्वं सज्जन संगमः॥

गंगा के स्नान से ताप नष्ट हो जाता है, चन्द्र किरण से संताप नष्ट होता है, कल्पवृक्ष से दरिद्रता नष्ट होती है, परन्तु (गुरु) की संगति से पाप, ताप तथा दीनता सर्व एक साथ विलीनता को प्राप्त होती हैं।

गुरु भक्ति सती मुक्त्यै, क्षुद्रं किं वा न साधयेत्।
त्रिलोकी मूल्य रत्नेन, दुर्लभः किं तुषोत्करः ॥

यदि गुरु भक्ति से मोक्ष रूपी अत्यन्त मूल्यवान वस्तु मिल सकती है, तो क्या अन्य क्षुद्र कार्यों की सिद्धि नहीं हो सकती है?

जिस अमूल्य रत्न से त्रिलोक मिल सकता है, उस रत्न से क्या सामान्य तुष नहीं मिल सकता है? अर्थात् निश्चय से मिल सकता है। इसलिये हितकांक्षियों को सतत् प्रयत्नशील होकर गुरुओं की सेवा करनी चाहिये। एक कवि ने कहा भी है –

हरिसु जनसु हेत कर, कर हरिजन सु हेत ।
माल मुलक हरि देत है, हरि जन हरि ही देत॥

भगवान की सेवा करने से भगवान् धन सम्पत्ति दे सकते हैं, परन्तु गुरुओं की सेवा करने से गुरुजन, भगवान को ही दे देंगे।

प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रान्ति हुई है, हो रही है और होगी उसका मूल कारण गुरु ही है। गुरू एक क्रान्तिकारी, सत्य–शोधक, नवीन–नवीन तथ्य के उन्नायक महापुरूष होते हैं। गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। अलेक्जेंडर (सिकन्दर) महान् बना अरस्तु के कारण, चन्द्रगुप्त मौर्य दिग्विजयी बना गुरू कौटल्य/चाणक्य के कारण, शिवाजी छत्रपति बना गुरू समर्थ रामदास के कारण, मोहनदास, महात्मा गाँधी बने रायचन्द्र जैन के कारण। इसी प्रकार ऐतिहासिक काल के पहले ही राजा महाराजा, सम्राट भी गुरूओं के चरण के

सानिध्य में जाकर ज्ञान-विज्ञान, आत्मविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्ध विद्या, कला कौशल, गुरुओं से ग्रहण करते आ रहे हैं।

गुरु विना सर्वे भवन्ति पशुभिः सन्निभाः ।

गुरु के विना मनुष्य पशु के सदृश्य हैं।

''गुरु विना कौन दिखाये वाट, अवगड डोंगर घाट''

गुरु के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा ? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुःरूह, भयंकर जंगलघाट के समान है। उसको पार करने के लिये गुरु रुपी मार्गदर्शक की नितान्त आवश्यकता है।

गुरुओं को आहार दान –

''शरीरमाद्यम खलु धर्म साधनम्'' धर्म साधन के लिए शरीर सर्वप्रेष्ठ एवं प्रथम साधन है। योग्य शरीर से धर्म साधन विशेष होता है। आहार के बिना शरीर दुर्बल हो जाता है। शरीर रक्षा के लिये आहार चाहिये। आहार के बिना शरीर स्थिर नहीं रह सकता है। क्षुधा एक भयंकर रोग है। क्षुधारूप रोग से सम्पूर्ण शरीर जलने लगता है, शरीर दुर्बल हो जाता है, इन्द्रिय- मन एवं अवयव शिथिल पड़ जाते हैं, जिसके कारण धर्म साधन विशेष नहीं हो पाता है, इसलिए क्षुधारूपी रोग को दूर करने के लिये भोजन रूपी औषधि की नितान्त आवश्यकता है। सर्व आरम्भ, परिग्रह त्यागी साधु केवल भीक्षा से प्राप्त अन्न से ही उदर पोषण करते हैं, जिससे उनकी धर्म-साधना उत्तम रीति से चलती रहे। इसलिये सद्-गृहस्थों का पवित्र श्रेष्ठ कर्तव्य है कि ऐसे धर्मात्मा साधु पुरुषों को शुद्ध आहार दान दें, उनकी रक्षा करें जिससे धर्म की भी रक्षा होगी। धर्म की रक्षा से विश्व में सुख शान्ति फैलेगी।

दानं दुर्गतिनाशाय शीलं सद्गति कारणं।
तपः कर्म विनाशाय भावना भव नाशिनी ॥

दान से दुर्गति नाश होती है, शील से सद्गति मिलती है, तप से कर्म नाश होता है, भावना से संसार नाश होता है।

जो मुणि भुत्तवसेसं भुंजइ सो भुंजए जिणुवदिट्ठं।
संसार सार सोक्खं कमसो णिव्वाण वर सोक्खं ॥22॥

(रयणसार)

जो मुनिश्वरों का आहार दान देने के पश्चात् अवशेष अन्न को प्रसाद समझकर सेवन करता है वह संसार के सारभूत उत्तम सुखों को प्राप्त होता है और क्रम से मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इससे सिद्ध होता है कि अतिथियों को पहले आहार दान देकर उसके पश्चात् ही सदगृहस्थ भोजन करता है। गाँव में साधु नहीं होने पर भी आहार के समय में द्वारप्रेक्षण करना चाहिए अर्थात् साधु कहीं से आ रहे हैं या नहीं इसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये । यदि आ रहे हैं तो उनका स्वागत करके भोजन देना चाहिये।

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथिनां प्रतिपूजा रूधिरमलं धावते वारि ॥14॥

(रत्नकरण्ड)

गृहस्थ के गृह सम्बन्धी आरम्भ, कृषि, व्यापार, भोजनादि बनाने से जो पापरूपी कलंक लिप्त होता है उस कलंक को धोने के लिये गृह त्यागी अतिथि मुनियों को आदर पूर्वक दान देने से वे कर्म धुल जाते हैं जैसे रक्त से लिप्त कपड़ा पानी से धोने से स्वच्छ हो जाता है।

भोजन-विधि एवं विशेष ध्यान देने योग्य बातें –

आहार चर्या के समय पूजादि के बाद जब महाराज श्री के खड़े होकर मंत्र बोलने के बाद पानी देने के बाद दूध दें। दूध के बाद पित्तशमक मिष्ठान्न व गरिष्ठ मेवे दें। इसके बाद भोजन दें। मध्य-मध्य में थोड़ा-थोड़ा पानी भी दें। दूध के बाद खट्टी चीज वं खट्टी चीज के बाद दूध नहीं दें। फलरस और फल के बाद पानी न दें। तथा पानी के बाद फलरस न दें। दूध के बाद साथ या आगे या पीछे साग(भाजी) और नमकीन नहीं देना चाहिए। फल बनाने के पहले फलों को स्वच्छ पानी से धोवें। बनाने के बाद धोने से विटामिन नष्ट हो जाते हैं, खांसी हो जाती है एवं गला खराब हो जाता है। साबुत फल एवं बीज सहित फल नहीं देना चाहिए।

आहार क्रिया के समय हाथ-पैर, बर्तनादि को धोने के लिए शुद्ध गरम जल का ही प्रयोग करना चाहिए। आहार देते समय हाथ को शरीर या अशुद्ध वस्तु से स्पर्श नहीं करना चाहिए। साधु के चौके में जाने के बाद फल बनाना, भोजन बनाना आदि न करे। भक्ति करके अंजुलि जोड़ने के बाद पानी भोजनादि परोसना चाहिए। एक कार्योत्सर्ग (9 बार णमोकार मंत्र बोलने जितने समय) तक हाथ

खाली रहने से साधु भोजन त्याग कर देते हैं। बहुत कम या बहुत अधिक आहारादि न परोसे। भोजन देते समय बार–बार यह दूँ, वह दूँ, ऐसा पूछकर नहीं देना चाहिए। अर्थात् जिस भोजन का त्याग साधु का नहीं है उस भोजन को जब तक साधु लेवे तब तक देते रहें। या अन्य भोजन देना है तो स्वयमेव विवेकपूर्वक विधि पूर्वक देना चाहिए।

आहार देते समय छीना–झपटी, हाथा–धापी, गडबड़ असावधानी व शोर–शराबा, कलह, तनाव, अशांत, जल्दबाजी आदि नहीं होना चाहिए। विशेष आवश्यकता बिना अपना चौका छोक छोड़कर दूसरों के चौके में नहीं जाना चहिए। अनेक आहार देने वाले हो तो अलग–अलग भोजन की वस्तु लेकर रहना चाहिए। उस चीज का सेवन करने के बाद आहार के लिए देना चाहिए। न कि एक ही वस्तु को लेकर रहना चाहिए। जिस बर्तन में साधु का झूठन गिरता है उसमें मक्खी आदि जीवों को बैठने नहीं देना चाहिए। आहार दाता के हाथों में उंगलियों पर लम्बे–लम्बे नाखून नहीं होना चाहिए। हाथ गन्दा नहीं होना चाहिए। अच्छी तरह शरीर शुद्धि करना चाहिए एवं दन्त मंजन करके मुंह शुद्धि करना चाहिए, जिससे शरीर एवं मुँह से दुर्गन्ध नहीं आवे। चौका के प्रत्येक बर्तन को गर्म पानी से स्वच्छता से धोकर एवं स्वच्छ चौका के कपड़ों से पोछकर काम में लाना चाहिए।

20- अतिथि सत्कार

अतिथि को देव बनकर दूसरों के यहाँ जाना चाहिये न कि दानव बनकर। अतिथि गृहस्थों के जीवन्त देव हैं। वे देने के लिये आते हैं। उनके साथ डाकू सा व्यवहार न करें।

अतिथि देवो भवः॥ अर्थात् 'अतिथि देव है' यह मानव–संस्कृति का एक संवेदशील अंग है। उत्कृष्ट यथार्थ अतिथि तो सर्वत्यागी, सर्व हितकारी साधु होते हैं। वे बिना निमंत्रण से बिना, तिथि से स्वेच्छा से आते हैं। इसलिए उन्हें अतिथि कहते हैं। उनके लिए न कोई अपने होते हैं, न कोई पराये होते हैं। वे सब को अपना मानने के कारण तथा सब उन्हें अपना मानने के कारण उनकी भोजनादि की व्यवस्था, सेवा, सुरक्षादि करना गृहस्थों का पवित्र कर्तव्य होता है। इसके साथ–साथ जो धार्मिक सज्जन, महानुभाव बिना निमंत्रण गुरुओं के दर्शन, प्रवचन–श्रवण, सत्संग, तीर्थयात्रा धार्मिक कार्यक्रम में आते हों उन्हे भी व्यवहार से अतिथि कहते हैं। इसके अतिरिक्त जो अन्य ग्राम नगर, देश आदि से आते है उन्हें भी

रुढि से अतिथि कहते हैं और बिना निमंत्रण से जो महानुभाव आते है उन्हें अतिथि कहते है और निमंत्रण देने से जो आते हैं उन्हें अभ्यागत कहते हैं। सामान्यतः दोनों को ही अतिथि/मेहमान रूप से सम्बोधन करने का अभी प्रचलन है। जिनके यहाँ आते हैं उन्हें आतिथेय, यजमान/मेजबान कहते हैं। मेहमान अब आतिथेय/मेजबान के यहाँ आते हैं उनका प्रेम से स्वागत करना चाहिए, परस्पर में प्रणाम/नमस्कार आदि करना चाहिए, कुशल–क्षेम पूछना चाहिए, पैर धौने के लिए पानी देना चाहिए, उच्चासन पर बैठाना चाहिए, थकान दूर करने के लिए सेवा करनी चाहिये, प्रेम रस से भरा हुआ भोजन करवाना चाहिए। इसके उपरान्त विश्राम करवाना चाहिए। इसके अनंतर आने का प्रयोजन पूछना चाहिए और अपनी शक्ति/क्षमता के अनुसार उनके प्रयोजन पूर्ति के लिए सहायता करनी चाहिए। जब तक वे रहें तब तक आदर सत्कार से उनकी सेवा करनी चाहिए। कहा भी है:–

दो मिले चार खीले, बीस रहे कर जोड़।
सज्जन से सज्जन मिले, सात करोड़ पुलकित होय।

अर्थात् दो सज्जन मिलने से दोनों की चारों आँखे खिल उठती है/सजल हो जाती, दोनों परस्पर को प्रणाम करने के लिए हाथ जोड़ते हैं जिससे उनकी बीस अंगुलियाँ मिल जाती है, तथा दोनों के 3.1/2 करोड + 3. 1/2 करोड रोम हर्ष से पुलकित हो ऊठते हैं।

जब वे वापिस जाते हैं तब जाने की व्यवस्था करनी चाहिए, पहुँचाने के लिए कुछ दूर तक उनके साथ जाना चाहिए। अन्त में परस्पर प्रणाम करके "आपकी यात्रा सफल रहे" कहे तथा "पुनः आने की कृपा करे॥" कहें अतिथि अपने घर पहुँचने पर परस्पर के क्षेम–कुशल जानने के लिए पत्र प्रेषित करें या फोन आदि करें।

अतिथि के कर्तव्य

जो अतिथि (गृहस्थ मेहमान) है, उनके भी कुछ कर्तव्य होते हैं। यजमान को किसी भी प्रकार के कष्ट न हो ऐसा व्यवहार होना चाहिए। संभव हो तो यजमान को पूर्व से ही यह सूचना पहुँचाना उत्तम होगा कि कितने व्यक्ति, किस समय में कितने समय के लिए आ रहे हैं। इससे यजमान अतिथि–सत्कार उचित रूप

से कर सकता है। यजमान के यहाँ अतिशय रूप से बन–ठन कर नहीं जाना चाहिए। आडम्बर पूर्ण व्यवहार या बातें नहीं करनी चाहिए। आतिथ्य में कुछ कमी होने पर ताना मारना, चिढ़ना, नाराज होना, नीचा दीखाना आदि करना अतिथि के गौरव के विपरीत है। यजमान से अति आदर–सत्कार, अति व्यवस्था, अधिक खान–पान, शैर–सपाट की चाह रखना अपनी तुच्छता का ही परिचायक है। यजमान का कर्तव्य है कि अतिथि को अधिक से अधिक रहने की प्रार्थना करना परन्तु अतिथि का कर्त्तव्य है कि अपना उद्देश्य/काम पूर्व होने के बाद वापिस चले जावे। क्योंकि अधिक दिन रहने से यजमान को भी विभिन्न समस्यायें झेलनी पड़ती है, अतिथि सत्कार में शिथिलता आती है।

अभी अतिथि सत्कार प्रायोगिक रूप से ग्राम में कुछ दिखाई देता है परन्तु नगरादि में यह परम्परा प्रायः सुप्त है, मृत है। प्रायः नगर के लोग अतिथियों का सत्कार नहीं करते हैं, उनकी रहने, की भोजन–पानी की भी व्यवस्था नहीं करते हैं। जान–पहिचान वाले भी अनजान सा व्यवहार करते हैं। कभी कभार व्यवस्था करनी पड़ती है तो केवल औपचारिकता मात्र रह जाती है। उसमें जीवन्तता, मधुरता, सहजता, आत्मीयता, तत्परता आदि नहीं रहती है। नगरवाले जब ग्राम में आते हैं तब ग्राम वाले उनका खूब आदर–सत्कार से सेवा/व्यवस्था करते हैं परन्तु वही ग्रामवासी जब नगर में जाते हैं तब नगर वाले पानी तक के लिए भी नहीं पूछते हैं। कदाचित् यदि ग्राम में व्यवस्था में थोड़ी कमी हो जायेगी तो नगर वालें ग्रामबालों की खिल्ली उड़ायेंगे और उन्हें गाँवड़ी, अनाड़ी, असभ्य, अशिक्षित बोलेंगे। इसी प्रकार भेदभाव पूर्ण व्यवहार धनी–गरीब, मालिक मजदूर, पीयर (बेटी वाला पक्ष) ससुराल (लड़का वाला पक्ष) में स्पष्ट रूप में दिखाई देता है जो कि आतिथ्य – सत्कार रूपी पवित्र परम्परा के लिए अभिशाप स्वरूप है। श्री कृष्ण – सुदामा, श्रीकृष्ण–विदुर, श्रीराम–शबरी, श्रीराम–केवट के उदाहरण अतिथि–सत्कार के लिए प्रेरणादायी उदाहरण है।

प्रीतिभोज एवं उसकी विकृति

शादी–विवाह, पंचकल्याण, विधान, उत्सवादि में अतिथि सत्कार के लिए, परस्पर प्रेम बढ़ाने के लिए, सुव्यवस्था/प्रभावना के लिए प्रीति–भोज/पंक्ति–भोज/जिमण की परम्परा है। सब लोग जूते–चप्पल दूर रखकर, हाथ–पैर–मुँह धोकर स्वच्छ–पवित्र स्थान में पंक्ति बद्ध रूप में बैठकर शुद्ध–पवित्र भोजन करते हैं।

कुछसज्जन जूते–चप्पल दूर निकाल कर हाथ–पैरादि धो कर प्रेम से आवश्यकतानुसार परोषते हैं। सब कोई प्रेम से शान्ति से भोजन के बाद एक साथ झूठे पात्रादि ऊठाकर एक स्थान में रखकर हाथ–पैर–मुँह धोते हैं। मुख शुद्धि के लिए सौंप, एलायची आदि दी जाती हैं। झूठन छोड़कर लक्ष्मी/भोजन को बर्बाद नहीं किया जाता है। परन्तु प्रायोगिक रूप से देखने में आता है कि अशुद्ध व्यक्ति द्वारा अशुद्ध पद्धति से बना हुआ अशुद्ध भोजन जूते–चप्पल पहनकर अशुद्ध स्थान में यत्र–तत्र खड़े होकर या बैठकर शोर शराबा करते हुए भोजन करते हैं। झूठन भी बहुत छोड़ देते हैं ? झूठन पात्र भी ऊठाकर एक स्थान में नहीं रखते हैं। जिस देश में लाखों व्यक्ति भूखे, नंगे, गरीब है उस देश में ऐसा काम बहुत चिन्ता जनक है। लक्ष्मी/अन्न का अपमान है। कुछ स्थान में मद्य, माँस, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि का भी प्रयोग किया जाता है तो कभी–कभी झगड़ा, कलह आदि हो जाते हैं। कभी–कभी तो अशुद्ध भोजन के कारण अनेक व्यक्ति अस्वस्थ हो जाते हैं तो कुछ मर भी जाते हैं। कभी–कभी अतिथिगण यजमान को परेशान करते है उन्हें अपमानित करते हैं, उनसे झगड़ा करते हैं, उनके सामान को बर्बाद करते हैं।

मृत्यु–भोज एवं उसकी विकृति

प्रीतिभोज / अतिथि–सत्कार का दुरुपयोग बहुत हुआ है और हो रहा है। जो गरीबी के कारण प्रीति–भोज देने के लिए असमर्थ है उससे भी समाज के लोग प्रीति–भोजन देने के लिए बाध्य करते हैं, नहीं देने पर उसके ऊपर विभिन्न प्रकार के दबाव डालते हैं, उसकी निन्दा करते हैं। संभवतः पहले कोई मरने पर उसके दाह–संस्कार के लिए सान्त्वना देने के लिए जो अतिथि आदि दूर से आते थे उनकी भोजनादि की व्यवस्था सामूहिक रूप से होती होगी परन्तु धीरे–धीरे यह व्यवस्था विकराल रूप धारण कर ली। मृत्यु संस्कार के नाम पर अनेक बार भोजन, वस्त्र, बर्तन, दान–दक्षिणा धनादि देना प्रारम्भ हो गया। असमर्थ गरीब व्यक्ति को भी अपने सामर्थ्य से भी अधिक खर्च करना पड़ता है भले उसे घर, जमीन, अलंकारादि भी क्यों न बेचना पड़े, जीवन भर मृत्यु की यातना क्यों न सहन करनी पड़े। यह सब अत्यन्त क्रूर, निष्ठुर, दयाहीन, हिंसक, शोषणकारी, अपमान कर, अमानवीय कार्य हैं। क्योंकि एक तो परिवार से मरने के कारण परिवार के लोग दुःखी रहते है अतः उन्हें सान्त्वना देनी चाहिए, सहायता करनी चाहिए, भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए परन्तु इससे पूर्ण विपरीत कार्य होता है। मरने

वाला तो मरा परन्तु जीवित वालों को भी जीवन्त दफना देते हैं। विवाह, पर्व, जन्मोत्सव, धार्मिक अनुष्ठान आदि कार्य में प्रसन्नता के कारण प्रीति- भोज दिया जाता है परन्तु मृत्यु जैसे मातम में कैसे भोज किया जावे तथा दिया जावे ? मृत्यु-भोज के दोष समझाने पर नई पीढी तो त्याग कर देती परन्तु पुरानी पीढ़ी त्याग नहीं करती है तथा विभिन्न कुतर्क करती है एवं और भी नई समस्या/लडाई प्रारम्भ कर देती है। इससे सिद्ध होता है कि नई पीढी तार्किक, उदार, प्रगतिशील है तो पुरनी पीढ़ी, रूढिवादी, अनुदार, प्रतिलोमी है।

21- सेवाधर्म : जीवन्त धर्म

प्रत्येक जीव सुख चाहता है तथा दुःख से घबराता है। इसलिये जिससे सुख प्राप्त होता है उसे धर्म कहते हैं और जिससे दुःख प्राप्त होता है उसे अधर्म कहते हैं। इसलिये कहा गया है –

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते ।

अर्थात् धर्म समस्त सुखों को करने वाला है और हितकर है इसलिए हे ज्ञानी पुरुष! धर्म का संचय करो। और यह धर्म निश्चयतः आत्मा की पवित्रता और व्यवहारतः दूसरों के प्रति उत्तम व्यवहार है। जब आत्मा में दया, करुणा, निर्लोभता, परोपकारिता आदि गुण प्रगट होते हैं तब व्यवहार से उसे दूसरों की सेवा आदि होती है। अन्तरंग की पवित्रता से व्यक्ति स्वयं सुखी होता है तो दूसरों की सेवा से दूसरे भी सुखी होते हैं। इतना ही नहीं स्वात्म की पवित्रता ही स्व जीवन्त धर्म है तो दूसरों की सेवा दूसरे में निवास करने वाले जीवन्त भगवान या धर्म की सेवा है । क्योंकि –

''न धर्मो धार्मिकैर्विना'' अर्थात् धर्मात्माओं के बिना धर्म नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है कि वस्तुतः धर्म धार्मिक व्यक्ति के अन्दर होता है अथवा सरल रूप में कहने पर धार्मिक व्यक्ति ही धर्म है। अतः जो धार्मिक व्यक्ति की सेवा करता है वह साक्षात् धर्म की सेवा करता है। मन्दिर, मूर्ति, धर्म क्षेत्र आदि तो धर्म के प्रतीक है। जिस प्रकार भारत के मानचित्र में, भारत के राष्ट्रीय ध्वज या चिह्न में भारत नहीं होता है परन्तु भारत के भूभाग एवं भारत में निवास करने वाले मनुष्य एवं पशु-पक्षी में होता है। इसलिए वह वस्तुतः राष्ट्र प्रेमी देशभक्त है, जो 'भारत के भूभाग तथा विशेषतः भारत में निवास करने वाले मनुष्य, पशु-

पक्षी आदि से भी प्रेम करता हो। परन्तु जो केवल दिखावे के लिए भारतीय झण्डा आदि का तो सम्मान करता है परन्तु भारतीयों से तथा भारत की अच्छी सभ्यता, संस्कृति, परम्परा से गददारी करता हो, घृणा करता हो, उसे क्षति पहुँचाता हो तो वस्तुतः वह देशभक्त नहीं है परन्तु देश-द्रोही है। इसी प्रकार जो केवल कुछ धार्मिक प्रतीकों की तो पूजा करता है परन्तु जीवन्त धर्म स्वरूप धार्मिक व्यक्ति की सेवा आदि नहीं करता है तो वह धर्म द्रोही, जड़पूजक, धर्म बाह्य है।

प्रायः देश-विदेश के समस्त धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, वैज्ञानिक आदि महापुरुषों की सबसे बड़ी विशेषता यदि कुछ है तो वह है भाव की पवित्रता और दूसरों के प्रति दया, सेवा, परोपकारिता। जैन धर्म के अनुसार साक्षात् तीर्थंकर भी दिव्य वाणी से ज्ञान दान देकर केवल मनुष्य और देवों का उपकार नहीं करते हैं परन्तु व्याघ्र, सिंह, गाय आदि पशु-पक्षियों का भी उपकार करते हैं। पार्श्वनाथ भगवान जब राजकुमार थे तब उन्होंने जलते हुए नाग-नागिनी को णमोकार मंत्र सुनाया जिससे वे मरकर धरणेन्द्र एवं पदमावती हुए। राजकुमार जीवन्धर ने भी मरते हुए कुत्ते को णमोकार मंत्र सुनाया जिससे वह मरकर यक्ष हुआ। नारायण कृष्ण ने रोगी मुनि के लिये औषधि युक्त लड्डू की व्यवस्था की थी जिससे उन्हें तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ। नारायण कृष्ण के पिताजी वसुदेव ने पूर्वभव में मुनि अवस्था में दूसरे रोगी मुनि की भोजन आदि की व्यवस्था की थी जिसके कारण वे निदान करके वासुदेव हुए परन्तु यदि वे निदान नहीं करते तो वे उस पुण्य से तीर्थंकर हो जाते। महाबली भीमसेन ने पूर्वभव में दूसरे मुनियों की सेवा की थी जिसके कारण वे बलशाली बने तथा उस प्रभाव से विष से भी नहीं मरे। शास्त्र में वर्णन पाया जाता है कि जो सेवा करता है वह तीर्थंकर बनता है। तीर्थंकर प्रकृति बन्ध में जो सोलह कारण भावना हैं उनमें से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से तथा पूर्ण एवं आंशिक रूप से (1) दर्शनविशुद्धि (2) विनय सम्पन्नता (3) शक्ति के अनुसार त्याग (4) शक्ति के अनुसार तप (5) साधु-समाधि (6) वैयावृत्य करना (7) अरिहन्त भक्ति (8) आचार्य भक्ति (9) बहुश्रुत भक्ति ऐसी नौ भावनायें वैयावृत्य/सेवा के अन्तर्गत आती हैं। इसी से सेवा की महत्ता, ज्येष्ठता, श्रेष्ठता तथा उपादेयता की सिद्धि हो जाती है।

हिन्दू (वैदिक) धर्म के अनुसार भी अवतारी पुरुष, महापुरुष, ऋषि-मुनि आदि ने सेवा धर्म को स्वयं अपनाया और उसका प्रचार-प्रसार भी किया है। जीवों

की रक्षा के लिये (अभयदान, वैयावृत्य) अवतारी पुरूषों का धरती पर अवतरण होता है। नारायण कृष्ण का एक नाम ही गोपाल है। गोपाल का अर्थ है जो गायों की रक्षा करे तथा उनकी सेवा व संवर्द्धन करे। राजा रति देव ने स्वयं तथा परिवार के व्यक्तियों को भी भूखे रखकर दान से प्राप्त भोजन भी दूसरों को दे दिया। राजा दिलीप ने गाय की रक्षा के लिये स्वयं की रक्षा की भी परवाह नहीं की। संत नरसी मेहता द्वारा रचित तथा महात्मा गाँधी के प्रिय भजन की प्रथम पंक्ति में लिखा हुआ है कि **''वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे''**। तुलसीदास ने कहा कि सेवाधर्म अत्यन्त गहन है। हिन्दू धर्म में यहाँ तक परम्परा रही कि वृक्ष, नदी, पर्वत आदि की पूजा करना। इसकी मूल भावना है उनकी सुरक्षा। हिन्दू धर्म में ''मातृ देवो भव।'' ''पितृ देवो भव'' ''आचार्य देवो भव'' ''अतिथि देवो भव'' अर्थात् तुम माता में देव बुद्धि करने वाले बनो, पिता को देवरूप समझने वाले होओ, आचार्य को देव स्वरूप तथा अतिथि को देवरूप समझने वाले होओ। आशय यह है कि इन चारों को ईश्वर की प्रतिमूर्ति समझकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सदा इनकी आज्ञा का पालन, नमस्कार और सेवा करते रहना, इन्हें सदा अपने विनयपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न रखना चाहिये। जंगल में रहनेवाले ऋषि, तापसी भी पशु–पक्षी यहाँ तक कि वनस्पति को भी प्रिय पुत्र के समान प्रेम करते थे।

महात्मा बुद्ध तो साक्षात् दया, करुणा की प्रतिमूर्ति थे। बाल्यावस्था में घायल हंस के लिये राज्य को त्याग देना भी स्वीकार था परन्तु घायल हंस को चचेरे भाई देवदत्त को देना स्वीकार नहीं किया था। वे दुनिया के दुःखी प्राणी को देखकर उनके दुःखों को दूर करने के लिये समस्त राज–वैभव, अत्यन्त सुन्दरी नव विवाहिता स्त्री तथा पुत्र राहुल को भी त्याग कर सत्य की खोज में निकल पड़े। क्रूर अशोक भी उनकी करुणा से प्रभावित होकर अहिंसक परोपकारी सम्राट अशोक बन गया। उनके सुकुमार पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा भी इस दया, करुणा का प्रचार करने के लिए श्रीलंका आदि देश में गये।

केवल भारत में ही दया, परोपकार, सेवा आदि महान गुणों को स्थान मिला हो ऐसी बात नहीं है परन्तु प्रत्येक देश के प्रत्येक महान् व्यक्ति ने इसे स्वीकार किया है। ईसा मसीह तो मानो सेवा के अवतार ही थे। उनके मतानुसार ''Serve to humanity is serve to God'' अर्थात् मानव जाति की सेवा ही भगवान की सेवा है। वे कुष्ट आदि रोगों से ग्रसित रोगियों की सेवा करते थे, भूखे को

भोजन देते थे तथा असहायकों की सहायता करते थे। इतना ही नहीं, वे भेड़–बकरियों को भी प्यार करते थे, गोद में लेते थे तथा उनकी सेवा करते थे। उनकी इस सेवा भावना से ही प्रेरित होकर ईसाईयों ने सेवा को परम धर्म माना। इसलिए आज देश–विदेश में जितनी सेवा की संस्थायें हैं उनमें से अधिकांश संस्थाएँ ईसाई धर्मावलम्बियों द्वारा स्थापित, संवर्द्धित, पोषित हैं।

सेवाधर्म से ही प्रभावित होकर फ्लोरेन्स नाइटेंगल ने रोगी तथा घायलों की सेवा करके विश्व कीर्तिमान की स्थापना की। इसी प्रकार मदर टेरेसा भी थी। महात्मा गाँधी, विनोबा भावे, सुभाषचन्द्र बोस, बाबा आपटे आदि सेवा के लिए आदर्श उदाहरण हैं। एम्बूलैन्स, रेडक्रॉस, युनिसेफ, लायन्स क्लब, रोटरी क्लब, स्काउट–गाइड, भारतीय विकास परिषद, महावीर इन्टरनेशनल आदि संस्थाएँ भी परम सेवा धर्म से जुडी हुई हैं। देश विदेश के जितने अच्छे–अच्छे महान् कार्य हैं यथा विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय, चिकित्सालय, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम, अनाथालय इस महान् सेवा धर्म से प्रभावित होकर बनाये गये हैं।

शास्त्र में वर्णन पाया जाता है कि दूसरे व्यक्ति भी सेवा से प्रभावित होकर अपने हो जाते हैं। जैन धर्म के अनुसार इसे पात्रलाभ कहते हैं। विदेश में एक घटना घटी थी। एक सैनिक जंगल में जा रहा था। उसे शेर की करुण क्रन्दन ध्वनि सुनाई दी। वह सैनिक जाकर देखता है कि एक सिंह एक पैर को उठाकर रो रहा था। वह सैनिक देखता है कि उसके पैर में एक बड़ा कांटा घुसा हुआ है, वह उस कांटे को निकाल देता है। कुछ वर्ष के बाद कुछ दोष के कारण उस सैनिक को एक भूखे शेर के सामने छोड़ दिया जाता है। परन्तु यहाँ एक महान् आश्चर्य हुआ। वह बब्बर भूखा सिंह प्रेम से आकर उसके पैरों में लोट–पोट होकर गिर गया और उसे प्रणाम करने लगा। वह शेर वही शेर था जिसके पैर से सैनिक ने कांटा निकाला था। यह है सेवा का परिणाम। सेवा से एक क्रूर मांसभक्षी सिंह भी प्रेमालु दोस्त बन गया। यदि एक मांस भक्षी क्रूर शेर भी परोपकार एवं सेवा से मित्र बन सकता है तो अन्य सामान्य जीवों की बात ही क्या है ? इसके कारण ही तो माता का स्थान पिता से श्रेष्ठ है। बच्चों के ऊपर जब विपत्ति आती है तो वह सर्वप्रथम माँ का स्मरण करता है तथा माँ के पास दौड़ पड़ता है। जैनधर्म के अनुसार एक तीर्थंकर के काल में अनेक अरिहन्त और सिद्ध बनते हैं परन्तु तीर्थंकर अनेक नहीं बन पाते हैं। क्योंकि तीर्थंकर वह बन सकता है जिसमें तीव्र

परोपकार की भावना हो। इसी कारण से तो तीर्थंकर का खून दूध के समान सफेद होता है। जब तक संतान की उत्पत्ति नहीं होती है तब तक स्तनपायी मादा के स्तन में दूध का संचार नहीं होता है। संतानों की उत्पत्ति के बाद दूध का संचार होता है। इसका कारण है संतान के प्रति वात्सल्य सेवा–भाव। मनोवैज्ञानिकों तथा वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध कर लिया है कि जिस माता के हृदय में संतान के प्रति अधिक वात्सल्य होता है उसके स्तन में अधिक दूध का संचार होता है तथा कम वात्सल्य होने पर दूध का संचार भी कम होता है। कुछ शारीरिक दोष इसके लिये अपवाद हैं। यह प्रायः देखने में, सुनने में, पढ़ने में आता है कि जो दया, करुणा से प्रभावित होकर कुष्ट, हैजा, टी.बी, आदि भयंकर संक्रामक, स्पर्श रोग से ग्रसित रोगियों की सेवा करते रहते हैं उन्हें वह रोग नहीं होता है। इसका धार्मिक कारण यह है कि सेवा–भाव से पुण्य बंध होता है और पाप की निर्जरा होती है जिससे उन्हें रोग नहीं होता है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि अच्छी भावना से श्वेत–रक्त कण की संख्या बढ़ती है, रोग प्रतिरोधक शक्ति (Immunity power) बढ़ती है। इसके साथ–साथ उसके चारों ओर प्रभावशाली ओरा/प्रभामण्डल बनता है जिसके अन्दर संक्रामक रोगाणु भी प्रवेश नहीं कर पाते हैं। विज्ञान के अनुसार अच्छे व्यक्तियों के मस्तिष्क से अल्फा तरंग, बीटा तरंग, थीटा तरंग आदि अच्छी तरंगे निकलती हैं। इन सब कारणों से सेवा–भावी अत्यन्त प्रसन्न, प्रभावशाली तथा चुम्बकीय शक्ति से युक्त हो जाता है।

जो निस्वार्थ भाव से सबकी सेवा करता है उसका किसी के प्रति वैर भाव नहीं रहता है। उसका सबके प्रति प्रेमभाव होने के कारण वह किसी से भी नहीं डरता है ना उससे कोई वैर भाव रखते हैं और न उसे कोई कष्ट पहुँचाते हैं। जैन रामायण में पाया जाता है कि जब राम–रावण युद्ध चल रहा था उस समय जो सैनिक घायल हो जाते थे उनकी सेवा कुछ व्यक्ति करते थे। जो सेवा करते थे उन्हें दोनों पक्ष के सैनिक किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाते थे। इसी प्रकार वर्तमान में रेडक्रॉस, एम्बुलेंस आदि के लिये भी है। अभी पेपर में पढ़ने में आया था कि श्रीलंका में चार दिन के लिये युद्ध विराम रहा। यह विराम कोई राजनैतिक कारण से नहीं परन्तु बच्चों के लिये स्वयं सेवी संस्था के द्वारा पोलियों की औषधि पिलाई गई उसके कारण से हुआ। मदर टेरेसा जिस किसी राष्ट्र में जाती थी उस देश के राष्ट्र नायक उसके स्वागत के लिए आते थे, विमान सेवा उसके लिये

मुफ्त थी। इस युग की सबसे शक्तिशाली महिला किसी राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री की धर्मपत्नी या स्वयं महिला राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री न होकर मदर टेरेसा थी। उसके सामने राष्ट्राध्यक्ष आदि नतमस्तक होते थे।

मैं भी बाल्यकाल से बच्चों से बहुत प्यार करता हूँ उन्हें पढ़ाकर संस्कारवान् एवं आदर्शवान् बनाना चाहता हूँ। इसके लिये मैं उन्हें पढ़ाता हूँ। उनके लिये शिविर लेता हूँ और उन्हीं से आहार भी लेता हूँ। बाल्यकाल में सहज स्फूर्ति व चंचलता रहती है। इसके कारण बच्चे बंदर के समान एक स्थान पर अधिक समय स्थिर नहीं रह पाते हैं तथापि मेरा 10–20 वर्ष का अनुभव है कि आहार के समय में बच्चे 1–1.30 घंटा शालीनता से तथा एकाग्रता से स्थिर रहते हैं तथा व्यवस्थित आहार देकर प्रसन्न होते हैं। मैं बच्चों के अन्तर्मन को समझने के लिये उनसे अनेक साक्षात्कार लेता हूँ। जब मैं बच्चों को पूछता हूँ कि आप लोगों को पढ़ाई में, खेलने में, टी.वी. देखने में, मिठाई खाने में, नये कपड़े पहनने में, कहानी सुनने आदि में किसमें अधिक आनन्द आता है तो उनमें से अधिकांश बच्चे आहारदान में अधिक आनन्द आता है, कहते हैं। इसके बाद कथा, कहानी सुनने में आनन्द आता है, कहते है। इससे सिद्ध होता है दान में, सेवा में अधिक आनन्द अनुभव होता है। और जिससे अधिक आनन्द अनुभव होता है वही धर्म क्योंकि पहले ही कहा गया था–

''धर्म सर्व सुखाकरो–हितकरो''।

इसके साथ–साथ मेरा 11 प्रदेश के भ्रमण से बाल्यकाल से अभी तक मैंने जो अध्ययन किया उसके आधार पर मैंने जो प्रायोगिक निष्कर्ष निकाला वह यह है कि सबसे अधिक सरल, नम्र, निर्लोभी, वात्सल्य प्रेमी, सेवाभावी, आहार–दान देने वाले पाए जाते हैं। परन्तु मैंने यह भी पाया जो नाम के लिए येन–केन प्रकारेण धन कमाकर धार्मिक मेला, उत्सव आदि में बोली ले लेते हैं, या एकाध उपवास कर लेते हैं, एकाध धार्मिक किताब तोते की तरह रट लेते हैं, रुढ़िवशात् पूजा–पाठ कर लेते हैं, धार्मिक उपदेश दूसरों के लिये झाड़ते–फिरते हैं लोग उन्हें धार्मिक मानकर उनका सम्मान करते हैं, उनकी जय–जयकार करते हैं, उनका नाम लिखवाते हैं, परन्तु आहार–दान देने वालों को ऐसे सम्मान आदि नहीं मिलते हैं। इससे आगे दुःख की बात यह है कि साधुओं की शारीरिक सेवा करना, कमण्डलु लेकर चलना, उनके आवास स्थान को स्वस्छ करना, आहार एवं पूजा के लिए

पानी लाना आदि को तो नौकरों का काम मानते हैं। जो धन के लिए, स्वार्थ के लिए छोटे से छोटे, खोटे से खोटे कार्य कर सकते हैं वे भी साधु-संतों की सेवा, शारीरिक-धार्मिक कर्त्तव्यों को हेय दृष्टि से देखते हैं और नौकर का कार्य मानते हैं। इन सभी कारणों से धर्म में तेजस्विता, प्रभावोत्पादकता, महानता, उदारता आदि गुण नहीं आ पा रहे हैं। इसलिये इतना महान् सर्वजीव हितकारी सर्वजीव सुखकारी गणितीय वैज्ञानिक जैन धर्म जो कि वस्तुतः वस्तु स्वरूप धर्म होने के कारण विश्व धर्म है, तो भी आज बहुत संकीर्ण परिधि में है। परन्तु अद्यतन/अर्वाचीन ईसाई धर्म बहुत ही फल रहा है, फूल रहा है क्योंकि ईसाई धर्म में प्रायोगिक रूप में सेवा धर्म पाया जाता है।

आचार्यों ने श्रावक के विभिन्न कर्त्तव्यों में से सेवा को मुख्य कर्त्तव्य बताया है और साधुओं के लिये गौण बताया है। तथापि वैयावृत्य को अंतरंग तप कहा है। जो सरागी साधु होकर के भी वैयावृत्य नहीं करता है उसकी आचार्यों ने निन्दा की है। बहिरंगतप से अन्तरंग तप श्रेष्ठ होता है। वैयावृत्य अंन्तरंग तप है। इसलिये उपवास, रस त्याग आदि तप से वैयावृत्य तप श्रेष्ठ है। क्योंकि जिसके भाव में भक्ति, नम्रता, परोपकारिता आदि गुण होते हैं वही वैयावृत्य कर सकता है। यह सब होते हुए भी मेरा दीर्घ काल का अनुभव यह है कि अधिकांश व्यक्ति सेवा को बहुत ही कम महत्त्व देते हैं। जो व्यक्ति तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा आदि के लिये घंटों, महीनों का समय देते हैं और लाखों रूपया खर्च करते हैं वे भी साधुओं की सेवा के लिये कुछ समय भी नहीं देंगे और कुछ रूपये भी खर्च नहीं करेंगे। इनकी यह कृति/प्रवृत्ति **''जिन्दा बाप से लट्ठमलट्ठा मरे हुए को पहुँचाये गंगा''** जैसी है। इन सब अनुभवों एवं अध्ययन के फलस्वरूप मेरे मन में बहुत दिनों से एक पीड़ा उत्पन्न हुई है वह पीड़ा यह है कि जैन श्रावक से लेकर जैनाचार्य तक प्रायोगिक जीवन्त धर्म स्वरूप सेवा को कम महत्व दे रहे हैं। उस कमी को दूर करने के लिए तथा वस्तु स्वरूप के प्रकाशन के लिये विभिन्न उद्धरण एवं उदाहरणों के माध्यम से इस कृति में मैंने यह सिद्ध किया है कि धार्मिक व्यक्तियों की सेवा, जीव मात्र की सेवा धार्मिक सेवा, पूजा/उपासना है और यह ही प्रायोगिक जीवन्त अहिंसा, वात्सल्य भाव, जीव दया, विश्व प्रेम, विश्व मैत्री, बसुधैवकुटुम्बकम्, परोपकार, वैयावृत्य, पुण्य कर्म है।

22- पवित्रता का सूचक है स्वच्छता

स्वच्छता, मानसिक, सामाजिक, राष्ट्रीय पवित्रता का प्रतीक है।

शास्त्रों में वर्णन हैं कि साधु को ग्राम नगर से दूर एकांत विस्तीर्ण निर्जन एवं बाधा रहित स्थान को पिंछी से परिमार्जन करके मल-मूत्र का विसर्जन करने को उत्सर्ग समिति कहते हैं। इससे सिद्ध होता है मल-मूत्र ग्राम के समीप भी विसर्जन नहीं करना चाहिए क्योंकि अयोग्य स्थान में मल-मूत्र विसर्जन करने से जनता को कष्ट होता है, ग्राम नगर आम स्थान अस्वच्छ हो जाता है, वातावरण दूषित हो जाता है जिसमें अनेक रोग उत्पन्न होते हैं एवं फैलते है। अनुपयुक्त स्थान एवं मनुष्य जहाँ देखते हैं वैसे स्थान में मल-मूत्र विसर्जन करने से निंदा होती है, ग्लानि उत्पन्न होती है और आयु क्षय भी होती है।

वर्तमान भारत में गृहस्थ लोग घर की गन्दी वस्तुएँ यहाँ तक कि मलमूत्र भी आम रास्ता या राज-मार्ग में निःसंकोच होकर फेंकते हैं। चाय पीकर चाय का प्याला रास्ते में ही फेंक देते हैं, चाट खाकर पत्ते को रास्ते में ही फेंकते हैं, पान खाकर पानपीक यत्र-तत्र रास्तादि में थूकते हैं। बीड़ी, सिगरेट पीकर जूठन के शेष भाग को जहाँ-तहाँ फेंकते हैं। कफ को जहाँ तहाँ थूकते हैं। यह सब असभ्यता, अनागरिकता एवं अशिक्षितपना का परिचायक है। हमारे देशवासी, वर्तमान आक्षरिक शिक्षित थोड़े बहुत हुए हैं परन्तु यथार्थ से नैतिक शिक्षा से दूर हट रहे हैं। बाहर बगुला के समान हैं परन्तु अन्तरंग में कौवे से भी काले हैं। महात्मा गाँधी को जातीय पिता एवं महा आदर्श पुरूष मानते हुए एवं उनका गुण गान करने में ही थकते हुये भी उनके आदर्श का एक कण भी अनुकरण में कोई लाते हैं क्या ? महात्मा गाँधी, विनोबाभावे केवल स्वयं का संडास-गृह स्वच्छ नहीं करते थे किन्तु गाँव-गाँव में घूम कर वहाँ के रास्ते, तालाब, संडास-गृह भी स्वच्छ करते थे। क्या आज उस आदर्श को हृदय-साक्षी पूर्वक विचार करके इन्हें कोई अनुकरण करता है ? देश में अस्वच्छता फैलाकर देश की पवित्रता नष्ट कर रह हैं। विदेश का अंधानुकरण करते हुए उनके फैशन, भोग-विलासता, अनैतिकता, कामुकता आदि दुर्गुणों को ग्रहण कर रहे हैं परन्तु विदेश में जो स्वच्छता, देश-प्रीति, प्रामाणिकता, स्वावलंबनता आदि गुण है उसका क्या अनुकरण कर रहे हैं?

गन्दगी में अनेक प्रकार के रोगाणु जीवाणु, मक्खी, मच्छर, विषाक्त कीड़े

आदि प्रचुर मात्रा में जन्म लेते हैं, सड़न होती है, दुर्गन्ध निकलती है, जिससे पर्यावरण प्रदूषित होता हैं, रोग फैलता है, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ता है। गन्दगी से मक्खी, मच्छर होते हैं। और मच्छर से मलैरिया रोग होता है तथा मक्खी से हैजा (कोलेरां) रोग होता है। दोनों रोग महामारी हैं। इन रोगों के चपेट में हजारों लोग आ जाते हैं। और सैंकड़ों व्यक्ति मृत्यु के प्यारे हो जाते हैं। रोगों के कारण जीवों को कष्ट, मृत्यु के साथ–साथ करोड़ों रूपये डॉक्टर, वैद्य, औषधि, औषधालय, याता–यात में लगते हैं। शारीरिक मानसिक– बौद्धिक–क्षमता घटती है, जिससे उत्पादन भी घटता है। इससे आर्थिक विपन्नता आती। इसीलिए जो गन्दगी करता है वह उपर्युक्त समस्त दोषों को करता है। इसलिए वह महान् हिंसक, पापी, जीव द्रोही, राष्ट्रद्रोही है।

जो सार्वजनिक स्थल यथा – रोड, पार्क, गली आदि में गन्दगी करता है वह वहाँ रहने वाले, यातायात करने वालों के प्रति अपराध करता है। जो तालाब, नदी, समुद्र आदि को दूषित करते हैं वे जलचर जीवों के साथ–साथ उस जल को सेवन करने वाले पशु–पक्षी, वनस्पति, मनुष्यादि को भी कष्ट देते हैं। गटर का गन्दा पानी, फैक्ट्री आदि का गन्दापानी आदि नदी आदि में डाल कर जल को दूषित करना बहुत बड़ा अपराध है। फैक्ट्री, गाडी ईंटकी भट्टी आदि से भी पर्यावरण दुषित करना भी बड़ी गन्दगी है। जब ये फैक्ट्री आदि ग्राम, नगर, नदी, खेती आदि के पास होती तो और भी महान् विपत्ति जीवों के ऊपर आ पड़ती है। ये सब गन्दगी भाव की गन्दकी को दर्शाती है। जिसके भाव पवित्र, दयालु, परोपकार, अहिंसक भाव से भरा होता है वह ऐसी गन्दगी, ऐसी प्रदूषण नहीं फैला सकता है। जिस प्रकार सुअर तो गन्दगी खाता है गन्दगी में रहता है परन्तु राजहंस अच्छा खाता है, अच्छी जगह रहता है उसी प्रकार गन्दे लोग गन्दे में रहते हैं और गन्दगी फैलाते हैं और पवित्र व्यक्ति स्वच्छ रहते हैं और स्वच्छता रखते हैं।

23- पर्व की पवित्रता तथा पतितता

'सात बार तेरह तीज त्यौहार' वाला भारत में रोज कुछ न कुछ पर्व–उत्सव मनाये जाते हैं। कुछ पर्व धार्मिक हैं तो कुछ पर्व सामाजिक है, तो कुछ पर्व राष्ट्रीय हैं, तो कुछ स्वास्थ्य संबंधी है तो कुछ व्यक्ति संबंधित हैं। पर्युषण, षोडषकारण,

रत्नत्रय, क्षमाभाव (क्षमावाणी) आदि पर्व धार्मिक–आध्यात्मिक पर्व है, पंचकल्याणक आदि पर्व व्यक्ति संबंधी पर्व है। यथा – महावीर जयंति, दीपावली (महावीर भगवान का मोक्षकल्याणक) गुरु पूर्णिमा, गुरुनानक जयन्ति आदि। स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस आदि राष्ट्रीय पर्व है। वसन्तोत्सव आदि सामाजिक, स्वास्थ्य संबंधी पर्व है। कुछ पर्व अनेक पर्व स्वरूप में भी मनाये जाते हैं। यथा – दीपावली पर्व व्यक्ति परक होते हुए भी धार्मिक, सामाजिक, स्वास्थ्य संबंधी पर्व भी है।

जिस प्रकार गन्ना के पोरों के गाँठ जोड़ते हुए गन्ना को पूर्ण बनाती है उसी प्रकार को जो भूतकालीन घटनाओं से भावात्मक रूप से वर्तमान को जोड़कर भविष्य के लिये उन्नति के कारण बनकर मनुष्य को पूर्ण बनाता है उसे पर्व कहते हैं। जो मनुष्य को अच्छे गुणों से अलंकृत करके जीवन को उत्साह से भर दे उसे उत्साह–उत्सव कहते हैं। भौतिक जीवन के लिए जिस प्रकार जल, वायु, भोजन आदि चाहिए उसी प्रकार नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन के लिए सद्गुण, सत्प्रेरणा, उत्साह आदि चाहिए। ये सब हम कुछ अंश तक धर्म से, महापुरुषों से, घटनाओं से प्राप्त करते आये हैं। इसे ही प्राप्त करने की प्रक्रिया का एक रूप है पर्व–उत्सव।

जीवन एक सतत प्रवाहमान–गतिशील–उन्नति–प्रक्रिया है। इसके बिना जीवन मृत सम हो जायेगा। जिस प्रकार कि जल–प्रवाह के बिना नदी नहीं हो सकती है या सूखी नदी या बंधी हुई नदी होगी उसी प्रकार उन्नति के बिना जीवन शुष्क या बेकार अथवा जकड़ा हुआ होगा। उन्नति की प्रक्रिया के लिए उत्सव एक प्रेरक तत्व है। संसारी जीवों का जीवन विभिन्न कारणों से खण्ड विखण्डित होता रहता है। उसे जोड़ने के लिए पर्व गांठ का काम करता है। जिस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान में जब एक विषय को पढ़ते–पढ़ते बोरियत हो जाती है तब थोड़ा विश्राम लिया जाता है या अन्य विषय का अध्ययन किया जाता है। उसी प्रकार रौजमर्रा के काम से जब जीवन निरस हो जाता है तब उसे सरस बनाने के लिये पर्व रूपी विश्राम तथा परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। इससे पुनः नई चेतना, नया उत्साह, नई प्रेरणा, नई सरसता मिलती है। इन सब कारणों से पर्व मनाने की परंपरा प्रारंभ हुई। परन्तु बाल्यकाल से अभी तक जो मैंने विभिन्न प्रदेशों की विभिन्न पर्वों का अध्ययन किया उसे निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पर्वों में पवित्रता के परिवर्तन में अपवित्रता, आध्यात्मिक के परिवर्तन में कषाय आवेशता,

महापुरुषों के गुणानुकरण के परिवर्तन में गुण द्वेषता, सामाजिक सौहार्द्रकता के बदले सामाजिक विद्रोह–विघटन, स्वच्छता के बदले अस्वच्छता, स्वास्थ के बदले अस्वास्थ्य का बोलबाला है उसका कुछ दिग्दर्शन यहाँ कर रहा हूँ जिससे उससे बचते हुए पर्व के उद्देश्य–पवित्रता–फल को प्राप्त किया जा सके।

पर्व में आध्यात्मिकता से आवेशता –

धार्मिक पर्वों का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक प्रगति – भाव की पवित्रता है। जैसा कि पर्यूषण पर्व का उद्देश्य उत्तम क्षमा, मृदुता, सरलता, सत्य–शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य, ब्रह्मचर्य आदि धर्म को समग्रता से ग्रहण करना होता है। इसके उद्देश्य से उपवास करना, मंदिर जाना, पूजा प्रार्थना करना, तीर्थ–यात्रा करना, धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय करना, दान देना, प्रवचन सुनना संत समागम करना आदि विभिन्न धार्मिक कार्यक्रम किये जाते हैं। परन्तु ये सर्व कार्यक्रम मूल उद्देश्य से रहित पाये जाते हैं। यथा– उपवास में तो भोजन त्याग कर देंगे परन्तु शरीर को सजाना, फैशन करना, क्रोध, अहंकार मायाचारी, दिखावा पर निन्दा, पापात्मक–अनावश्यक गृहकार्य, ईर्ष्या, झगड़ा, कलह, तू–तू, मैं–मैं नहीं छोड़ेंगे। कुछ रुपयों का तो भोजन छोड़ देंगे परन्तु हजारों रुपये आत्म प्रसिद्धि के लिये विज्ञापन पत्रिका, सजावट, बाजा–गाजा में लगायेंगे। उपवास के उद्यापन में पूजा विधान करना चाहिए एवं मुनि आदि सुपात्रों को आहार औषधि, उपकरण, ज्ञान, वसतिका आदि का दान देना चाहिए परन्तु प्रायोगिक रूप में पाया जाता है कि मुनि आदि के लिए तो कम दान दिया जाता है परन्तु नाम बड़ाई के लिए गृहस्थों को बर्तन आदि परिग्रह दिया जाता है।

मंदिर जाना, पूजा, पाठ, प्रार्थना, तीर्थ यात्रा करने का मुख्य उद्देश्य 'वंदे तद्गुण लब्धये' अर्थात् भगवान के समान ज्ञान, सुख–शांति, अहिंसा आदि गुणों को प्राप्त करने के लिए पूजादि की जाती है। पूजा सामग्री तैयार करना, मंदिर को साफ करना, मंदिर की व्यवस्था करना, स्तुति पढ़ना, प्रार्थना करना, शरीर को नम्र करना, गुण स्मरण करना, गुणों को ग्रहण करना, भगवान के उपदेश के अनुसार आचरण करना आदि पूजा है। परन्तु प्रायोगिक रूप से पाया जाता है कि केवल नौकर द्वारा तैयार सामग्रियों को चढ़ा देना पूजा का स्वरूप रह गया है। इतना ही नहीं, पूजा में सामग्री, दिशा, आसन, काल, विधि, मान–सम्मान, नाम आदि को लेकर लड़ाई–झगड़ा, फूट, वैमनस्य आदि होते रहते हैं। पूजा के

मध्य में भी पूजा आदि में ध्यान न देकर अनावश्यक गप्पे, परनिन्दा, दिखावा, ईर्ष्या, हँसी, मजाक में लगे रहते हैं। तीर्थयात्रा, मेला में भी पूजा, दर्शनादि कम करते हैं, इधर–उधर मनोरंजन के लिए घूमते–फिरते हैं, हो–हल्ला, हुल्लड़बाजी, गप्पे–चुगली आदि करते रहते हैं चोरी, बलात्कार, गुण्डा–गर्दी भी करते हैं। अधिक क्या कहा जाये दूसरों के जूते–चप्पल की भी चोरी कर लेते हैं तथा शराब आदि पीते हैं, परस्त्री–वेश्या गमन भी कुछ लोग करते हैं। इस प्रकार पर्वों की आध्यात्मिकता कम पाई जाती है परन्तु दिखावा, कषायादि का आवेश अधिक पाया जाता है।

पर्वादि में महापुरुषों के आदर के बदले अनादर –

एक बार एक मंदिर के सामने के एक गरीब व्यक्ति को मंदिर का द्वारपाल अंदर जाने नहीं दे रहा था। उस समय एक महिला वहाँ आती है और उस गरीब से पूछती है – तुम दुःखी क्यों हो? गरीब बोलता है– यह मंदिर समता देवी का मंदिर है जो कि गरीब–धनी–रंक–राव को समान मानती है परन्तु मैं गरीब होने के कारण मुझे द्वारपाल मंदिर के अंदर जाने नहीं देता है। यह सुनकर वह महिला बोलती है – बेटा! तुम दुःखी मत हो। क्योंकि मैं स्वयं समता देवी होने पर भी मुझे इस मंदिर के अंदर जाने नहीं दिया जाता है। तुम तो मेरे भक्त हो तुम्हें कैसे अंदर जाने दिया जायेगा? और एक उदाहरण है – जोन ऑफ आर्क का। देश को स्वतंत्र करने वाली फ्राँस की जोन आफ आर्क को ईर्ष्या करके मार दिया गया। सेक्सपियर अपने नाटक में लिखते हैं कि आर्क के सम्मान में समारोह मनाया जाता है। समारोह में जब आर्क आती है तब वहाँ स्थित राजनेता यह विचार करके कि इसके कारण हमारी सत्ता भी चले जायेगी उसकी हत्या कर देते हैं। यह दोनों उदाहरण सामाजिक, विकृत–मानसिकता को उद्घाटित करने वाले हैं। समाज जिसके पर्व मनाता है, जिसकी पूजा करता है जिसके लिये मंदिर संस्थादि बनाता है, जिसकी मूर्ति बनाकर पूजा करता है, वही साक्षात् जीवन्त उस महापुरुष का, उसके समान अन्य महापुरुषों का भी अनादर करता है? उसके विरुद्ध में चलता है। यहाँ तक की उसकी हत्या तक कर देता है । इसके लिए उदाहरण सुकरात को विषपान, ईसा मसीह को शूली–दण्ड, आर्क की हत्या, मीराबाई को विषपान, अब्राहिम लिंकन् की हत्या, महात्मा गाँधी की हत्या आदि। ये उदाहरण तो अति प्रसिद्ध हो गये, पुस्तकों में छप गये परन्तु हर रोज हर

देश में हर धर्म में ऐसी घटनायें होती रहती हैं।

यहाँ तक कि पर्व में – पूजा में– मेले में भी महापुरुषों का अनादरादि करते हैं। पर्वादि में घर की सफाई में, शरीर के श्रृंगार में, मिठाईयों को बनाने में, खाने में, परस्पर मिलने में, दिखावे में, विभिन्न, औपचारिकता निभाने में इतने मस्त हो जाते हैं कि साधु संतों की सेवा, सत्कार, दर्शन से भी विमुख हो जाते हैं। कुछ पर्व में मादक वस्तुओं का सेवन, जुआ, खेलना, असभ्य हरकते करना पर्व का अभिन्न अंग ही मानते हैं। पर्व–मेलादि में जब बन ठनकर चलते हैं, उत्सव का मद चढ़ा रहता है तब तो साधु संतों का विनय करना तो दूर उनके सामने इतराते हुए चलेंगे, उनसे धक्का–मुक्की करेंगे, आने जाने के लिए उन्हें रास्ता तक नहीं देंगे, बैठने के लिए आसन नहीं देंगे। अधिक क्या कहा जावे जब पंचकल्याणक के लिए भी जिन साधुओं को बार–बार अनुरोध करके दूर से लाते हैं उनके निवास, आहार–बिहार–निहार आदि की भी व्यवस्था सही नहीं करते हैं। पंचकल्याणक के बाद तो उपर्युक्त व्यवस्था तो ओर भी कमजोर पड़ जाती है। पंचकल्याणक में साधुओं का धर्मोपदेश तक नहीं होने देते। राजनेता को बुलायेंगे, ठाठ–बाठ से उनका स्वागत करेंगे, नेता को इच्छानुसार लम्बे समय तक भाषणबाजी करने देंगे, समाचार पत्र में उनके फोटो, भाषण बहुत छपायेंगे परन्तु जिन साधुओं को सेकड़ों किलोमीटर से पैदल चलाकर लायेंगे उनके फोटों, प्रवचनादि समाचार पत्र में न हि धर्म प्रचार के लिए देंगे। साधुओं को इसलिए लाते हैं कि साधु के कारण भीड़ अधिक होगी और बोली से धनाधिक आवेगा। साधु के उपदेश के अनुसार नहीं चलेंगे परन्तु साधु को स्वयं के अनुसार चलायेंगे। पर्व के प्रमुख कार्यक्रम को महत्व कम देंगे परन्तु बाह्य आडम्बर, गाजा–बाजा, सजावट, रंगारंग कार्यक्रम को अधिक महत्व देंगे।

सामाजिकता–एकता के परिवर्तन में भीड़–फूट –

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** अर्थात् परस्पर उपकार करना जीवों का धर्म है। परस्पर उपकार, आदान–प्रदान करना, संगठित होकर कार्य करने से कठिन कार्य भी सरल हो जाता है। पर्व का एक उद्देश्य संगठन आदि बढ़ाना भी होता है। पर्व के निमित्त से अधिक लोग एकत्रित होते हैं, जिससे प्रवचन, चर्चा–विचार विमर्श के माध्यम से समस्याओं का समाधान किया जाता है, आगे के लिये निर्णय लिए जाते हैं। प्रायोगिक रूप से अधिकतर पाया जाता

है कि जिस प्रकार महिलायें मिलने पर मौन से नहीं रह सकती है उसी प्रकार जब पर्व में अधिक लोग इकट्ठे होते हैं तो कलह हुए बिना नहीं रहता है। उस पर्व को मनाने वाले और उनके विरोधियों में गाली–गलौच, मार–पीट, पथराव आदि होते रहते हैं। कभी–कभी तो मानने और मनाने वाले मनभेद, मतभेद, व्यवस्था, नाम, मान–सम्मान धन व्यय आदि को भी लेकर परस्पर में झगड़ादि करते हैं। इससे संगठन के परिवर्तन में विघटन अधिकतर होते है। यहाँ तक पाया जाता है कि विरोधियों को नीचा दिखाने के लिए, ईर्ष्या से झगड़ें को उभारने के लिए, भी पर्व मनाते हैं। अनेक मंदिर, मूर्तियों का निर्माण तो फूट के लिए या फूट को स्थिर करने के लिए होता है।

पर्व में राष्ट्रीयता के नाम पर राष्ट्र से गद्दारी –

स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस आदि पर्व राष्ट्रीय पर्व है। राष्ट्रीयता को दृढ़ करने के लिए राष्ट्रीय भावना को जगाने के लिए राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को सीखने तथा सीखाने के लिए यह पर्व मनाया जाता है। यही पर्व मनाने का उद्देश्य है। भारत में परतंत्रता के कारण स्वतंत्रता संग्राम के नायकों, स्वतंत्रता के अधिकार एवं कर्तव्यों के बारे में स्मरण करना, विश्लेषण करना, शिक्षा लेना, प्रेरणा करना इसके उद्देश्य हैं। परन्तु राष्ट्रीय छुट्टी, रंगारंग कार्यक्रम, झंडारोहण, सैनिक परेड, तथा कथित विशिष्ट व्यक्तियों को सलामी अदा करने को ही राष्ट्रीय उत्सव मान लिया जाता है। यहाँ तक कि विद्यालय में विद्यार्थियों के लिए पर्व संबंधी ज्ञान नहीं दिया जाता है तथा शिक्षकों को भी उस संबंधी पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। समारोह में विद्यार्थियों के लिए पर्व संबंधी भाषण प्रतियोगिता, वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन प्रायः नहीं किया जाता है परन्तु 20–25 दिनों से ही अध्ययन, अध्यापन, कम हो जाता है। विद्यार्थियों को कुछ घीसा–पीटा व्यायाम, भजन सिखाने में समय गंवाते हैं। कार्यक्रम समय पर प्रारंभ नहीं होने से देरी, धूप आदि होने के कारण अफरा–तफरी होती है बच्चे भूख–प्यास गर्मी से बेहोश तक हो जाते हैं। राष्ट्र के भविष्य स्वरूप बच्चों को महत्व नहीं दिया जाता है परन्तु तथाकथित अतिथि आदि की औपचारिकता निभाते रहते हैं। पर्व में भी कहीं–कहीं विरोध के कारण राष्ट्रीय झंडा का आरोहण नहीं हो पाता है। इससे एकता–अखण्डता को भारी धक्का लगता है। पर्व मनाने के लिए छुट्टी मिलती है परन्तु उस छुट्टी को गृह कार्य गप्प, आलस्य आदि में काटेंगे। इससे राष्ट्रीयता को सम्बल मिलने

के परिवर्तन में राष्ट्र को धक्का लगता है क्योंकि छुट्टी के कारण उत्पादन नहीं होता है और उत्सव मनाने में करोड़ों रूपये खर्च होते हैं। खेल कूदादि की प्रतियोगिताएँ परस्पर प्रेम सौहार्द संगठन बढ़ाने के लिए की जाती है परन्तु परस्पर की प्रतिस्पर्धा के कारण वैरत्व, असंगठनादि बढ़ते हैं। यह सब यथार्थता से रहित अयथार्थ का प्रवाह है।

प्रवाहे वर्तते लोके न लोकः पारमार्थिक ।
प्रत्यक्षं मार्यते सर्पो गोमयेष्विह पूज्यते ॥ (85)

स.कौ. पॉ. 38

लोग तो प्रवाह में बरतते हैं अर्थात् देखा-देखी करते हैं परमार्थ का विचार करने वाले नहीं है। इस जगत में साँप सामने आ जाये तो मारा जाता है परन्तु गोबर का बनाया हुआ पूजा जाता है।

स्वास्थ्य-स्वच्छता के बदले अस्वच्छता-अस्वास्थ्य –

पर्वों का एक उद्देश्य आध्यात्मिक स्वच्छता के साथ-साथ बहिरंग स्वच्छता भी है। प्राचीन काल के महापुरुषों ने आध्यात्मिक, सामाजिक स्वच्छता, एकता आदि अनेक तत्व को समावेश करके पर्वों का प्रचलन किया था। भारत धर्मप्रधान देश होने के कारण भारत के महापुरुष स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि को भी धर्म में ढाल दिये क्योंकि इससे सामान्य जन धर्म मानकर करते रहेगें। प्रकारान्तर से स्वच्छता आदि धर्म का एक अंग ही है क्योंकि स्वच्छता स्वास्थ्य का एक अंग है। तथा **'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्'** अर्थात् स्वस्थ्य शरीर धर्म का माध्यम है। इसलिए पर्वों के उपलक्ष में गृह, शरीर, वस्त्र आदि स्वच्छ करने का प्रावधान है। नदीं आदि में स्नान करना, दीपावली में गृह को साफ करना, सजाना, नये वस्त्र पहनना आदि इसके लिए किया जाता है। परन्तु पर्वादि में स्वच्छता के परिवर्तन में अस्वच्छता का बोलबाला अधिक होता है। तीर्थस्नान के लिए गंदे पानी में स्नान करना दीपावली आदि में घर की गंदगी गली-रास्ते में डालना, मेला आदि में दूकान पशु तथा मनुष्य के मल मूत्र की गंदगी यत्र-तत्र बिखर के पड़ी रहती है। इसलिए तो बड़े-बड़े मेले आदि में संक्रामक रोग फैल जाते हैं। इतना ही नहीं धन के लोभ में व्यापारी लोग अशुद्ध मिष्टान भोजन कचौड़ी, पकौड़ी, लस्सी, रस आदि बेचते हैं। होली विशेषतः स्वास्थ्य का पर्व है। अच्छे रंग, गुलाल से खेलने का पर्व है, परन्तु होली में गन्दा कीचड़, मिट्टी, गोबर, राख पत्थर, रसायनिक

रंग तेजाब आदि एक दूसरों के ऊपर डालते हैं। इससे स्वास्थ्य के बदले स्वास्थ्य-हानि होती है। दीपावली अंतरंग एवं बहिरंग प्रकाश का पर्व है। परन्तु इस पर्व में जुआ खेलकर, फटाके फोड़कर, अन्तरंग एवं बहिरंग को गंदा-अस्वच्छ कर देते हैं। इसके साथ-साथ पर्व में सामूहिक भोजन आदि में स्वच्छता नहीं होने के कारण अधिक भोजन या गरिष्ठ भोजन के कारण स्वास्थ्य खराब के साथ-साथ कभी-कभी मृत्यु तक हो जाती है। कुछ लोग तो पर्व में नशीली वस्तु, मद्य, भांग, गांजा, मांस का सेवन करके और भी अधिक शारीरिक, मानसिक आध्यात्मिक गंदगी-अस्वच्छता को प्राप्त होते हैं।

'निकले थे हरिभजन को कातन लगे कपास' के अनुसार पर्व एवं पर्व मनाने वालों की दुर्दशा है। भले पर्वों के उद्देश्य अच्छे हैं परन्तु प्रायोगिक रूप से विपरीत कार्य पाया जाता है। जिस प्रकार राज नेताओं का कर्तव्य जनताकी सेवा है परन्तु प्रायोगिक रूप से वे जनता का शोषण करते हैं उन्हें कष्ट देते हैं और जनता से दास के समान व्यवहार करते हैं उस प्रकार पर्वों का हाल है। पर्व में तो धन्नासेठ अनावश्यक आडम्बर में अनाप-शनाप धन खर्च करेंगे परन्तु पड़ोसी के गरीब भाइयों की सहायता नहीं करेंगे। कुछ धनी लोग तो अपने वैभव को दूसरों को दिखाने के लिए प्रगट करते हैं। वे दूसरों की कुटिया जलाकर प्रकाश चाहते हैं। दूसरों की सहायता-सेवा में जो पर्व-उत्सव है-आनन्द है आत्मसंतोष है वह सब बाह्य-आडम्बरात्मक पर्व में नहीं। यह जो अनुभव नहीं किया ऐसे आडम्बरियों को कैसे मालूम पड़ेगा।

जो पर्व अयोग्य है, भले वह अपना हो या दूसरों का उसमें सहभागी नहीं होना चाहिए परन्तु जो योग्य पर्व उस में सहभागी होना चाहिए। यदि किसी कारण वशतः सहभागी नहीं हो रहे हैं तो कम से कम माध्यस्थ होना चाहिये, विरोध नहीं करना चाहिए। हिंसा, वैमनस्य, झगड़ा, कलह, वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। दूसरों के पर्व के अच्छे आदर्शों को स्वीकार करना चाहिए परन्तु स्वयं के पर्व के अनादर्श को स्वीकार नहीं करना चाहिए। यदि हम दूसरों से आदर्श स्वीकार करेंगे, विरोध नहीं करेंगे तो दूसरे भी हम से वैसा ही व्यवहार करेंगे क्योंकि न्यूटन के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया समानुपात से होती है।

24- भारत महान् बने तो कैसे?

इतिहास, पुराण, पुरातत्व, तथा किम्वदन्ती, वैदेशिक साहित्य, साक्षी है कि भारत बहुत ही प्राचीन काल से सभ्य, सुसंस्कृत, समृद्ध ज्ञानी, विज्ञानी, गणितज्ञ, आध्यात्मिक रहा है। इसलिए भारतीय बोलते हैं और लिखते हैं– 'भारत महान् हैं, गर्व से कहो हम हिन्दू(भारतीय) हैं और ऐसा करना भी चाहिये क्योंकि अच्छे गुणों के प्रति आदर, सम्मान करना माने उन अच्छे गुणों को अच्छा मानना। मैथिलीशरण गुप्त ने कहा भी है।'

जिनको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वे नर नहीं नरपशु निरा और मृतक समान है॥

परन्तु कथन से और लिखने से क्या कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है? जिस उज्ज्वल, उन्नत धरोहर, विरासत को लेकर भारतीय लोग कागज, दिवालें आदि काले–पीले करते हैं, भाषण और नारों से शब्द प्रदूषण फैलाते हैं क्या इससे देश की उन्नति होती है या अवनति होती है? इससे तो अवनति ही होती है ऐसा अनुभव से सिद्ध होता है। लिखने में कागज, स्याही, समय एवं शक्ति आदि का दुरुपयोग होता है और भाषणादि से भाषण कर्ता का समय, श्रोताओं का समय, भाषण की व्यवस्था के खर्च का दुरुपयोग तो होता ही है साथ ही साथ शब्द प्रदूषण फैलता है, हम महान् है ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है, अहंकार जन्म लेता है, मिथ्या सन्तुष्टि हो जाती है। इससे आगे बढ़ने के लिये पुरुषार्थ नहीं करते हैं। जिस प्रकार धनी माँ–बाप का इकलौता लाडला बेटा विचार करता है कि मेरे पिता की बहुत सम्पति है, मुझे परिश्रम क्यों करना है? इस विचार के कारण वह आलसी, निकम्मा, फिजूल खर्ची, उत्तरदायित्व हीन बन जाता है जिससे वह धीरे–धीरे गरीब, निःसहाय, बदनाम हो जाता है। इसी प्रकार भारतवासी भारतीय समृद्ध प्राचीन परम्परा का केवल गुण बखान करते हुए कर्तव्य हीन होकर दीन–हीन भ्रष्ट बनते जा रहे हैं। जो पहले विश्व गुरु था जिसको सोने की चिड़िया कहते थे और जहाँ पहले दूध–घी की नदियाँ बहती थी। आज वह देश विदेशी ऋण से लदा हुआ है, भ्रष्टाचार के नौवें स्थान में है और जहाँ के शीर्षस्थ राजनेता धर्मनेता, न्यायदाता भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। तो भी हम तोता के जैसे रटते जा रहे हैं 'भारत देश महान् है', भारत देश महान् है। ऐसा कहते हुए भारतीयों को शर्म भी नहीं आती है।

ये तो कह सकते हैं कि भारत देश महान् था।

जो देश भारत की अपेक्षा, बहुत छोटा है। द्वितीय युद्ध के समय नागासाकी एवं हिरोशिमा के ऊपर एटम बम डालकर विध्वंस कर दिया गया था ऐसा छोटा देश जापान आज हर दृष्टि से समृद्ध, शक्तिशाली है। इसका कारण है जापानियों की कर्त्तव्यनिष्ठता, राष्ट्रीयता, प्रामाणिकता, अनुशासन, समयबद्धता आदि–आदि।

जापान के एक दो उदाहरण देकर के जापान की महानता का कुछ दिग्दर्शन यहाँ कर रहे हैं। एक बार एक भारतीय जापान की एक लड़की से शुद्ध दूध की मांग करता है तो जापान की लड़की आश्चर्य से पूछती हैं कि शुद्ध दूध कैसा होता है। भारतीय सज्जन उत्तर देते हैं जिस दूध में पानी नहीं मिलाया जाता है वह शुद्ध दूध है। लड़की पूछती है क्या दूध में भी पानी मिलाया जाता है? भारतीय सज्जन उत्तर देता है हाँ बेचने वाला दूध में पानी मिलाता है। जापान की लड़की बोलती है कि हमारे जापान में दूध में पानी नहीं मिलाते हैं क्योंकि इससे हमारे जापानी भाई बंधुओ का स्वास्थ्य खराब होगा, रुग्ण होगे दुर्बल होंगे। यह घटना बहुत छोटी सी है परन्तु इसमें बहुत गहन रहस्य छिपा हुआ है जहाँ की छोटी–छोटी बच्चियाँ भी देश के हित के लिए विचार करती हैं और मिलावट नहीं करती हैं परन्तु भारत में प्रायः इससे विपरीत है । भारत का एक व्यक्ति आत्म हत्या करने के लिए विष खरीद कर पी लेता है परन्तु उसकी मृत्यु नहीं होती है क्योंकि विष मिलावटी था। इसी प्रकार भारत की प्रायः हर चीज में कृत्रिम चीज मिली हुई होती है। डालडा में चर्बी, घी में डालडा, इंजेक्सन में पानी, चावल में कंकड़ आदि हर चीज में मिलावट ही मिलावट है।

भारत में कोई गरीब व्यक्ति भूख के मारें बच्चों को तड़पते हुए देखकर यदि कोई अनाज या फल चोरी करता है तो उसको सामाजिक एवं कानून संबंधी अनेक दण्ड मिलते हैं। परन्तु खुद दण्ड देने वाले करोड़ों अरबों रूपयों की चोरी करते हैं सत्य को असत्य करते हैं, असत्य को सत्य करते हैं और 1 रूपया के केस को सैकड़ों वर्ष लम्बा कर देते हैं और करोड़ों रुपया फैसला करने में शोषण करते हैं। जो नेता गरीबी उन्मूलन का नारा देता है वही कुछ दिन में गरीब से अमीर बन जाता है और विदेश के स्विस बैंक में करोडों की सम्पति जमा करता है।

गुरु का स्थान सर्वोपरि होता है। विद्या दान को महादान कहा गया है। परन्तु

आज शिक्षक विद्यालय में ना तो समय पर जाते हैं न व्यवस्थित पढ़ाते हैं। वे ही बच्चों का शोषण करने के लिए ट्यूशन पढाते हैं। रिश्वत लेकर विद्यार्थियों को पास कर देते हैं जाली सर्टिफिकेट देते हैं। जिसके कारण वही विद्यार्थी आगे जाकर शोषणकारी, भ्रष्टअयोग्य सिद्ध होता है।

अनादिकाल से भारत आध्यात्मिक विश्व गुरु रहा है। परन्तु आज भारत में 'केवल दीपक के नीचे अंधेरा' नहीं है 'सूर्य के नीचे अंधेरा' है ऐसी व्यंग्योक्ति के योग्य बन रहा है। आज भारतीय धार्मिक व्यक्ति धर्म के नाम पर ही अधिक दिखावा, आडम्बर, ढोंगी पाये जाते हैं। जो व्यक्ति पूजा–पाठ, उपवास, तीर्थयात्रा करते हैं वे अधिक ईर्ष्यालु, कुटिल धूर्त, परशोषणकारी पाये जाते हैं। चीटियों को आटा खिलाने वाले मनुष्यों का खून शोषण करते हैं, भूखे, रुग्ण सामान्य मनुष्य की बात छोड़ो ऐसे व्यक्ति माँ–बाप की भी सेवा नहीं करते हैं। उपवास में कुछ रुपयों का भोजन नहीं करेंगे परन्तु उपवास में दिखावा के लिए, आत्म–प्रसार के लिए सैंकडों, हजारों रुपय खर्च करेंगे, तीर्थयात्री भी तीर्थक्षेत्र में अनैतिक कार्य करेंगे, गन्दगी फैलायेंगे, चोरी करेंगे, जेब काटेंगे, दूसरों की माँ–बहन का बलात्कार करेंगे। धार्मिक ग्रन्थ पढ़ते हुए भी धर्म के विरुद्ध आचरण करेंगे। धार्मिक व्यक्तियों का अधिकांश आचरण बगुला भगत जैसे या 'मुँह में राम बगल में छुरी' जैसा होता है।

भारत में धार्मिक कुरीतियाँ जिस प्रकार अधिक है, उसी प्रकार सामाजिक कुरीतियाँ भी बहुत अधिक है। गरीब व्यक्तियों के मरण में भी या विवाह में समाज के लोग उस परिवार को मृत्यु भोज या प्रीति भोज देने के लिए बाध्य करते हों इससे जो मरा तो उसका मरण तो हो ही गया परन्तु जो जिन्दे हैं उनका भी मरण हो जाता है। जिनकी शादी हुई उनकी बरबादी तो हुई परन्तु जिनकी नहीं हुई उनकी भी बरबादी हो जाती है। भोजन देने के लिए, दहेज देने के लिए गरीब व्यक्ति कर्जा लेते हैं और जीवन भर कर्जे के बोझ से लदे रहते हैं। इसी प्रकार बाल विवाह पर्दाप्रथा, फैशन, दिखावा, आलस्यपन, समय की बर्बादी आदि अनेक कुरीतियाँ अभी भी भारत में हैं।

जिस शिक्षा से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक विकास होना चाहिए उस शिक्षा से भारतीय लोग सफेदपोश नौकर, आलसी, उच्श्रृंखल, धोखाधड़ी करने वाले बनते जा रहे हैं। आज शिक्षा का केवल उद्देश्य पेट, पेटी, प्रजनन रह गया

है। जिस शिक्षा से हमें स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए उस शिक्षा से आज स्वच्छन्दता बढ़ती जा रही है। आज विद्यार्थी उद्दण्डता का पर्याय बनता जा रहा है और विद्यालय उद्दण्ड का कार्यालय बनता जा रहा है।

जो स्वयं के स्वार्थ के लिए सरक–सरक कर कार्य करती है उसे सरकार कहते हैं। सरकार की न कोई नीति है, न कोई सदाचार है, न कोई संविधान है। आज भारत की सरकार भारत के अधिक भ्रष्ट, अधिक गुण्डे और अधिक निकम्में व्यक्तियों का समूह है। राष्ट्रीय चिन्ह अशोक चक्र है और उसमें लिखा जाता है – 'सत्यमेव जयते' परन्तु आज भारत सरकार निरीह पशु प्रजाओं की सुनियोजित हत्या करती है, शराब बेचती है, वेश्यालय खोलती है। यह सब काम तो कसाई, आततायी, वेश्याओं का है। जब तक उपर्युक्त दुर्गुण भारत में होंगे भारत का उद्धार तब तक भगवान भी नहीं कर सकते हैं। नारायण कृष्ण ने गीता में कहा था– ''उद्धेरत् आत्मानम् आत्मनः न आत्मानम् अवसादयेत्'' अर्थात् आत्मा का उद्धार, स्व उद्धार, राष्ट्र का उद्धार स्वयं को करना चाहिए। जो स्वयं का उद्धार नहीं करता है उसका उद्धार कोई भी नहीं कर सकता है। इसलिए भारतीयों को स्वयं का उद्धार करने में कटिबद्ध हो जाना चाहिये। महाभारत युद्ध में युद्ध से परांगमुख अर्जुन को सम्बोधित करते हुए नारायण कृष्ण ने कहा था –

क्लैव्य मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वऽयुपद्यते ।
क्षुद्रंहृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोतिष्ठ परंतपः। (3)

गीता पृ. सं. 26

हे पार्थ! तू नामर्द मत बन। यह तुझे शोभा नहीं देता । हृदय की पामर निर्बलता का त्याग करके, हे परंतप ! तू उठ !

संसार में आदरपूर्वक जीने का सबसे सरल और शर्तिया उपाय यह है कि हम जो कुछ बाहर से दिखना चाहते हैं वैसे ही वास्तव में भी हो। – **सुकरात**

शेर भूखा मर जाना पसन्द करता है, कुत्ते का झूठा खाना कभी नहीं खाता। – **शेख सादी**

एक हजार वर्ष भी कठिनाई से एक राष्ट्र बना पाते हैं, लेकिन वह राष्ट्र केवल घण्टे–भर में समाप्त हो सकता है। – **बायरन**

अधिक जनसंख्या होने से या दूसरे देशों को हड़पकर कोई भी राष्ट्र शक्तिशाली नहीं हो सकता। – **रस्किन**

अपनी राष्ट्रीयता की भावना शुद्ध रखो, आपका राष्ट्रीय दृष्टिकोण स्वयमेव प्रबुद्ध हो जाएगा। **– रस्किन**

सच्ची महानता हृदय की पवित्रता में है, इसमें नहीं कि कोई तुम्हारे बारे में क्या कहता है? **– रामदास**

मनुष्य ठीक उसी मात्रा में महान् बनता है जिस मात्रा में वह मानव–मात्र के कल्याण के लिए श्रम करता है। **– सुकरात**

आज तक ऐसा कोई महान् व्यक्ति नहीं हुआ जो सदाचारी न रहा हो। **– फ्रेंकलिन**

कुछ जन्म से ही महान् होते हैं; कुछ महानता प्राप्त करते हैं और कुछ लोगों पर महानता लाद दी जाती है। **–शेक्सपियर**

संसार महान् व्यक्तियों के बिना नहीं रह सकता, किन्तु महान् व्यक्ति संसार के लिए बहुत दुःखदायी होते हैं। **–गेटे**

25- विश्व (भूमण्डल) में शान्ति हो तो कैसे?

बिन्दुओं का समूह ही सिन्धु है। यदि प्रत्येक जल बिन्दु का स्वाद लवणाक्त है तो उससे जो सिन्धु बनेगा उस सिन्धु का भी स्वाद लवणाक्त ही होगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति शान्त, सभ्य, अच्छा होगा तो उससे जो समाज बनेगा वह भी शान्त, सभ्य, अच्छा ही होगा। जिस प्रकार शुद्ध सुवर्ण से बनने वाले अलंकार भी शुद्ध ही होंगे। समाज अच्छा होगा तो राष्ट्र भी अच्छा होगा। प्रत्येक राष्ट्र अच्छा होगा तो भूमण्डल तथा विश्व भी अच्छा होगा। अतः विश्व शान्ति के पहले व्यक्ति–शान्ति, समाज–शांति, राष्ट्र की शांति नितान्त आवश्यक है। अतएव विश्व शांति का शुभारंभ व्यक्ति शान्ति से तथा विश्व–निर्माण का मंगलाचरण व्यक्ति निर्माण से करना चाहिए।

जब तक बिन्दु सिन्धु में रहती है तब तक बिन्दु प्रखर सूर्य किरण से भी शीघ्रता से सूखती नहीं है परन्तु वही बिन्दु जब सिन्धु से अलग हो जाती है। तब मन्द सूर्य–किरण से भी शीघ्रता से सूख जाती है। इसलिए विश्व की शान्ति का अर्थ है विश्व के प्रत्येक जीव की शान्ति। अतः आत्म–शान्तिकामा को भी विश्व की शांति की कामना करनी चाहिये तथैव च विश्व शांतिकामा को भी आत्म शान्ति का कार्य करना चाहिए। आत्मशान्ति तथा विश्वशान्ति परस्पर अनुपूरक परिपूरक

हैं। अतएव आत्म–शान्ति के लिए महान् व्यक्ति विश्व–शान्ति की भावना भाते हैं। यथा–

अयं निजःपरो वेत्ति भावना लघुचेतसाम्।
उदार पुरूषाणां तु वसुधैव स्व- कुटुम्बकम् ॥

क्षुद्र, संकुचित भावना युक्त व्यक्ति में अपना–पराया का निकृष्ट भेद–भाव रहता है, परन्तु उदारमना सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार मानता है, जिससे विश्व के प्रत्येक जीव को अपने परिवार का एक सदस्य मानकर सबके साथ प्रेम, मैत्री, उदारता, समता का व्यवहार करता है। इसको ही विश्व बन्धुत्व, सर्वात्मानुभूत कहते हैं। यह है धर्म का सार, अहिंसा का आधार विश्व शान्ति का अमोघ उपाय।

जैन आचार्य ने कहा भी है –

जीव जिणवर से मुणहि जिणवर जीव मुणहि ।
ते समभाव परट्ठिया लहु णिव्वाणं लहइ॥

जो जीव को जिनवर एवं जिनवर को जीव मानता है, वह परम साम्य भाव में स्थित होकर अतिशीघ्र निर्वाण पद को प्राप्त करता है। यह है सर्वोत्कृष्ट, साम्यवाद, गणतन्त्रवाद, समाजवाद, लोकतन्त्रवाद।

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टाः भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुध्दिमद्भिर्महात्माभिः॥

महाभारत अनुशासन पर्व 275/19

जैसे मानव को अपने प्राण प्यारे हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियों को अपने–अपने प्राण प्यारे हैं। इसलिए जो लोग बुद्धिमान और पुण्यशाली हैं, उन्हें चाहिए कि वे सभी प्राणियों को अपने समान समझें।

यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥

सुत्त निपात 3–3–27

जैसे मैं हूँ वैसे ये है, तथा जैसे ये है वैसा मैं हूँ– इस प्रकार आत्म सदृश्य मानकर न किसी का घात करें न कराये।

सव्वे तसन्ति दण्डस्य, सव्वेसिं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥

(धम्मपद 10/1)

सब लोग दण्ड से डरते हैं, मृत्यु से भय खाते हैं। दूसरों को अपनी तरह जानकर न तो किस को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करे।

यो न हन्ति न घातेति, न जिनाति न जापते।
मित्तं सो सव्वभूतेसु वेरं तस्स न केनचीति।

(इतिवुत्तक, पृ 20)

जो न स्वयं किसी का घात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, न दूसरों को जितवाता है, वह सर्वप्राणियों का मित्र होता है, उसका किसी के साथ वैर नहीं होता।

आत्मनःप्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। – मनुस्मृति

जो कार्य तुम्हें पसन्द नहीं है, उसे दूसरों के लिये कभी मत करो।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोद। क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्॥
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ। सदा ममात्मा विदधातु देव। (1)

(भावना द्वात्रिंशातिका)

हे भगवान् ! मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रहे, गुणीजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिए करुणाभाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा माध्यस्थ भाव (साम्यभाव) रहे।

कुरान में विभिन्न स्थानों पर अहिंसा, विश्व–शान्ति की शिक्षा दी गयी है। 'सूरः मायदा' में हजरत अली के दो पुत्रों का वर्णन करते हुए, जिनमें एक ने दूसरे की नाहक हत्या की थी अल्लाह का कथन है–

'इसी कारणवश हमने बनी इसराईल को यह लिखकर दे दिया कि जो कोई किसी मनुष्य की हत्या करे, बिना इसके कि उसने किसी की हत्या की हो या पृथ्वी पर उपद्रव किया हो तो मानो उसने सभी मनुष्यों की हत्या की और जिसने किसी के जीवन की रक्षा की हो तो मानो उसने सभी मनुष्यों के जीवन की रक्षा की।' (सूरः मायदा आयत–32)

एक और स्थान पर अल्लाह कहता है कि–

'ऐ मोहम्मद सल्ल लोगों से कह दो कि आओ मैं तुम को बताऊँ कि अल्लाह ने तुम पर क्या हराम किया है, तुम्हारा कर्त्तव्य है कि अल्लाह के साथ किसी को भागीदार (शरीक) मत बनाओ, माता–पिता के साथ सद्व्यवहार करो। अपनी औलाद की दरिद्रता के भय से हत्या न करो, हम जहाँ तुमको जीविका देते हैं वहाँ उनको भी देंगे, बदकारी (दुष्कर्म) के पास भी मत जाओ, चाहे वह छुपी हुई हो या खुली हुई। (सूः इनाम, आयत 151)'

इस्लाम धर्म के पैगम्बर हजरत मोहम्मद भी मानवीय जीवन का इतना अधिक सम्मान करते थे कि उनमें अपने–पराये का अन्तर भी न था। एक बार एक यहूदी की अर्थी उनके सामने से जा रही थी, तो वह उसके सम्मान में खड़े हो गये थे। उनके एक साथी ने कहा कि यह तो मुसलमान नहीं था। उन्होंने फरमाया कि क्या वह मनुष्य न था, अर्थात् मानव का आदर आवश्यक है। वह मुसलमान हो या न हो।

'आत्मवत्परत्र कुशल वृत्ति चिन्तनं शक्तिस्त्याग तपसी च धर्माधिगमोपायाः।'

(नीतिवाक्यामृत)

अपने ही समान दूसरे प्राणियों का हित (कल्याण)– चिंतवन करना, शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना और तपश्चरण करना ये धर्म प्राप्ति के उपाय हैं।

'सर्व सत्वेषु हि समता सर्वा चरणानां परमं चरणम्' (5)

समस्त प्राणियों में समता भाव रखना अर्थात् उनकी रक्षा करना सभी सत्कर्त्तव्यों में सर्वोत्तम कर्तव्य है।

''सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख माप्नुयात् ॥''

सम्पूर्ण जीव जगत सुखी, निरोगी, भद्र, विनयी सदाचारी रहें। कोई भी कभी भी थोड़े भी दुःख को प्राप्त न करें।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहित निरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषा प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः॥

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, जीव समूह परहित में निरत रहें, सम्पूर्ण दोष विनाश को प्राप्त हो जावें, लोक में सदा सर्वदा सम्पूर्ण प्रकार से सुखी रहें।

मा कार्षीत् कोऽपि पापानि, मा च भूत् कोपि दुःखितः।
मुच्यतां जगदप्येषां, मति मैत्री निगद्यते॥

कोई भी पाप कार्य को न करें, कोई भी दुःखी न रहे, जगत् दुःख, कष्ट वैरत्व से रहित हो जावें इसी प्रकार की भावना को मैत्री भावना कहते हैं।

कायेन, मनसा वाचा सर्वेष्वपि च देहिषु
अदुःख जननी वृत्ति मैत्री, मैत्रीविदां मता॥

काय, मन, वचन से सम्पूर्ण जीवों के प्रति ऐसा व्यवहार करना जिससे दूसरों को कष्ट न पहुँचे इसी प्रकार के व्यवहार को मैत्री व्यवहार कहते हैं।

पूज्यपाद स्वामी ने भी विश्व कल्याण के लिये जो भावना के सूत्र दिए हैं वे निम्न प्रकार है–

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।
काले-काले च सम्यक् वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यं प्रदायि (15)

(शांति भक्ति)

सम्पूर्ण प्रजा क्षेम, कुशल होवें, धार्मिक राजा (नेता) शक्ति सम्पन्न होवें, समय–समय पर इन्द्रदेव (बादल) सुवृष्टि करें, रोग नाश को प्राप्त होवें, दुर्भिक्ष, चोरी, डकैती, आतंकवाद, दुःख, कलह, अशान्ति एक क्षण के लिए भी इस जीव जगत् में न रहें। सब जीवों को सुख प्रदान करने वाले जिनेन्द्र भगवान् का धर्मचक्र (क्षमा, अहिंसा, दया, सत्य, मैत्री, संगठन आदि) सतत प्रवर्तमान रहे।

उपनिषद् में भी किसी जीव के प्रति घृणा न करके प्रेम करने के लिए कहा गया है:–

यस्तु सर्वाणि भूतानि, आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं, ततो न विजुगुप्सते॥

जो अन्तर्निरीक्षण के द्वारा सब भूतों (प्राणियों) को अपनी आत्मा में ही देखता है, और अपनी आत्मा को सब भूतों में, वह फिर किसी से घृणा नहीं करता है।

उपर्युक्त गुणों से, भावनाओं से एवं कार्यप्रणाली से ही विश्वशान्ति हो सकती

है। अन्यथा केवल नारेबाजी से पत्र–पत्रिकाओं में छपवाने से, भाषण बाजी से और यहाँ तक कि विश्व शान्ति के लिये गठित संगठित विभिन्न संघ एवं संगठन से विश्व शान्ति नहीं हो सकती है। जैनधर्म के प्रत्येक तीर्थंकर जो कि स्वयं सार्वभौम चक्रवर्ती, राजा, महाराजा या राजकुमार होते हैं वे भी स्वशान्ति के लिए एवं विश्व शान्ति के लिये समस्त राजसत्ता को त्याग करके उपर्युक्त गुणों को स्वयं में प्रकट करते हैं। यदि केवल राजसत्ता से, वैभव से, सैनिक शक्ति से, शारीरिक या अस्त्र–शस्त्र की शक्ति से शान्ति की उपलब्धि होती तो वे उपर्युक्त शक्तियों को त्याग करके आत्म शक्ति की आराधना क्यों करते ? इसी प्रकार महात्मा गौतम बुद्ध भी इकलौते राजकुमार थे तथापि वे शान्ति की खोज के लिये समस्त वैभव को त्याग करके साधु बन गये। इसी प्रकार प्रायः प्राचीन से लेकर आधुनिक तक, देश से लेकर विदेश तक समस्त महापुरुष शान्ति के लिये आध्यात्मिक, नैतिक एवं मानवीय गुणों को ही परिमार्जित, परिष्कृत, परिवर्धित करते हैं। पहले तीर्थंकर तथागत बुद्ध, पैगम्बर मोहम्मद, ईसामसीह, साधुसन्त शान्ति के लिये कार्य करते रहे। आधुनिक युग में कुछ साधुसन्त, समाज–सुधारक, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, साहित्यकार, लेखक आदि ने ऐसे कार्य के लिये महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यथा– राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन, राजा राममोहन राय, महात्मा फुले, दयानन्द सरस्वती, विवेकान्द, महात्मा गाँधी, टॉलस्टाय, रस्किन, बर्नाड शॉ, वैज्ञानिक आइन्स्टीन ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, उत्कलमणि गोपबन्धुदास, महर्षि अरविन्द, मदर टेरेसा, फ्लुरेंस नाइटिंगल आदि ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

उपर्युक्त वर्णन शान्ति के लिये कार्य करने वाले व्यक्ति विशेष का है। समिष्टि रूप से भी इस क्षेत्र में भी कार्य हुआ है। यथा– संयुक्त राष्ट्र संघ, रेडक्रास, एम्बुलेंस, लायन्स क्लब, रोटरी क्लब, एन.सी.सी., स्काउट आदि ने अपने–अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है और अभी भी कर रहे हैं। प्राचीन पुराण, इतिहास साक्ष्य है कि प्राचीन काल में थोड़ी–थोड़ी बात को लेकर एक राजा दूसरे राजा के साथ, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ युद्ध करने में उतारू हो जाते थे। वर्तमान काल में कुछ औदारिक विचारधारा के कारण पहले के समान अभी समस्याऐं नहीं हैं। अभी कोई राष्ट्र में किसी कार्य को लेकर किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न होने पर वे परस्पर विचार–विमर्श करके समाधान का रास्ता ढूँढ़ते हैं। यदि परस्पर

विचार–विमर्श से कोई निर्णय पर नहीं पहुँचते हैं तो उस विषय को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ले जाते हैं। वहाँ सब राष्ट्र मिलकर विचार–विमर्श करते हैं। इसलिये प्राचीन काल में राजनीति को लेकर, धार्मिक सम्प्रदाय को लेकर या किसी भी छोटे–बड़े कारण को लेकर युद्ध होते थे वे प्रायः अभी नहीं होते हैं। अभी संचार माध्यम से शिक्षा के प्रचार–प्रसार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध से, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लेनदेन से मानों पृथ्वी सिकुड़ कर एक संक्षिप्त परिवार बन गई है। इसलिए अभी एक राष्ट्र विपन्न होने पर, किसी भी प्रकार संकट में होने पर अन्य राष्ट्र उसकी सहायता करते हैं। जिस प्रकार अभी कुछ वर्ष पहले भारतवर्ष के महाराष्ट्र प्रान्त में लातुर में जो भूकम्प हुआ था उसके लिये राष्ट्र से सहायता मिली ही है परन्तु अन्यान्य राष्ट्र से भी सहायता मिली है। इसी प्रकार एक छोटा सा निर्बल देश कुवैत के ऊपर ईराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने आक्रमण किया, अन्यान्य किया तब अन्च राष्ट्र ने भी कुवैत की सहायता की। इसी प्रकार कभी किसी देश में महामारी फैलने पर, बाढ़ आने पर, भूकम्प आने पर, दुष्काल आने पर या अन्य किसी भी प्रकार की विपत्ति आने पर अन्य देश सहायता करते हैं। यह आधुनिक युग की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

जिस प्रकार दीपक के नीचे अंधेरा होता है उसी प्रकार अभी भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भूमण्डल (विश्व) में अनेक दुष्कर्म, भ्रष्टाचार, दादागिरी, अनैतिक कार्य चलते हैं जिससे अभी भी अन्तर्राष्ट्रीयस्तर पर शान्ति की स्थापना नहीं हो पा रही है। जो आर्थिक, सामाजिक या अणुशस्त्र से सम्पन्न हैं वह अन्य देश के ऊपर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में दबाव ड़ालता है, दूसरों को शोषण करता है, अपनी तानाशाही शक्ति दिखाता है। जिस प्रकार अभी का एक ज्वलन्त प्रकरण है व्यापक परमाणु परीक्षण सन्धि (C.T.B.T.)। जिस देश के पास अनेक परमाणु अस्त्र हैं जिन्होंने अनेक बार परीक्षण कर लिया ऐसे अमेरिका, फ्रांस, जापान आदि देश अन्य देश के ऊपर दबाव डाल रहे हैं कि आप परमाणु परीक्षण नहीं कर सकते हैं, बम तैयार नहीं कर सकते हैं। दूसरों के ऊपर कानून लगाने वाले स्वयं क्यों कानून के विरुद्ध कार्य किया ? और अभी तक उन परमाणु अस्त्रों को क्यों संभाल कर रखा ? यह तो चोर साहूकार को डाँटने वाली नीति है। जिसने अनेक बार अन्याय किया ऐसा व्यक्ति क्या एक न्यायसिद्ध व्यक्ति को तुम आगे अन्याय नहीं करना ऐसे अधिकारपूर्ण, दादागिरी से युक्त आज्ञा देने का नैतिक बल रखता

है ? यह तो उसी प्रकार है कि वैश्या का सती को शील की रक्षा करने के लिये उपदेश देना, बिल्ली के द्वारा चूहों को अहिंसा का उपदेश देना, धूर्तों के द्वारा धार्मिकों को धर्म का उपदेश देना।

विशेष आश्चर्य एवं खेद का विषय यह है कि जो अणु शक्ति से युक्त देश है वे तो दूसरे देशों को अणु–शक्ति विक्रय करेंगे और अणु–शक्ति से रहित देशों को दबाव डालेंगे कि तुम अणु–शक्ति परीक्षण मत करो, अणु–अस्त्र मत बनाओं। क्या यह उनकी भक्षक नीति, कूटनीति, आक्रमण नीति नहीं है ? यदि वे ही अणु–शक्ति से युक्त होगें तो सामरिक – शक्ति से सम्पन्न होगें और दूसरों को बेच कर आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न होंगे। इसे वे अन्य दुर्बल देशों के ऊपर आधिपत्य भी स्थापना कर लेंगे। इसलिए पहले अणु–शक्ति सम्पन्न देशों को प्रथमतः अणु –अस्त्र ही नहीं बनाना था। द्वितीयतः अणु–अस्त्र कभी भी प्रयोग नहीं करेंगें यह सन्धि करके, तृतीयतः अणु–अस्त्र दूसरे देशों को नहीं बचेंगे ऐसी सन्धि भी करनी चाहिए। पहले स्वयं सुधर कर दूसरों को सुधरने का उपदेश देना चाहिए; आप सुधरे बिना दूसरों को उपदेश नहीं दे।

कुछ राष्ट्र अन्यराष्ट्र में आतंक, अराजकता, हिंसादि फैलाने के लिए सुनियोजित ढंग से उग्रवादियों को भेजते हैं और इधर शान्ति, मैत्री, समता का उपदेश देते रहते हैं। ऐसे राष्ट्रों की नीति उस व्यक्ति के समान हैं जो दूसरों के धक्का देकर कुएँ में डालकर कहता है 'अरे कुएँ में गिर गया' तथा घड़ियाली आँसू बहाता है।

उन्नत सभ्य, आधुनिक–वैज्ञानिक युग में वास करने वाले विकृतमानसिकता के शिकार राष्ट्रनायकों की वास्तविकता का उजागर अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर तैनात सैनिकों से होता है। जिस प्रकार चिड़िया घर के चारों दिवालों के मध्य में रहने वाले हिंस्रपशु यदि किस कारण से दिवालों को पार कर लेते हैं तो दूसरों के ऊपर आक्रमण कर लेते हैं, दूसरों को घायल कर लेते हैं, अथवा दूसरों को खा लेते हैं, उसी प्रकार एक राष्ट्र में रहने वाले दो पैर वाले खूंखार हिंस्र मनुष्याकार पशु स्वतंत्रता, अधिकार, मर्यादा, सत्य, अहिंसा, न्याय, समता, विश्व–मैत्री, विश्व शान्ति की मर्यादा को लांघ कर, कुचलकर दूसरों के राष्ट्रों के ऊपर आक्रमण कर लेते हैं, दूसरों को रोंद देते हैं दूसरों को ध्वंस, विनाश करने में लग जाते हैं, इसके कारण भी दूसरे राष्ट्रवाले आत्मरक्षा के लिए सैनिक, अस्त्र–शस्त्र की व्यवस्था करते हैं। यदि कोई भी राष्ट्र अन्य राष्ट्र के ऊपर आक्रमण नहीं करता

तब करोड़ों सैनिक, अरबों रूपयों के अस्त्र-शस्त्र, यान-वाहन, यंत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। सैनिक विश्व के विकास के लिए रचनात्मक कार्य करते, यानवाहन यातायात के काम आते, अस्त्रशस्त्रादि को बनाने में जो धन बल, जन बल लगता है उसका सदुपयोग कल्याणकारी कार्य में होता। परमाणु अप्रसार सन्धि, व्यापक परमाणु अपरीक्षण सन्धि, निरस्त्रीकरण, अस्त्रों के क्रय-विक्रय आदि की ही आवश्यकता नहीं होती। परमाणु बम-परीक्षण में, बम-विस्फोट, युद्धादि से जो प्रदूषण होता है वह भी नहीं होता। परन्तु जब एक राष्ट्र सैनिक, अस्त्र, शस्त्र रखता है, दूसरों के राष्ट्रों के ऊपर आक्रमण करता है तो बाध्य होकर दूसरे राष्ट्र भी स्व-सुरक्षा के लिए सैनिक, अस्त्र-शस्त्र रखते हैं, आक्रमण के विरूद्ध प्रति आक्रमण करते हैं। इसके बिना राष्ट्र की रक्षा, स्वाधीनता की रक्षा, न्यायादि की रक्षा नहीं हो सकती है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर प्रायः कोई भी राष्ट्र पूर्ण अहिंसक, शान्ति-प्रिय, निरस्त्रिकरण करनेवाला, साम्यवादी, मानवतावादी, आदर्श नहीं है। फिर किसका क्या नैतिक अधिकार है जो दूसरों को शान्ति का उपदेश दे। स्वयं भ्रष्ट आचरण में लिप्त होकर दूसरों को शान्ति का उपदेश का अर्थ है आप लोग कायर, नपुंसक, दीन, हीन, दुर्बल, असहाय, निहत्थे बन जाओ जिससे हमें तुमको शोषण करने में पराधीन करने में, हत्या करने में, रोंदने में सरलता होगी, सहजता होगी। ऐसे तानाशाही करने वाले राष्ट्रों का व्यवहार उस बगुला के समान है जो जलाशय में मछली को पकड़ने के लिए एक पैर पर खड़ा होकर ध्यान करना और मछलियों को उपदेश देना कि तुम सब भी मेरे पास मेरे समान स्थिर होकर ध्यान करो। कदाचित् मान लो बगुला का उपदेश सुनकर कोई मछली बगुला के पास स्थिर होकर ध्यान करने लगेगी तो उस मछली की क्या दशा होगी ? वह बगुला उस मछली को उदरस्थ कर देगा। पहले भी इंग्लेण्ड आदि देशों ने दुर्बल, सरल, भोले-भाले देशों के ऊपर ऐसा ही व्यवहार किया था। इसलिए कहा है- 'क्षमावीरस्य भूषणम्' तथाच 'दुर्बलस्य दूषणम्' अर्थात् बलवान बन कर, समर्थ बनकर क्षमादान करो दुर्बल बनकर नहीं। यदि दुर्बल व्यक्ति कदाचित् हृदय से भी क्षमादान करता है तो दूसरे सोचेंगे कि यह इसकी लाचारी थी, विवशता थी। इससे उस क्षमादान करने वाले को ही और सतायेंगे। जैसा की हिंसक सशस्त्र वाला दुर्बल व्यक्ति को कहता है कि अस्त्र डाल दो। यदि वह अस्त्र डाल देगा तो उस हिंसक व्यक्ति को उस दुर्बल व्यक्ति को

मारने में और भी सरलता हो जायेगी।

जिस प्रकार डाकू परस्पर प्रेम से रहते हैं परन्तु दूसरों को लूटते हैं, दूसरों की हत्या करते हैं उसी प्रकार कुछ कट्टर राष्ट्रवादी तो स्वराष्ट्र में परस्पर प्रेम से रहेंगे परन्तु दूसरे राष्ट्रों को लूटेंगे, वहाँ आतंक फैलावेंगे, दूसरे राष्ट्रों के ऊपर आक्रमण करेंगे। ऐसे व्यक्तियों की राष्ट्रीयता डाकुओं के परस्पर प्रेम के समान है, हिंस्र पशुओं के परस्पर स्नेह के समान है। गाय जिस प्रकार स्व बछड़े से प्रेम करती है परन्तु दूसरों के बछडों से भी द्वेष नहीं करती है उसी प्रकार राष्ट्र प्रेमियों को होना चाहिये। उनका स्वराष्ट्र के प्रति तो निश्छल प्रेम होना चाहिये तथा दूसरे राष्ट्रों के प्रति भी वात्सल्यपूर्ण व्यवहार होना चाहिए। महात्मा गाँधी के अनुसार स्व-स्वतंत्रता की सीमा को लाँघकर दूसरों की सीमा में प्रवेश करना स्वतंत्रता नहीं है परन्तु स्वच्छन्दता/उच्श्रृंखलता तथा स्वाधीनता का हनन है। इसी प्रकार दूसरे राष्ट्रों के अन्तरंग व्यक्तिगत विषयों में हस्तक्षेप करना भी दूसरों की स्वाधीनता का हनन है। ऐसे और भी व्यवहार दूसरें राष्ट्रों के लिए अहितकारी है उसे भी नहीं करना चाहिए।

शरीर का प्रत्येक अवयव जब स्वस्थ रहता है तभी व्यक्ति स्वस्थ हो सकता है। इस ही प्रकार विश्व के प्रत्येक जीव, प्रकृति के प्रत्येक घटक जब स्वस्थ, सन्तुलित, सुखी होता है तब ही विश्व-शान्ति हो सकती है। इसलिए विश्व के प्रत्येक जीव एवं घटक की सुरक्षा चाहिए। पर्यावरण की सुरक्षा चाहिए। अतएव कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे किसी भी जीव को क्षति पहुँचे, प्रकृति का सन्तुलन बिगड़े। जो राष्ट्र औद्योगिक करण के कारण, अर्थ उपार्जन के लिए, या और भी किसी कारण से प्रदूषण फैलाते हैं, प्रकृति का अतिदोहन करते हैं, जीवों का हनन करते हैं वे भी विश्व को क्षति पहुँचाते हैं विश्व की शान्ति को भंग करते हैं। जिस प्रकार अभी अधिक औद्योगीकरण के कारण कीटनाशक, विषाक्त औषधियों के सेवन से प्रकृति के दोहन से तथा और भी अनेक कारण से पृथ्वी का तापमान दिनों दिन बढ़ रहा है। ओजोन परत में छेद पड़ रहा हैं, एसिड (तेजाब) की वर्षा हो रही है, अनेक नवीन-नवीन रोग उत्पन्न हो रहे हैं, अनेक जीवों की प्रजातियाँ नष्ट हो रही हैं, प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ रहा है। कोई राष्ट्र यह कहकर अपराध से मुक्त नहीं हो सकता कि ये सब कार्य हमारे राष्ट्र के अन्दर कर रहे हैं। उनका ऐसा मानना इसी प्रकार है जैसे कोई

व्यक्ति नगर के मध्य में स्थित अपने घर में आग लगाकर कहेगा कि मैं सामाजिक रूप से दोषी नहीं हूँ क्योंकि मैंने अपने घर में ही आग लगाई है। क्या आग उसके अन्दर ही सीमित होकर रहेगी, क्या वह आग बाहर नहीं फैलेगी, क्या उसका दुष्परिणाम उस नगर में नहीं पड़ेगा ? जिस प्रकार अभी कुछ वर्ष पहले भोपाल गैस काण्ड हुआ । क्या उस गैस काण्ड से केवल फैक्ट्री प्रभावित हुई ? भोपाल के अन्य नागरिक उससे प्रभावित नहीं हुए ? उस भोपाल गैस काण्ड से हजारो व्यक्ति मारे गये, हजारों व्यक्ति घायल और अपंग हुए हैं और अभी भी अनेक व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ हैं एवं विकलांग बच्चे जन्म ले रहे हैं। इसी प्रकार एक राष्ट्र में जो प्रदूषण फैलता है, वातावरण बिगड़ता है, जीवों की हत्या होती है उसका भी प्रभाव अन्य राष्ट्र एवं विश्व में होता है। इसी प्रकार और भी जो कार्य साक्षात् या परोक्ष रूप से हानिकारक है उसे त्याग करने से ही विश्व शान्ति हो सकती है।

व्यक्तियों के समान राष्ट्रों का भी नाश और निर्माण होता है, किन्तु सभ्यता कभी भी नष्ट नहीं हो सकती । **(बायरन)**

राष्ट्रीयता भयानक रूप से संक्रामक बीमारी है। **(अल्बर्ट आइन्स्टाइन)**

विश्व एक सुन्दर पुस्तक के समान शिक्षापूर्ण है, किन्तु उसके लिए इसका रंचमात्र भी उपयोग नहीं जो इसको पढ़ नहीं सकता। **(गोल्डोनी)**

आकाश के अन्य सुंदर लोकों की भाँति हमारा विश्व भी सुंदर है। यदि हम अपने कर्त्तव्य मात्र को कर पाते तो वह भी उन्हीं की भाँति प्रेम से परिपूर्ण हो जाता। **(जीराल्ड मासी)**

जिस प्रकार हम ईर्ष्या एवं कुटिलता के, द्वारा संसार को नरक बना सकते हैं, वैसे ही प्रेम के द्वारा इसे स्वर्ग भी बनाया जा सकता है। **(बनाम)**

26- उच्च आदर्शमय जीवन

विचार का प्रभाव हरक्षेत्र में सर्वोपरि है, सुविचार से ही हम ऊपर उठते हैं और कुविचार से नीचे गिरते हैं। इसलिये कहा है।

उन्नत मानस यस्य तस्य भाग्यं समुन्नतम्।
नोन्नत मानस यस्य तस्य भाग्य न समुन्नतम्॥

अतएव हमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सब दृष्टि से उन्नत होने के लिये हमारे विचार को उदार, उदात्त, व्यापक बनाना चाहिये। हमारा विचार 'बहुजन हिताय' ही न होकर 'सर्वजना हिताय-सर्वजनसुखाय' होना चाहिए। प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री, गुणीजनों के प्रति आदर सम्मान का भाव, रोगी-दीन-दुःखी, गरीब जीवों के प्रति करुणा, दया, सेवा भाव होना चाहिये तथा दुखी दुर्जन पापियों के प्रति माध्यस्थ साम्यभाव होना चाहिए ।

शालीन व्यवहार

हमारा हर व्यवहार शालीनता से युक्त, नम्रता से सहित करूणा से ओत-प्रोत होना चाहिये। बड़ो के प्रति आदर तो बच्चों के प्रति प्यार / स्नेह का होना चाहिए। अनावश्यक किसी अन्य के मध्य में नहीं बोलना चाहिये। दूसरों की चीज को मालिक की अनुमति के बिना उपयोग में नहीं लाना चाहिए, न लेना चाहिए। कोई वस्तु दूसरों की ली हुई हो तो उसे समय पर सुरक्षित आदर सहित, शालीनता से वापस करना चाहिए। देने के बाद धन्यवाद ज्ञापन करना चाहिए। इसी प्रकार लेते समय भी धन्यवाद ज्ञापन करना चाहिए। बड़ों से गुरुजनों से कोई चीज लेना हो या देना हो तो नम्रता से दोनों हाथों से लेकर नमोस्तु कहना चाहिये।

हितकर वचन

नीतिकारों ने बाण से भी तीक्ष्ण वाणी को कहा है। बाण से वृक्ष कट जाने पर भी वृक्ष पुनः पल्लवित हो जाता है। किन्तु वाणी रूपी बाण से हृदय रूपी वृक्ष कट जाने पर भी वापस पल्लवित नहीं होता है। गृह कलह, सामाजिक कलह से होकर महाभारत जैसे महा प्रलयकारी युद्ध भी वाणी के कुप्रयोग से हो जाते हैं। इसलिये कवि ने कहा है-

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।

वाणी एक अनमोल निधि है जिसकी उपलब्धि मनुष्य को हुई है। इसलिए इस निधि का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। जिससे स्व-पर का उपकार होता है वह सत्य वचन है अन्यथा असत्य वचन। हमें सतत् सत्यग्राही होना चाहिये परन्तु हठग्राही नहीं। सत्य को भी दूसरों के ऊपर बलात् थोपना नहीं चाहिये। सत्यग्राही होते हुए भी नम्रता व शालीनता होनी चाहिये न कि उदण्डता। वचन सत्य के साथ-साथ हित, मित, प्रिय होना चाहिये। जितने कथन से कार्य पूरा हो जायेगा

उससे एक शब्द भी अधिक नहीं बोलना चाहिये क्योंकि इससे स्वशक्ति एवं समय के साथ-साथ दूसरों का भी समय नष्ट होता है एवं शब्द प्रदूषण भी फैलता है। स्वयं बोलते ही नहीं रहना चाहिये दूसरों को भी बोलने का योग्य अवसर देना चाहिये। प्रायः लोग मित्र एवं बड़ों के प्रति तो साधारणतः नम्र व्यवहार करते हैं परन्तु छोटों के प्रति एवं गरीब के प्रति खोटे बचन प्रयोग करते हैं। ऐसा करना शालीनता के विरुद्ध है। धार्मिक सभा, मन्दिर, सार्वजनिक क्षेत्र आदि में अधिक शालीनता, अनुशासन, मौन आदि की आवश्यकता है क्योंकि वहाँ एक व्यक्ति के कारण अनेक व्यक्ति को बाधा पहुँचती है।

सार्वजनिक क्षेत्र में व्यवहार

सार्वजनिक क्षेत्र, मन्दिर आदि में केवल अपने अधिकार को ही प्रधानता नहीं देनी चाहिये परन्तु अपने कर्तव्य को ही अधिक प्रधानता देनी चाहिए। क्योंकि हमारा कर्तव्य ही हमें समुचित अधिकार दिलाता है। कर्तव्य के बिना अधिकार चाहना याने बिना परिश्रम किये दूसरों की सम्पत्ति को छीन लेना है। सार्वजनिक क्षेत्र, धार्मिक कार्यक्रम आदि में ज्यादा भीड़ होने के कारण अव्यवस्था होने की सम्भावना रहती है, तथापि वहाँ धैर्य रखना चाहिये एवं शालीनता एवं विनम्रता का व्यवहार करना चाहिये। कुछ व्यक्ति दादागीरी दिखाने के लिये एवं अपना महत्व बताने के लिये ऐसे स्थानों पर अधिक अनुशासन भंग करते हैं जिससे दूसरों की दृष्टि को आकर्षित कर सके। परन्तु ऐसा व्यक्ति स्वयं को नीचा बना देता है एवम् दूसरों की दृष्टि में भी नीचा बन जाता है। ऐसे क्षेत्र में स्त्रियों को, बालकों की व्यवस्था अलग होनी चाहिये। आगे आने वाले को आगे का स्थान प्राप्त करना चाहिये एवं पीछे आने वाले को पीछे का स्थान प्राप्त करना चाहिए। ऐसे क्षेत्र में धूम्रपान, नशीली वस्तुओं का सेवन, पान भक्षण, तम्बाकू खाना पूर्ण वर्जित होना चाहिये क्योंकि अधिक भीड़ होने के कारण वैसे ही प्रदूषण रहता है एवं इन चीजों के सेवन से अधिक प्रदूषण फैलता है क्योंकि विषाक्त धुआँ फैलता है। तम्बाकू सेवन से जहाँ-तहाँ पीक थूँकते रहते हैं। यदि आवश्यकतावश पीछे आने वालों को आगे जाना पड़े तो आगे वालों को रास्ता देना चाहिये एवं पीछे वाले को नम्रता से आगे बढ़ना चाहिये। किसी कारणवश पैर लगने से या किसी प्रकार या समस्या उत्पन्न होने पर शालीनता से उसका समाधान करना चाहिये और क्षमायाचना करनी चाहिये। बिना कारण माईक में हैलो-हैलो नहीं

करना चाहिये या टेप रिकार्ड नहीं चलाना चाहिये क्योंकि इससे शब्द प्रदूषण होता है एवं अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। मंच पर जिनकी आवश्यकता हो ऐसे ही महत्वपूर्ण व्यक्तियों को रहना चाहिये अन्य को नहीं क्योंकि इससे अव्यवस्था फैलती है, अनुशासन भंग होता है एवं तुच्छपना प्रकट होता है। कभी-कभी वृद्ध, रोगी, महिला व बच्चे यदि पीछे आते हैं और उनके लिये स्थान नहीं है तो उन्हें आदर सहित अपना स्थान देना चाहिये। इसी प्रकार रेल, बस, स्कूल, क्लब, हास्पिटल आदि में भी यही व्यवहार करना चाहिये।

स्वयं को आत्मगौरवपूर्ण जीवन जीना चाहिये तथा दूसरों के स्वाभिमान को भी धक्का नहीं पहुँचाना चाहिए। किसी कारणवशात् किसी से कोई गलती होने पर उस गलती को तो सुधारना चाहिये परन्तु अट्टहास (खिल्ली उड़ाना) नहीं चाहिये। क्योंकि इससे स्वयं की नीचता एवं अशालीनता तो प्रकट होती ही है साथ ही साथ जिसने गलती की है वह भी अपमान अनुभव करता है। परन्तु उसकी गलती को सुधारने के लिये एकान्त में उसे प्रेम से समझाना चाहिये जिससे पुनः गलती न हो। राष्ट्रीय सम्पत्ति को व्यर्थ बर्बाद नहीं करना चाहिये क्योंकि राष्ट्रीय सम्पत्ति के ऊपर राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है न कि एक व्यक्ति का। एक व्यक्ति यदि राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षति पहुँचाता है तो वह राष्ट्र के हर व्यक्ति को क्षति पहुँचाता है। कुछ व्यक्ति अपनी माँग के लिये राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षति पहुँचाते हैं परन्तु ऐसा कार्य राष्ट्रीय दृष्टि से अनुचित है। अपनी नैतिक माँग अवश्य करनी चाहिए परन्तु उसमें सत्य, अहिंसा, शालीनता व विनम्रता आदि गुण भी अवश्य होना चाहिए।

हमारा गुण, हमारा व्यक्तित्व, हमारी महानता हमारे व्यवहार से एवं हमारे कथन से प्रकट होती है इसलिये हमें जहाँ भी और जिसके साथ भी व्यवहार करना हो या बोलना हो तो अवश्य स्वयं को सम्भालकर व्यवहार करना चाहिये या बोलना चाहिए। बड़ों से काम लेना है तो विनम्रता से काम लेना चाहिए एवं छोटों से लेना हो तो प्यार से काम लेना चाहिए। कभी ये विचार नहीं करना चाहिए कि ये तो छोटे हैं इनसे कैसे भी व्यवहार करने से चलेगा। परन्तु ऐसा व्यवहार हमें पतित कर देता है और छोटे बच्चे भी हमारे व्यवहार को जान लेते हैं जिससे वे हमें आदर नहीं देते हैं। इतिहास, पुराण से ज्ञात होता है कि महापुरुषों का व्यवहार दीन, दुःखी, पापी, पतितों के साथ भी नम्र एवं भद्र होता था। इससे

ज्ञात होता है कि नम्र व्यवहार ही हमें महान् बनाता है और विनम्र एवं भद्र व्यवहार से ही हम दुनियाँ में नाम उज्ज्वल कर सकते हैं।

विश्व कल्याण कर जीवन

स्वार्थ की क्षुद्र–परिधि को उल्लंघन करके हमें विश्व परिवार में पदार्पण करना चाहिए। केवल शरीर की चिन्ता, स्वार्थ की चिन्ता, तो निम्न श्रेणीय पशुओं की चिन्ता है। मनुष्यों का जन्म पेट (भोजन) पेटी (धन, संग्रह) प्रजनन (भोग विलासिता) के लिये नहीं हुआ है। मनुष्य का जन्म तो आत्म कल्याण के लिये, महानता के लिये, विश्व कल्याण के लिये एवं अमृत तत्त्व को प्राप्त करने के लिये हुआ है। ऐसा जीवन जो जीता है उसका जीवन ही सार्थक है, नहीं तो अन्य का जीवन तो चलता–फिरता शव का जीवन है। हमारे जीवन में मूलभूत दो तत्व है–

1. शिव (भगवान् मंगल, पवित्र, अमृत, आत्मा) 2. शव (शरीर, भौतिक वस्तु)। जब हम शिव तत्त्व को छोड़कर केवल शरीरादि भौतिक तत्त्व के लिये काम करेंगे तो हम शव बन जायेंगे। इसलिए हमें सतत् आत्म–चिन्तन, आत्म–विश्लेषण, आत्मोन्नति करना चाहिये और विचार–करना चाहिए कि मेरे अंदर कितने अंश में शिव तत्त्व प्रकट हुए हैं और अंश में शव तत्त्व है। मुझसे कितने आत्म कल्याण के, जन कल्याण के, विश्व कल्याण के कार्य हुए हैं और कितने स्वार्थ के काम हुए हैं। ऐसे व्यक्ति ही बुद्धिमान् है, प्राज्ञ है, चतुर है, पुरुषार्थी हैं। अन्य सब तो मनुष्याकार पशु या चलते–फिरते शव के बराबर है। किसी ने कहा भी है–

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किन्नुमे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरूषैरिति॥

(सा. धर्मा.)

मनुष्यों को हमेशा अपने आचरित कार्यों का अवलोकन करना चाहिए और फिर विचार करना चाहिए कि आज, मैंने कौन–कौन से कार्य तो पशु के समान किये हैं और कौन–कौन से कार्य मनुष्यों के समान किये। इस प्रकार हिताहित का विचार करने वाले को प्राज्ञः कहते हैं।

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति याति च।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥

परस्पर में अविरोध भाव से धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों के सेवन करने के बिना ही जिसके दिन आते हैं और जाते हैं वह पुरुष लुहार की धौकनी के समान श्वासोच्छ्वास लेता हुआ भी मरे हुए के समान है अर्थात् धर्म, अर्थ और काम के सेवन के बिना मनुष्य का जीवन पशु के समान निरर्थक है और उसका जीना और नहीं जीना दोनों बराबर है। अतः हमारा परम लक्ष्य निम्न प्रकार से होना चाहिए –

"असतो मा सद्गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्यो र्मा अमृतंगमय॥"

हे ! करुणामय, पतित पावन, भगवान! मुझे असत् (मिथ्या)से सत् (सम्यक्) की ओर ले चलो, अज्ञानरूपी मोहान्धकार से ज्ञानरूपी ज्योति की ओर ले चलो संसार रूपी मृत्युलोक से मोक्षरूपी अमृत की ओर ले चलो।

विश्व शान्ति भावना –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

(य.च.)

हे करुणामय भगवान् ! विश्व के सर्व जीव सुखी रहे, निरोगी रहे, सच्चरित्रमय सज्जनमय दृष्टिगोचर होवें, कभी भी कोई भी दुःख को प्राप्त न होवे।

शिवमस्तु सर्व जगतः परहित निरता भवन्तु भूत गणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्रसुखी भवतु लोकः॥

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, सम्पूर्ण जीव जगत परहित में रत रहे, सम्पूर्ण दोषों का नाश हो सदा सर्वदा सब जीव जगत् सुखी रहें।

27- दहेज की रीति-रिवाज एक डाकू की रीति-रिवाज

पहले प्यारी पुत्री को अपनी शक्ति के अनुसार स्वेच्छा से माँ–बाप कुछ दैनिक जीवनोपयोगी सामान भेट रूप में देते थे। परन्तु यह स्वैच्छिक प्रथा भी आगे जाकर शोषण की प्रथा बन गई। प्रथमतः माता–पिता बच्ची को प्यार से लालन–पालन करते हैं, शिक्षा देते हैं संस्कार देकर योग्य बनाते हैं। इसमें 20–25 वर्ष तथा

लाखों रूपये लग जाते हैं। ऐसी अमूल्य / बहूमूल्य कन्या को जो प्राप्त करना चाहे उस कन्या के मूल्य को उसके माता–पिता को देना चाहिए और कृतज्ञ बनना चाहिए। परन्तु इससे विपरीत जिस प्रकार डाकू परिश्रम से कमाया हुआ, सुरक्षित रखा हुआ दूसरों के धन को बलपूर्वक लूटता है और परिवर्तन में मालिक को कष्ट तथा मृत्युदण्ड तक देता है उसी प्रकार कुछ वर पक्ष वाले बहुमूल्य कन्या के साथ–साथ कन्यापक्ष को लूटते हैं, कन्या से यंत्र के समान काम लेते हैं और भोग सामग्री के समान भोगते हैं कन्या को विभिन्न शारीरिक, मानसिक यातनायें देते हैं और यहाँ तक की आत्महत्या के लिये विवश करते हैं या हत्या कर देते हैं। यह कितनी क्रूर, बर्बर, अनर्थ, शोषणकारी, रोमहर्षक, हिंसक वृत्ति है। जिस संस्कृति में प्रत्येक जीव को भगवान् के समान माना गया, वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों की भी रक्षा की शिक्षा दी गई उस संस्कृति में पंचेन्द्रिय और वह भी गृहलक्ष्मी की हत्या/यातना क्या शोभास्पद है? क्या ऐसी घटनायें 'अहिंसापरमो धर्मः' की जय बोलने वालों के यहाँ नहीं हो रही है? पत्ते, फूल तोड़ने में पाप बोलने वालो के यहाँ शाकाहार करने वालों के यहाँ ऐसी नारकीय, बर्बर घटनायें क्या नहीं हो रही है? ''जननी जन्म भूमिश्च स्वादपि गरीयसि'' की संस्कृति वाले देश में ऐसी मातृ–जाति की हत्या क्या नहीं हो रही है?

विवाह को कन्या–दान कहते हैं। इसका अर्थ यह हआ कि कन्या के माता–पिता दानी है, कन्या देय/दान है और वर याचक/पात्र है। जो देता है वह दानी होने के कारण बड़ा होता है जो लेता है वह याचक/भिक्षुक होने के कारण छोटा होता है और देय वस्तु दान होने के कारण पवित्र/निर्माल्य होती है। इसलिए वर को तथा वर पक्ष को कन्या तथा कन्यापक्ष को सम्मान देना चाहिए, उनका कृतज्ञ होना चाहिए। परन्तु व्यवहार में होता है इससे विपरीत। कन्या को तथा कन्यापक्ष को वर पक्ष वाले निकृष्ट मानते है, उनका अनादर करते हैं, पवित्र कन्या का दुरुपयोग करते हैं तथा कृतज्ञता के बदले कृतघ्नता करते हैं। यह सब संसार की विपरीत रीति है। इसलिए साधु–सन्त, दयालु, उदार व्यक्ति ऐसी क्रूर परम्परा का विरोध करते हैं।

पुरुष स्वयं को स्त्री से श्रेष्ठ, ज्येष्ठ पुरुषार्थी मानता हैं। इसलिए स्वयं को वर (दामाद, जमाई, कुंवरसा) कहलाता हैं एवं पत्नी को कन्या (कनिष्ट अबला) मानता हैं। परन्तु व्यवहार इसके विपरीत करता हैं। श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, पुरुषार्थी व्यक्ति कभी

भी दुर्बल, कनिष्ठ व्यक्ति से याचना नहीं करता है, भीख नहीं मांगता हैं। परन्तु वर/वरपक्ष वाले कन्या/कन्या पक्ष से भीख मांगते हैं, याचना करते हैं। ऐसे व्यक्ति न तो वर है न कन्या हैं। वे तो भिखारी हैं, चोर हैं, डाकू हैं मरे हुए के समान हैं। क्योंकि–

''मांगन मरन समान है, मत मांगों कोई भीख,
मांगन से मरना भला, यह सतगुरु की सीख।''
''बिन मांगे दूध बराबर, मांगे मिले सो पानी,
कबीर वह है खून बराबर, जामें खींचा तानी।''

दहेज के कारण अनेक बुराईयां, समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। यथा– कन्याओं को हेय, घृणित दृष्टि से देखा जाता है। कन्या जब गर्भ में रहती है, तब उसको परिवार का एक बोझ अभिशाप मानकर उसकी गर्भ में ही निर्मम हत्या कर दी जाती है। जन्म लेने के बाद भी जैसे पुत्र जन्मोत्सव मनाया जाता है, उसी प्रकार कन्याओं के लिए नहीं मनाया जाता हैं। कन्या को उच्च शिक्षा भी कम दी जाती हैं। कन्या थोड़ी बड़ी होने के बाद यदि उसकी शादी नहीं हुई है तो उसको लेकर समाज के लोग निन्दा, चुगली, आक्षेप करते रहते हैं। शादी के लिए मां–बाप को अनेक समस्यायें झेलनी पड़ती हैं। शादी होने के बाद भी दहेज को लेकर गृह कलह चलता रहता है और कन्या को विभिन्न प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक यातनाऐं देते रहते हैं। जिसके कारण अनेक कन्यायें विवश होकर स्वयं आत्म हत्या कर लेती हैं या वर पक्ष वाले उसकी हत्या विभिन्न उपाय से कर देते हैं। इससे उसके छोटे छोटे बच्चे भी अनाथ हो जाते हैं। और वेही बच्चे आगे जाकर परिवारजन से घृणा करने लगते हैं। इसके साथ–साथ लिंग अनुपात में विषमता, पारिवारिक संकलेश, समाज में समस्याएं उत्पन्न होती हैं। ऐसी क्रूर, अमानवीय विशमता पूर्ण समस्यां को समाप्त करना ही मानव के लिए अति उत्तम् हैं।

बेटे-बेटी में फर्क करने वाले अपने ही खून में फर्क करते हैं। बेटी को हीन समझकर पक्षपात करने वाले अन्यायी हैं। बेटी को जन्म ही नहीं लेने देने वाले महान हत्यारे हैं।

डो. शेखरचन्द्र जैन

28- ज्ञान-विज्ञान का आविष्कारक : भारत

जिस प्रकार वृक्ष के लिए बीज उसी प्रकार भूतकालीन सभ्यता, संस्कृति हर राष्ट्र या समाज के लिए जरुरत है क्योंकि उन घटनाओ एवं परम्पराओं से शिक्षा लेकर के हम आगे बढ सकते हैं। केवल इतिहास पढ़ लेना यह तो केवल सड़े गले शव को उखाड़ना है। इतिहास उसे कहते हैं जिसमें महापुरुष के बारे में वर्णन किया गया हो, जिससे हमें प्रेरणा मिले। एक मराठी कवि ने कहा–

''महापुरुष होउन गेले त्यांचे चारित्र पहाजरा।
आपण त्यांचे समान ह्वावे यंचि सापड़े बोध खरा॥''

हम इतिहास, पुराण आदि पढ़ते हैं, वह क्या मनोरंजन, गुणगान या समय व्यतीत करने के लिए है ? नहीं ! बल्कि जो महापुरुष हो गए हैं उनका चारित्र अध्ययन करने के लिए, उसको पढ़कर उनके आदर्शो को जीवन में अपना करके, उनके समान बनकर राष्ट्र को विश्व गुरु के रूप में स्थापित करने के लिए।

हमारा भारत कभी विश्व गुरु था क्योंकि हमारे भारत में आधुनिक विज्ञान की हर शाखायें थी। ऐसा कहा गया है कि–

''कला बहत्तर नरन की, यामें दो सरदार,
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार।''

बहत्तर कलाएँ होती हैं। उन बहत्तर कलाओं में दो कलाएँ सर्वश्रेष्ठ कलायें है, एक कला है– जीव की जीविका ''शरीर माध्यम् खलु धर्म साधनम्।'' जीव को जीविका के अन्तर्गत वाणिज्य, शिल्प, कला, व्याकरण, इतिहास, पुराण आते हैं। दूसरी कला है– जीव उद्धार! इन बहत्तर कलाओं में समस्त आध्यात्मिक विद्यायें पराविद्यायें हमारे भारत में किस प्रकार थीं उन सभी के बारे में मैं यहाँ संक्षिप्त में प्रकाश डालूँगा। सर्वप्रथम मैं यह बताना चाहूँगा जिस प्रकार सम्पूर्ण सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, ब्रह्माण्ड आकाश में गर्भित हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान का उदय विकास केवली–तीर्थंकर से हुआ है। इसलिए सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान के सम्पादक, आविष्कारक प्रवक्ता केवली भगवान हैं।

''यः सर्वाणि चराचराणि विधि–वद् द्रव्याणि तेषां गुणान्,
जानीते युगपत्–प्रतिक्षण मतः सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीरायतस्मै नमः॥

Einstain Says, "'We can only know the relactive truth the real truth is know only to the universal observer."

हम सब केवल आंशिक सत्य को जान सकते हैं। कोई भी महान् वैज्ञानिक दार्शनिक ही क्यों न हों सम्पूर्ण सत्य को नहीं जान सकते हैं क्योंकि हमारे पास जो ज्ञान हैं वो निश्चित हैं। जिस प्रकार हमारे पास अनन्त आकाश होते हुए भी हम अनन्त आकाश को नहीं देख सकते हैं क्योंकि हमारी दृष्टि शक्ति सीमित हैं। तीर्थंकर एकसाथ कितनी भाषाएं बोलते हैं ? (718 भाषाएं बोलते हैं।) इसलिए समस्त ज्ञान–विज्ञान के जन्मदाता तीर्थंकर हैं। उसके बाद सम्पादन करते हैं गणधर। समस्त कलाओं विद्याओं का सम्पादन आदिनाथ भगवान ने किया था। परन्तु उसको प्रायोगिक रूप में संक्षिप्त वर्णन मैं करुंगा। भारतीय संस्कृति में 6075 ईसा पूर्व एक धन्वन्तरी हुए हैं जो कि शल्य चिकित्सा और रसायन शास्त्र के प्रवक्ता थे। उसी प्रकार अश्विनी कुमार थे जो औषध आयुर्वेद के माध्यम से चिर यौवन रहे और एक च्यवन ऋषि थे। वो वृद्ध थे। इसलिए च्यवन ऋषि को उन्होंने औषधि दी जिसके माध्यम से वृद्ध ऋषि युवक बन गये और औषधि का नाम च्यवनप्रास पड़ गया। ये सभी हमारे प्राचीन ग्रन्थ चरक संहिता, आयुर्वेद इन सभी में उनका वर्णन है। इसके बाद पुनर्वसु आत्रय हुए। वे ईसा पूर्व 2800 वर्ष पूर्व हुये। यह सभी शिक्षा पद्धति आयुर्वेदिक शल्य चिकित्सा का वर्णन प्रतिपादन उनके शिष्यों को किया। हिपोक्रिटिश यूनानी थे। इनको इतिहासकार मानते हैं कि हिपोक्रिटिश आयुर्वेदिक के शल्य चिकित्सा के आविष्कारक हैं। परन्तु उससे भी कई हजार वर्ष पहले लिखित रूप में, प्रयोग रूप में हमारे देश में शल्य चिकित्सा से लेकर के अन्य प्रकार की चिकित्सा व शिक्षा थी। इस शल्य चिकित्सा का आविष्कार भी मूल ग्रन्थ चरक संहिता, बाग्भट्ट संहिता, योग रत्नाकर आदि में भी इनका वर्णन मिलता है। ये शल्य चिकित्सा के आद्य प्रवक्ता थे। लिखित रूप में उन्होंने ग्रन्थ लिखा सुश्रुत संहिता। ईसा पूर्व 600 वर्ष पहले भारत, ग्रीक आदि कुछ देशों को छोड़कर अन्य देश अनंत अंधकार में थे। उन्हें अंक व अक्षर का ज्ञान नहीं था और हमारे यहां सभी था। इन सभी के साक्षी शिलालेख और ग्रंथ हैं। सुश्रुत नाक, कान, गला, आंख इन सभी की शल्य चिकित्सा करते थे। एक स्थान से मांस काटकर के अन्य स्थान में जोड़ देते थे। उन्होंने शल्य चिकित्सा के 120 प्रकार के यंत्र का आविष्कार किया था। जीवक बुद्ध के चिकित्सक

थे। एक सेठ की लड़की थी । जिसकी उल्टी के माध्यम से अन्दर की जो आतें बाहर निकल गयीं, और जीवक ने (Operation) करके पुनः उसको स्थापित कर दिया। हमारे भारत में पशु–पक्षी की सुरक्षा और चिकित्सा पद्धति का भी आविष्कार हुआ था।

आदिनाथ भगवान की दो पुत्रियां थीं– ब्राह्मी और सुन्दरी। भरत–बाहुबली को उन्होंने पहले विद्यादान न देकर ब्राह्मी और सुन्दरी को दिया। क्योंकि विद्यादान के पहले आदिनाथ भगवान कहते हैं–

''विद्यावान् पुरूषो लोके सम्मति याति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते स्त्री सृष्टेरग्रिमंपदम्॥''

जिस प्रकार विद्यावान् पुरुष समाज में अग्रिम पद प्राप्त करते हैं उसी प्रकार शिक्षा प्राप्त करके स्त्री समाज में अग्रिम, स्थान प्राप्त करती है।

इसलिए स्त्री–शिक्षा का पहले आदिनाथ भगवान ने प्रारम्भ किया क्योंकि माता प्रथम गुरु होती है। इसलिए सिद्ध होता है कि पुरुष शिक्षा से महत्वपूर्ण स्त्री शिक्षा है, परन्तु मध्यकालीन परतंत्रता के कारण हम स्त्री शिक्षा को भूल गये और हम प्रतिलोमी बन गये। हमने स्त्री शिक्षा के महत्व के बजाय पुरुष शिक्षा को महत्व दिया और स्त्रियों को केवल भोग की वस्तु मान लिया। आदिनाथ ब्राह्मी – सुन्दरी दोनों को गोदी में बैठाकर सिखाते हैं। इसलिए गणित में लिखते हैं वह उल्टी संख्या हैं। क्योंकि हम 123 में पहले 3,2,1 नहीं लिखकर इससे उल्टा लिखते है, इस संख्या में 1 का स्थानमान शतक है। 2का स्थान मान दसक है और 3 का स्थान मान ईकाई हैं। हमे पहले शतक 3 लिखना चाहिए फिर दशक 2 लिखना चाहिए एवं ईकाई 3 बाद में लिखना चाहिए परन्तु हम इसमें उल्टा शतक 1 लिखते हैं, फिर दशक 2 लिखते है, बादमें ईकाई 3 लिखते हैं। इसका कारण यह है कि ब्राह्मी को दायें भाग में बैठाकर के ''अ, आ'' की शिक्षा दी थी जिससे अक्षर (भाषा, लिपि) की गति बायें से दायें ओर होती है और सुन्दरी को बायी गोद मे बैठाकर 1,2 की शिक्षा दी थी, जिसके कारण संख्या की गति दायें भाग से बायें की ओर होती है। इसलिए ''अकानाम् वामतो गति।'' अर्थात् अंको की गति वाम से होती है। इससे स्वतः प्रमाण सिद्ध हुआ कि ब्राह्मी लिपि का आविष्कार ब्राह्मी के नाम पर हुआ।

आदिनाथ भगवान ने कई खण्ड़ों में व्याकरण शास्त्र को रचा था। परन्तु अभी

लिपिबद्ध रूप में सबसे प्राचीनतम व्याकरण पाणिनी व्याकरण है। पाणिनी व्याकरण ईसा पूर्व 500 वर्ष पूर्व लिखा गया। हमारे भारत में ''0'' व दशमलव पद्धति का आविष्कार हुआ। यदि दशमलव पद्धति 1 से 9 तक आविष्कार नहीं होता तो गणित व विज्ञान का आविष्कार भी नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि गणित व विज्ञान का विकास हमारे भारत में हुआ, परन्तु हम भूल गये। केवल 1200 वर्ष पूर्व एक भारतीय वैज्ञानिक गणित ज्योतिष लेकर अरब गया और अरब से यूरोप और यूनान। वहाँ से जाकर विकास हुआ।

नवीं शताब्दी में नागार्जुन जो भारत के सुप्रसिद्ध रासायनिक वैज्ञानिक थे, उनका ग्रन्थ रसायन शास्त्र था। गणित में महावीर आचार्य का एक शास्त्र है **''गणित सार संग्रह''** जिसमें लघुत्तम समावर्त्त, दीर्घ वर्त्त और अंक गणित व बीज गणित आदि का वर्णन है। 998 में ब्रह्म गुप्त हुए जिनका ग्रन्थ 1200 वर्ष पहले विदेशों में गया। उसमें अंक गणित, बीज गणित रेखा गणित हैं और π (पाई) का वर्णन है। भास्कराचार्य जिसने कि न्यूटन से 500 वर्ष पूर्व गुरुत्वाकर्षण की खोज की। न्यूटन जब पेड़ के नीचे बैठे थे तो एक फल उनके सिर पर गिरा तो उन्होंने सोचा कि फल ऊपर या इधर–उधर जाने की बजाय सीधा नीचे ही क्यों आया और उन्होंने गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की खोज की और सूत्र दिया।

''आकृष्टि शक्तिश्च मही तपायत स्वस्थ गुरु स्वामि मुख स्वशक्या।''

भूमि में आकर्षण शक्ति है। अतः आकाश में स्थित भारी वस्तु को भूमि अपनी शक्ति से अपनी ओर खींच लेती है, और हम मानते हैं, पढ़ते हैं और पढ़ाते हैं कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रतिपादन न्यूटन ने किया। दीपक के नीचे अंधेरा हैं। हमारे अन्दर आत्मबल नहीं है। जिससे हम अपने सिद्धान्त को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म गुप्त ने π (पाई) का केवल वर्ग मूल करके छोड़ दिया था। परन्तु भास्कराचार्य ने उसका Value निकाला । 3.14166 और आधुनिक गणित के अनुसार 22/7 = 3.142 बताया हैं। आर्कमिडिस ने प्लावन सूत्र, आयतन सूत्र को प्रतिपादित किया था। जबकि इसका जन्मदाता 3000 वर्ष पूर्व अभय कुमार था। जो कि श्रेणिक का पुत्र और महामंत्री था। सूर्य सिद्धान्त का प्रतिपादन सिद्धान्त शिरोमणी व लीलावती ने किया। अभय कुमार ने हाथी के वजन करने के लिए आयतन सूत्र का आविष्कार किया। कुछ गरीब ब्राह्मणों की रक्षा के लिए किया था। श्रेणिक उनको कष्ट देना चाहता था उनकी

क्षा करने के लिए श्रेणिक ने कहा, हाथी का वजन करने ले आओ। इसके लिए अभयकुमार ने आर्कमिडिस जैसा सूत्र दिया था कि तुम एक नौका जल में रखो, फिर नौका में हाथी को रखो। फिर नौका वजन के कारण डूबेगी। जहां तक नौका डूबेगी वहां तक चिन्ह लगा दो। फिर हाथी को निकाल दो, फिर उस पत्थर का वजन करो, फिर वह हाथी के बराबर वजन का हो जायेगा।

आज तक हम यह जानते है कि हवाई जगाज का आविष्कार राइट ब्रदर्स ने किया था लेकिन पुष्पक विमान जो काफी बड़ा था उसका निर्माण महाभारत काल के पूर्व में हो चुका था। जिसका निर्माण हिन्दु धर्म के अनुसार ब्रह्मा ने किया और कुबेर को दिया। कुबेर से रावण युद्ध करके ले आया। पुष्पक विमान एक योजन (12 k.m.) लम्बा था और चौड़ाई (6 k.m.)आधा योजन। उसमें लाखों मनुष्य,हजारों हाथी, घोड़ा, अस्त्र, शस्त्र, भोजन, बगीचा, व्यायाम शाला, तालाब आदि होते थे।

आर्यभट्ट 476 सन् गुप्त काल में हुए और उन्होंने आर्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। शून्य का आविष्कार वर्षों पूर्व हो गया था। लेकिन शून्य का लिपिबद्ध रूप में, व्यापक रूप में प्रयोग आर्यभट्ट ने दिया। त्रिकोणमिति मे Sin 0(थीटा). Cos 0 (थीटा) को भी आर्यभट्ट ने दिया। पृथ्वी गोल है जो अपनी धुरी पर भ्रमण करती है। इस सिद्धान्त को भी आर्यभट्ट ने सिद्ध किया। द्वितीय आर्यभट्ट 950 में हुए जिसने महान् सिद्धान्त दिया। रॉयल सोसायटी जो कि अभी अग्लैण्ड में है, ऐसी ही संस्था की स्थापना हमारे भारत में 1500 वर्ष पूर्व हुई थी। यहां पर केवल विशिष्ट वैज्ञानिक ही सदस्य बन सकते थे। दूसरे के लिए स्थान नहीं था। इन्हें ही विक्रमादित्य के नवरत्न पंडित कहते थे। उसमें एक थे बारह मिहीर और उन्होंने **बृहत् संहिता** ग्रन्थ लिखा इसमें ऋतु विज्ञान, कृषि विज्ञान आदि का वर्णन है। सभी विषय के वैज्ञानिक व गुरु हमारे भारत में हुए जिन्होंने सर्वप्रथम वैज्ञानिक, धार्मिक, दार्शनिक आविष्कार किया, इसलिए हमारा भारत विश्व गुरु कहलाया।

हमारा भारत विश्व का गुरु रहा यह केवल भारतीयों का गुणगान नहीं है, ठोस आधार पर हमारा भारत विश्व गुरु रहा। अभी भी हमारे पास क्षमता, शक्ति व उपलब्धि है केवल हमें जगना है। जैसे एक व्यक्ति के घर में गड़ी हुई करोड़ो की सम्पत्ति है लेकिन उसे मालूम नहीं है कि हमारे यहां सम्पत्ति है तो जीवन

भर केवल गरीब व अज्ञानी रहेगा। यदि मालूम होगा तो परिश्रम कर सम्पत्ति निकालेगा तो धनपति बन जाएगा। इसी प्रकार हमारे पास सब कुछ होते हुए भी जिस प्रकार मृग की नाभि में कस्तूरी है तथाति इधर-उधर भटक रहा है। उसी प्रकार हम हमारे मूल उद्देश्य से भटक गये, हम विछिन्न हो गये। जिस प्रकार वृक्ष मूल से कट जाता है तो कितना भी पानी पिलाने पर वृक्ष सूख जाता है उसी प्रकार हम मूल से कट गये तो कितना भी सिंचित करने पर हम विकसित नहीं हो पायेंगे। इसलिए हमें मूल से जुड़ना है। पुनः हमारी भारतीय सभ्यता संस्कृति के ज्ञान-विज्ञान को पल्लवित करके पुष्पित करना है। हमें दिखा देना चाहिए कि हमारा भारत विश्व गुरु था अभी क्षमता रुप में है, भविष्य में इसे विश्व-गुरु बनाना है और 21वीं शताब्दी का स्वागत हमें ज्ञान, क्रांति, प्रगति से करना है। उसके स्वागत के लिए यह संगोष्ठी है। यह संगोष्ठी 21वीं शताब्दी के आह्वान के लिए स्वर्णिम व प्रकाशवान बनाने के लिए आयोजित की गई है और उसके लिए समर्पित है।

(संगोष्ठी में 23-11-99 को आचार्य रत्न कनकनंदी द्वारा दिया गया प्रवचन जिसे सुनकर उपस्थित वैज्ञानिक, प्रोफेसर्स, न्यायविद्, पत्रकार, प्राचार्य, शोधार्थी-गण रोमांचित हुए एवं गौरव से अभिभूत हुए।)

प्रस्तुति - समता गान्धी (सलुम्बर), सुलोचना, प्रमिला जैन (थाणा)

भव्य/योग्य मन-वचन-काय की प्रवृत्ति ही भद्रता / शालीनताहै। इससे युक्त व्यक्ति सुगन्ध के समान है जो दूसरों को भी आल्हादित कर देता है।

सत्-उद्देश्य सहित कार्य से विकास होता है तो असत्-उद्देश्य सहित कार्य से विनाश होता है।

सत्य-तथ्य से सहित थोड़ा सा भी ज्ञान यथार्थ है तथा सत्य-तथ्य से रहित प्रचुरज्ञान भी अयथार्थ ज्ञान है। यथा थोड़ा सा भी यथार्थ पानी तो पानी है परन्तु प्रचुर मृगमरीचिका (जलाभास) पानी नहीं है।

29- आचार्यरत्न श्री कनकनन्दी गुरुदेव की आरती

(1) प्यारा लागे छे गुरूदेव आओ सब आरती उतारें।
प्यारा लागे.....
कनकनन्दी गुरुदेव की –2 आओ सब आरती उतारें। प्यारा लागे छे।
लाख–लाख दिवड़ा नी आरती उतारो.....।
लाख–2 तोरण बंधाओ॥ प्यारा लागे छे.....।
मन्दिर मा गनन–2 घण्टा बाजे छे.....।
थाए छे जय–जयकार॥ प्यारा लागे छे.....।
माता हे तोरी रुकमणी देवी, पिता छे मोहनचंद लाल। प्यारा लागे छे....।
उत्कल प्रान्त में जन्म लियो छे, धन्य छे ब्रह्मपुरी ग्राम। प्यारा लागे छे...।
नगर मां कनकनन्दी पधारिया, थाए छे जय–जयकार। प्यारा लागे छे....।
पानडे–पानडे पोपट बोले, बोले छे जय–जयकार। प्यारा लागे छे.....।
(2) ॐ जय कनकनन्दी ऋषिराज जय कनकनन्दी.....।
आरती करते सब मिल–2 पाने मुक्तिराज (ॐ जय.....)
मुलगुणों के धारी गुरुवर, हो तुम ज्ञान निधान (स्वामी हो.....)
ज्ञानामृत बरसाते–2, करते आतम ध्यान। (ॐ जय.....)
ब्रह्मपुरी में जन्म लिया है, गंगाधर था नाम। (स्वामी गंगाधर.....)
मात–पिता को तजकर–2, धारा पद अविराम॥ (ॐ जय.....)
प्रशांत सूरत मोहनी मूरत, करे आत्म कल्याण ॥ (स्वामी करे.....)
ज्ञान–विज्ञान दिवाकर–2, हो तुम गुण की खान॥ (ॐ जय.....)
बंधन मेरे टूटे गुरुवर, बन जाऊँ भगवान (स्वामी बन.....)
नाथ 'क्षमा' की अरज यही है–2 दे दो सम्यग्ज्ञान(ॐ जय.....)
(3) (तर्ज – तन डोले मेरा मन डोले.....)
जिन आगर की कनकनन्दी की ले मणिमय दीप का थाल हो.....।
मैं आज उतारूँ आरतियाँ–2.।
हमने निज नयनों से देखी मूरत आज अनोखी–2.....।
मोक्ष महल के जाने को यह राह बताती चोखी (गुरूजी राह.....।
ऐसे ज्ञानी की विज्ञानी की मनहर शुभ दीप प्रजाल हो॥ (मैं आज.....।

आचार्य परमेष्ठी की सब मिलकर जय–जय बोलो–2.....।
गान नृत्य से भक्ति बढ़ाकर आज हृदय का पट खोलो (गुरूजी आज..।
सब मिल करके गुण गा करके हाथों में दीप प्रजाल हो॥ मैं आज.....।
पुण्य उदय से जन्म लिया है उत्तम कुल में आकर.....।
'क्षमा' का मन अति हर्ष भरा है ऐसे गुरु को पाकर (गुरूजी ऐसे.....।
शिवराही की जगनामी की मणिमय धृत दीप प्रजाल हो॥ मैं आज.....॥
(4) (तर्ज – इंजन की सीटी में.....)
गुरुवर की आरती में म्हारो मन डोले–2.....।
सगला चालो रे–2 भाया मंदिर होले होले–2.....।
गुरूवार की आरती.....।
गुरुवरजी की सुन्दर मूरत सब जन को हरषाये।.....।
एक बार जो दर्शन कर ले बार–बार ललचाये॥ सगला चालो रे.....।
उत्कल को धन्य किया था रुकमणि मां उर आये.....।
निर्मल मनके धारी ऋषिवर गंगाधर कहलाये॥ सगला चालो रे.....।
कुन्थु ऋषि से दीक्षा लीनो कनकनंदी कहलाये.....।
आचार्य श्री बने गुरुवर संयम भाव जगाये.....।
सर्व सिद्धि का मूलमंत्र भी समता भाव बताया.....।
'गुप्ति' भी मुक्ति के कारज तुमरी शरण आया॥ सगला चालो रे.....॥
(5) (तर्ज – मैं तो आरती ऊतारूँ.....)
मैं तो आरती ऊतारूँ रे आचार्य ऋषिवर की.....।
जय जय कनकनंदी गुरुवर जी–2.....।
रुकमणि मां के हो लाल तुम गुरुवर प्यारे.....।
पिता मोहनचंदजी के बाल तुम गूरुवर न्यारे। जग में.....।
भक्ति करूँ झूम–झूमकर छम छमाकर झूम–झूमकर।
मूरत निहारूँ रे – हो साँवलिया मूरत निहारूँ रे। मैं तो.....।
सम्मेद शिखर में आय सत्य धर्म जान लिया॥
गुरु कुन्थु सूरि की महान शरण में ज्ञान लिया। शरण में.....।
नमन करूँ बार–बार विनय करूँ बार–बार–2।
चरणों में आऊँ रे हो गुरुवर चरणों में आऊँ रे। मैं तो.....।
ज्ञान विज्ञान सत्य को पाय धर्म प्रचार किया।
ज्ञानामृत देते हैं आप जाग उद्धार किया। जग।.....।

ज्ञान लो हर्ष–हर्ष बार–बार हर्ष–हर्ष–2 ।
'राज' मुक्ति को पाये गुरु चरणों को ध्यारूँ रे॥ मैं तो.....।
(6) (तर्ज – माईन माईन मुडेरे पर.....)
कनकनंदी की आरती कर लो अवसर शुभ है आया.....।
पापों के बंधन को तजने मैं चरणों में आया.....॥
गुरुवरजी हो.....3 भगवन आ.....3
गुरुवरजी की आरती करने हम सब मिलकर आये.....।
हाथों में दीपों की थाली लेकर नाचे गाये.....।
मोह तिमिर को दूर भगाकर आतम ज्योति जगाये.....।
मोक्ष महल के राही बनकर सुख शांति पथ पाये॥ गुरुवर हो.....।
जन्म हुआ जब ब्रह्मपुरी में माता–पिता हर्षाये।
मनमोहन गंगाधर बनकर सबके मन को भाये।
कुन्थु ऋषि से दीक्षा लेकर कनकनंदी कहलाये।
प्राणी मात्र की रक्षा करने समता भाव जगाये। गुरुजी हो.....।
सत्य अहिंसा भाव जगाने करत वंदन तेरा।
भक्ति से शक्ति को पावें छूटे भव का फेरा।
गुरुवाणी को ध्यान धरे हम पाने ज्ञान उजेरा।
'राजश्री' को मिल पाये फिर मुक्ति का बसेरा॥ गुरुजी हो.....।
(7) (तर्ज – चूडी मजा न देगी.....)
कुन्थु ऋषि के प्यारे गुरूवर जी ये हमारे.....।
भक्ति करेंगे इनकी–2 आकर के इनके द्वारे॥
दीपों की थाल लेकर भक्ति से नाचे गाये।
पाने गुरु के गुण को मिलके सभी हैं आये।
भक्ति जगे हृदय में–2 जीवन को हम सुधारे। कुन्थु ऋषि.....।
मां धैर्य शांति सत्य ही परिवार हे तुम्हारे।
मात पिता को तजकर मुनिवेष को जो धारे।
मुक्ति को पाने वाले–2 ऐसे गुरु हमारे॥ कुन्थु ऋषि.....।
धन्य भाग्य है हमारे ऋषिवर के दर्श पाये।
काटे करम के बंधन सब मुक्ति राह जाये।
चरणों में 'राज' आयी–2 गुरुवर हमें उबारे॥ कुन्थु ऋषि के प्यारे....॥
(8) (तर्ज – आरती करो नटवर की.....)

आरती करो मुनिवर की करो, गुरुवर की करो, यतिवर की। आरती करो ऋषिवर की।
मयूर पिच्छिका धरने वाले प्राणिमात्र के हो रखवाले।
कनकनंदी गुरुवर की आरती करो.....॥
छवि तेरी अति शांत निराली, जीवों के दुःख हरने वाली।
श्यामलिया जिनवर कीऽऽ, आरती करो.....॥
कुन्थु सिन्धु के तुम हो प्यारे, वादी को जड़ से ही उखाड़े।
जिन धर्म धुरन्धर की, आरती करो.....॥
विश्व धर्म सत्यार्थ प्रभाकर, धर्मज्ञान विज्ञान दिवाकर।
न्याय मूर्त मुनिवर कीऽऽ.... आरती करो.....॥
निज स्वरूप अन्वेषण करते, सब जन को दिग्दर्शन देते।
'गुप्ति' त्रय धारक कीऽऽ..... आरती करो.....॥
(9) (तर्ज – चपटी भरी ने चोखा ने.....)
सोना नी थाली ने घी नो छे दीवड़ो –2.....।
आरती नी थाली लइये रे – हालोऽऽऽ 2 हालो देरासर जइये–2....॥
भक्ति नी भावना मां डोलें म्हारो हीवडो –2 ।
भावना नी थाली लइये, रे हालो.....॥
चंदन केसर घसी नी लावो रे –2
गुरु चरणा मां चढ़ाइये रे हालो.....॥
कुन्थु ऋषि ना प्यारा म्हारा गुरुजी –2
इनकी आरती करिये रे हालो –2 .....॥
बाल ब्रह्मचारी म्हारा गुरुजी –2
ऐनी संगति करइये रे हालो.....॥
समता धारी ज्ञानी गुरुवर –2 .....॥
ऐने पासे जइये रे हालो.....॥
'क्षमाश्री' गुरु शरणे में आई.....॥
मुक्ति माने दइये रे हालो.....॥

गोष्ठी में चित्रका विमोचन करते हुये डॉ. शेखरचन्द्र जैन। साथ में संस्था के वरिष्ठोपाध्यक्ष श्री सुशीलचंद जैन–वड़ौत एवं उनकी धर्मपत्नी।

आचार्य श्री कनकनंदीजी से नियम धारण कर पिच्छी प्राप्त करते हुये डॉ. मानद् निर्देशक श्री राजमल जैन एवं ध.प. श्रीमती रत्नमाला जैन।

चर्या के लिए गमन करते हुए आचार्य श्री कनकनन्दी जी